नागार्जुन के उपन्यासों और कविताओं में लोक-जीवन का चित्रण और प्रयोग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद की डी0 फिल्0 (हिन्दी) उपाधि
हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

2002

निर्देशक-
डा० मोहन अवस्थी
पूर्व प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोधार्थी-
गंगेश कुमार दीक्षित
एम० ए० (हिन्दी)

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

श्रद्धेय मम्मी एवं बाबू जी को
सादर समर्पित

विषयानुक्रमणिका

अपनी बात

मैं नागार्जुन के कवि व्यक्तित्व से परिचित तब हुआ जब मुझे स्नातक की पढ़ाई के लिए इलाहाबाद आना था। गर्मी के अवकाश में घर पर था उसी समय मेरे अग्रज श्री कमलेश दीक्षित जो इलाहाबाद में रहकर प्रशासनिक परीक्षा की तैयारी कर रहे थे, मुझे लेने के लिए घर पर आये हुए थे। गांव पर ही एक दिन सभी बैठे थे कि उसी समय हमारे सबसे बड़े भाई श्री वाचस्पति दीक्षित जी और श्री कमलेश दीक्षित जी आपस में नागार्जुन पर परिचर्चा करने लगे। मैं वहां पर बैठा बातें सुनता रहा। उन लोगों की परिचर्चा का विषय नागार्जुन की कविता 'अकाल और उसके बाद' था। वहीं मेरे मन् : मस्तिष्क के किसी कोने में नागार्जुन को जानने और समझने की उत्कंठा जाग्रत हुई। अजीब संयोग है कि आरम्भ में जिस कवि के बारे में दूसरे लोगो की परिचर्चा के द्वारा जाना, बाद के दिनों में उसी के प्रति गहरी दिलचस्पी पैदा हुई। इसका श्रेय निश्चित तौर से मेरे दोनों अग्रज जो वर्तमान में उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन सेवारत हैं, को जाता है। स्कूली शिक्षा के दौरान नागार्जुन के प्रति जो आरंभिक रुचि जाग्रत हुई थी उसे विकास और विस्तार मिला इलाहाबाद आकर। जिसमें भरपूर सहयोग मेरे मौसेरे भाई श्री संजय कुमार मिश्र ने दिया। इनके द्वारा ही प्रोत्साहित करने पर सर्वप्रथम मैं नागार्जुन के साहित्य को सुरुचि पूर्वक पढ़ा। इस क्रम में मैने सर्व प्रथम नागार्जुन के उपन्यास 'रति नाथ की चाची' को पढ़ा था। इस उपन्यास का इतना गहरा प्रभाव मेरे उपर पड़ा कि मैं नागार्जुन के व्यक्तित्व का कायल हो गया। फिर उनके रचना संसार में मेरा मन इस तरह रमा कि उससे आज भी अपने को पृथक नहीं कर सका हूँ।

नागार्जुन के साहित्य को पढ़ते समय, मन में उठने वाले सवालों ने उनके उपर शोध करने के लिए मुझे प्रेरित किया। अध्ययन क्रम में मुझे अक्सर लगता रहा कि नागार्जुन हिन्दी के एक महत्वपूर्ण लेखक हैं, जिनके साहित्य पर विधिवत चर्चा आवश्यक है। नागार्जुन के उपन्यासों और कविताओं का मूल्यांकन करना मेरे जैसे पाठक के लिए एक चुनौती थी। इस चुनौती को स्वीकार करने के कारण ही उनके साहित्य पर शोध करने में मैं स्वयं का मन रमा पाया हूँ।

नागार्जुन का साहित्य बहुत व्यापक है। अपनी सीमाओं को देखते हुए नागार्जुन के साहित्य पर सम्पूर्ण विषय को न छूकर केवल उनके उपन्यासों और कविताओं में लोक तत्व को मैने अपने शोध का विषय बनाया।

नागार्जुन के साहित्य युग के जिस प्रवाह में रचे गये हैं, वे उसके प्रमुख सन्दर्भों को भी चित्रित करते गये हैं। उनके यहां गहरी युग चेतना मौजूद है। यह अनायास नहीं है कि उनके साहित्य में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का यथार्थ व्यौरा प्रस्तुत हुआ है। शोध प्रबन्ध में यह दिखाया गया है कि नागार्जुन ने अपने कविताओं और उपन्यासों में किस प्रकार युगीन परिस्थितियों और लोक चेतना का गम्भीर विमर्श प्रस्तुत किया है। कविता या उपन्यास लेखन में विचार धारा के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। विचार धारा कथ्य के चुनाव पात्रों के चरित्रांकन और लेखन को सोद्देश्य बनाने में लेखक की मदद करती है। स्पष्टतः लेखक की विचारधारा उसके साहित्य की रचना प्रक्रिया को गहरे रूप में प्रभावित करती है। इसलिए साहित्य के मर्म को समझने के लिए साहित्यकार की विचार धारा को समझना जरूरी है। इसी कारण से इस शोध प्रबन्ध में नागार्जुन की विचारधारा को भी समझने की कोशिश की गई है।

नागार्जुन के उपन्यास कविता की अपेक्षा संवेदना के स्तर पर जितने बेजोड़ हैं शिल्प के स्तर पर उतने बेजोड़ नहीं है। वस्तुतः नागार्जुन के औपन्यासिक कला में एक तरह की लेखकीय गम्भीरता और तन्मयता का अभाव है।

नागार्जुन हिन्दी के प्रमुख कवि ही नहीं, उपन्यासकार भी हैं। पर, विडंम्बना यह है कि हिन्दी में एक कवि के रूप में उन्हें जो ख्याति प्राप्त है वह उपन्यासकार के रूप में नहीं है। इस शोध प्रबन्ध में इसकी चर्चा 'नागार्जुन एक आलोचनात्मक विश्लेषण, कवि बनाम उपन्यासकार' नामक अध्याय के अन्तर्गत हुआ है। इस अध्याय में इसकी चर्चा हुई है कि नागार्जुन के उपन्यासकार व्यक्तित्व को अपेक्षित ख्याति न प्राप्त होने का कारण क्या है? चर्चा के क्रम में यह दिखाया गया है कि उनके उपन्यासकार को अपेक्षित महत्व

नहीं मिलने के लिए जितना हिन्दी का समीक्षा, जगत दोषी है, स्वयं लेखक भी उससे कम दोषी नहीं है।

नागार्जुन के साहित्य पर कार्य करना निश्चय ही मेरे लिए एक कठिन कार्य रहा है। कुछ लोगों के अपेक्षित सहयोग के अभाव में यह कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हो पाता भी, कहना कठिन है। इस कठिन कार्य को आसान बनाने में जिन लोगों ने अपना सहयोग दिया, उनमे सर्वाधिक अग्रणी है, डा. मोहन अवस्थी। संयोगवश मोहन अवस्थी जी मेरे शोध-निर्देशक भी रहे हैं। वे अपनी विद्वता के लिए जितना जाने जाते हैं उससे अधिक अपने सरल जीवन और व्यवहार कुशलता के लिए। वैसे तो अवस्थी जी मेरे शोध-निर्देशक रहे हैं लेकिन व्यावहारिक जीवन में मैने हमेशा उन्हें औपचारिक सम्बन्धो से अलग एक आत्मीय परिजन के रूप में पाया है। समय-समय पर उनके अमूल्य सुझावों, निर्देशों और पितृवत सहयोग को प्राप्त करना मैं अपना अधिकार समझता रहा हूँ, इसलिए उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करके मैं इस अधिकार के परिसीमन की धृष्टता नहीं कर सकता।

शोध की प्रक्रिया में कई स्वजनों के सहयोग को भुलाया नहीं जा सकता। इसमें बड़ी भाभी, छोटी भाभी, दीदी, नीलम, नीरजा, माधवी, निक्कू, शीलू, नीशू, बड़े भाई अजय जी एवं मित्र दुर्गेश्वर त्रिपाठी, मुक्तेश त्रिपाठी की निरन्तर प्रेरणा सहयोग स्नेह तथा उत्साह वर्धन ने इस दुरूह कार्य को इतना आसान बना दिया। इन लोगों का सहायोग प्राप्त करना मैं अपना अधिकार समझता था। फिर उन्हें किस बात का धन्यवाद देना।

इस सन्दर्भ में कुछ और नाम याद आ रहे हैं, जिनमें वाद-विवाद करना और किसी भी तरह का सहयोग प्राप्त करना मेरी दिन चर्या का अंग रहा है। मिलन सर, **संजय सर, आनंद सर,** अमरबीर, प्रत्युष, अभिषेक (चंपक), राम कुमार, अमित ऐसे **ही** नाम हैं। **इन लोगों से इ**तना आत्मीय रिश्ता है कि इन्हें धन्यवाद देने की बात मैं सोच भी नहीं सकता।

अन्त में, उन साथियों की भी याद आ रही है जो विभिन्न कारणों से आज मुझसे दूर हो गये हैं। समय के इस प्रवाह में कई तो मुझे जाने अनजाने भूल भी गये हैं । पर सच कहता हूँ बचपन से लेकर आज तक जितने भी दोस्त रहे हैं, मैं उनमें से किसी को नहीं भूला हूँ। ये सब मेरी यादों में अब भी रचे बसे हुए हैं। इनमें से कुछ मेरे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा स्रोत भी रहे हैं। इन्हें भी धन्यवाद देकर आपस के आत्मीय रिश्ते को औपचारिक नहीं बनाना चाहता।

शिवम् साइबर स्पाट वाले प्रमोद जी अवश्य धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अपने परिश्रम के द्वारा मेरे इस शोध प्रबन्ध को कम समय में टाइप करके मेरे काम को काफी आसान कर दिये।

यह शोध प्रबन्ध, मेरी मेहनत और स्वजनों के सहयोग का फल है । किसी शोध प्रबन्ध का प्रणयन एक यज्ञ है जिसकी सफलता के लिये ईश्वर की प्रेरणा, गुरुजनों का आशीर्वाद, स्वजनों का सहयोग और आंतरिक साधना की आवश्यकता होती है। मैं अपनी त्रुटियों के लिये सहज क्षम्य हूँ। यह शोध प्रबन्ध जैसा है, जिस रूप में है आपके समक्ष प्रस्तुत है अस्तु

गंगेश

1/42, डा० ताराचन्द छात्रावास
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

भूमिका

सहज जीवन के चितेरे और वैसा ही जीवन जीने वाले, जन मानस में "बाबा" के नाम से प्रसिद्ध तथा आधुनिक काल के असाधारण अद्वितीय एवं अग्रगामी कवि व कथा शिल्पी नागार्जुन। सच कहे तो प्रगतिशील का बहुचर्चित, सर्वाधिक समर्थ, सशक्त और लोकप्रिय रचनाकार ही नही, वरन् एक ऐसा प्रतिबद्ध और गोल चेहरे, मझोले कद, दुबले पतले शरीर का, तीखी आँखों और अपनी श्वेत धवल बेतरतीब दाढ़ी पर कई बार हाथ फेरने तथा झूम-झूमकर काव्य पाठ करने वाले जन कवि हैं। जिनका क्रान्तिकारी वामपंथी, सांस्कृतिक व राजनीतिक विचारधारा से गहरा लगाव जुड़ाव था। खादी का मामूली कुर्ता उस पर बंडी, धोती या पायजामा, पांव में चप्पल, बस यही पोशाक थी। कंधे पर थैला रहता था।

वस्तुतः जमीन से जुड़े इस महान साहित्यकार ने औपचारिक रूप में नही, बल्कि सही मायनों में युग को प्रभावित किया और पतझड़ को स्वर देने में खफा दिये 87 बसंत। उनकी तुलना कालिदास, मिर्जा गालिब, रवीन्द्रनाथ ठाकुर प्रेम चन्द और अंग्रेजी भाषा के विख्यात कवि वाल्ट विटमैन से की जा सकती है। शिक्षा की दृष्टि से डिग्री विहीन, परम्परा से सनातनधर्मी, व्यवसाय से पुरोहिती, विचारों से रूढ़िवादी निर्धन मैथिल ब्राम्हण परिवार में जन्में इस बात का गवाह है कि रचनात्मक प्रतिभा प्रतिकूल वातावरण से ही अंकुरित एवं विकसित होती है । माता की श्रमप्रियता, सहनशीलता, चारित्रिक दृढ़ता और पिता का रूढ़िवादिता जड़ता कठोरता, दरिद्रता दोनों की परस्पर अनबन व कटुता नागार्जुन के जीवन के दो विपरीत सत्य हैं, जो उनके साथ ही जैसे पैदा हुए हों। ऐसी स्थिति में उन्होंने पीड़ा, अपमान, उपेक्षा और वेदना की तरह जीवन को झेला, कितने ही पड़ावों से गुजरे, अभावों-संघर्षों से जूझे, लेकिन पराजित मानसिकता के शिकार नहीं हुए। स्वामी सहजानन्द सरस्वती और महापंडित राहुल सांकृत्यायन की प्रेरणा से प्रभावित हो वामपंथी विचारधारा से जुड़ गये और उनके जीवन संघर्ष में एक नया मोड़ आया। धर्मिक आडम्बरों, पाखण्डों, एवं वाह्याचारों का कविराई अंदाज में

विरोध किया । वे संघर्षों की उपज़ थे और शायद इसीलिये समाज के हर वर्ग के साथ घुल–मिलकर, रच बसकर–जन–जन के चहेते बने रहें।

आम जन के आगे कोई अन्य लालसा उन्हें बाँध न सकी। तभी तो विगत आधी सदी में जितना प्यार–दुलार, सम्मान, शोहरत उन्हें मिली, अन्य किसी लेखक को मुश्किल से मिली होगी। यह उनके ईमानदार, पारदर्शी सर्जक होने की पहचान है। मजे की बात यह है कि स्वभाव से घुमक्कड़, और अक्खड़ मिजाज के बाबा कहीं से भी कवि नजर नहीं आते थे। मगर उनकी सबसे बड़ी खूबी यह थी कि जनता कि भाषा में जनता की कविता करते थे जो लोगों के दिलों को बरबस छू लेती थी। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में अनुभूति–जन्य यथार्थ की जैसी निष्कपट अभिव्यक्ति है वह उन्हें सीधे कबीर से जोड़ देती है। उन्होंने अपने अन्तर्विरोधों को छिपाने के और उन पर पर्दा डालने का कभी प्रयास नहीं किया। सहज सामान्य बिम्बो के जरिये किसी कड़वे सच का उद्घाटन इस खूबी से करते हैं कि उनके बिम्बो में माटी की सोंधी सुगन्ध बस जाती है।

यहाँ तक कि कुत्तो, बिल्लियों, चूहों, छिपकलियों, चील कौवों की मौजूदगी भी उनकी कविता में है। एक ओर "मेला राम तेला राम वियतनाम" गाते बच्चों, मुक्ति योद्धा लुमुम्बा, फटेहाल रिक्शे वालों, कुली मजदूरों, रोते चूल्हों व उदास चक्की के रूप में उसमें मौजूद हैं, तो दूसरी तरफ ऐसे शोषण प्रतीक चरित्र के रूप में जो–

जमींदार है, साहूकार है बनिया है, व्यापारी है,
अन्दर–अन्दर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी है।

किसी आलोचक या मंच के वे कभी मुखापेक्षी नही रहें, हमेशा जनभावनाओं से अपने को जोड़ा। किसी वाद से नहीं जुड़े। कवि त्रिलोचन के शब्दों में–

'उनकी कविताएं उनके समय की घटनाओं का महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज हैं और जनवादी कवियों में वह जनता के सबसे निकट है। उन्होंने किसी कविता आन्दोलन की जरूरत नही समझी, वे खुद एक आन्दोलन हैं।'

वे मूलतः एक व्यंग्यकार हैं। व्यंग्य उनका सहज गुण है जो सीधी चोट करता हुआ तिक्त है। मानव ही नहीं भगवान तक को उन्होंने व्यंग्य-बाणों से नहीं बख्शा। भगवान को उन्होंने 'कल्पना का पुत्र' कहा है।

शिक्षा पर एक व्यंग्य दृष्टव्य है-

धुन खाये शहतीरों पर बारह खड़ी विधाता बांचे

फटी भीत है छत चूती है आले पर बिस्तुइया नांचे

बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट मिनट में पाँच तमांचे

ऐसे ही दु:खहरन मास्टर गढ़ता है आदम के सांचे।

एक जगह कहा है-

'नभ से मुस्करायेगा तब डाकू मानसिंह

वह जय प्रकाश पर पान-फूल बरसाएगा।'

मगर यही जय प्रकाश पर जब मेहरबान होते हैं तो कहते हैं-

'जय प्रकाश पर पड़ी लाठियां लोकतंत्र की

एक और गांधी की हत्या होगी अब क्या।'

अपनी प्रगतिशीलता को वे धता बताकर किसी साम्यवादी मुल्क पर बरस कर यूँ लिखते हैं-

'मार्क्स तेरी दाढ़ी में जूँ ने दिये होंगे अंडे'

चीनी हमले के समय सबसे पहले उन्होंने ही कलम चलाई। नागार्जुन ने अपनी 'सतरंगे पंखों वाली' प्राणवान भाषा से कविता के शिल्प को ही परिष्कृत किया है। आम लोगों की जिन्दगी की धूप-छाँव में सहभागी रहने के कारण उनकी कविताओं में आधुनिक जीवन की त्रासदी का स्पष्ट प्रतिबिम्ब उभरता है। तन की आँखों से जो देखा है, वे उसे मन की आँखों पर जब तोलते हैं तो देश का वर्तमान उनके शब्दों में यों व्यक्त करते हैं-

भटक गया है देश दलों के बीहड़ वन में,

कदम कदम पर संशय ही उगता मन में

नेता क्या हैं निज–निज गुटके महापात्र हैं

राष्ट्र कहाँ हैं शेष, शेष बस 'राज्य मात्र' है।

उनकी लेखन शैली का प्रमुख गुण है उनका चुलबुलापन, बाँकापन और व्यंग्यात्मक जानदार स्वर, जो शायद ही कही हो।

'दिल दिमाग भुस का, खद्दर की खाल है,

अपच के मारे बड़ा बुरा हाल है स्वर्ग है,

पार्लियामेंट, महक रहे इत्र सेण्ट

करता है बहुमत जनहित की चाँदमारी'

इसी तरह–

'तन गयी रीढ़', 'चना जोर गरम' जैसी लोकप्रिय उनकी व्यंग्य कविता वर्तमान जीवन के जटिल परिवेश को ही रूपायित करती है।

बाबा केवल कलम के सिपाही नही थे, किसान–मजदूरों के हितों की रक्षा के लिये संघर्ष करने वाले योद्धा भी थे और इस सिलसिले में कई बार जेल भी गये। दर्प, अहंकार, आडम्बर से सर्वथा परे इस शीर्षस्थ लेखक के चरित्र में बच्चों की निर्मलता और बूढ़ों की गम्भीरता थी। साफगोई उनके चरित्र की अभिन्न अंग थी, अपनी बात कहने, अपने विश्वासों के अनुसार आचरण करने और कड़वा सत्य कहने में न तो डरते थे, न हिचकिचाते थे। तीखेपन के लिये विख्यात थे–उनकी इमरजेंसी के दौर में लिखी पंक्तियाँ कौन भूल सकता है–

'इन्दु–इन्दु जी क्या हुआ आपको'

सत्ता की मस्ती में भूल गयी बाप को।'

मौजूदा हालात के बारे में उनके शब्द देखिये–

देश में अशान्ति और अराजकता की वर्तमान स्थिति देखकर मैं उद्विग्न नहीं हूँ। मुझे तो परम प्रसन्नता होती है कि यह सब हमारी सामूहिक, बेचैनियों का महालक्षण है।

लगता है समूचा देश, समूचा राष्ट्र कोढ़ के महारोग से आक्रान्त हो उठा है। महाव्याधियाँ देश के विभिन्न क्षेत्रों मे आन्दोलन के रूप में गलित कुष्ठ बनती जा रही हैं। हम इतने अधिक पतित हैं कि आरोप लगने और घटाले करने पर भी कुर्सी नहीं छोड़ते, राजनीति का अपराधीकरण बहुत तेज हो गया है।

चौपटानन्दों से देश बचा रहे, तभी जानिये। नेताओं को एक्सपोज होने दीजिये। गनीमत यह है कि वे अमृत पीकर नही आये हैं, उनकी गुण्डई को कोई महागुण्डा ही तोड़ेगा। बचपने से ही संघर्षरत घुमक्कड़ और हरफनमौला हस्ती ने दर्जनो बार हिमालय की उतुंग चोटियों को रौंदा और हिमालय पर अनेक कविताएं लिखी हैं। इसमें से प्रसिद्ध है–सफेद बादल, देवदारू, वलाकर, और बरफ पड़ी है। उनकी एक अत्यन्त प्रसिद्ध और कालजयी कविता है– 'बादल को घिरते देखा है' जिसे पढ़कर आप उन्हें पंत जी का उत्तराधिकारी समझ लेंगें। उनका यात्रा वर्णन 'हिमालय की बेटियां' कल्पना की ऊँची उड़ान और शब्द शिल्प की दृष्टि से एक बेजोड़ रचना है, उन्हें बाबा नाम बड़ा प्रिय था लिखते हैं :-

'किशोरी हो या युवती, कोई भी
चन्द्रवदना, मृगनयनी मेरे निकट आकर
प्यार से जब बाबा कहती है तो वात्सल्य
के मारे इन आंखों के कोर गीले हो जाते हैं।'

कुल मिलाकर सही वैचारिक पक्षधरता और उस पर अटूट विश्वास ही नागार्जुन के लेखक को बॉध के धरातल पर प्रखर और रचनात्मक बनाते हैं। वैसे तो हिन्दी साहित्य में असहायों, शोषितों व गरीबों की कविता के केन्द्र बिन्दु शमशेर, त्रिलोचन मुक्ति–बोध और नागार्जुन सरीखे कवि ही हैं। 'शासन की बन्दूक' नागार्जुन की अत्यन्त लोकप्रिय कविता है–

'खड़ी हो गयी चॉपकर कंकालो की हूक
सत्य स्वयं घायल हुआ गयी अहिंसा चूक

जली ठूँठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक

बाल न बाँका कर सकी शासन की बन्दूक।'

नागार्जुन का काव्य सहज-काव्य है। सहज काव्य का मतलब सरल या सपाट काव्य नहीं, सहज तो रूप होता है। सहज वही होता है जिसकी अन्तर्वस्तु जटिल होती है। सौन्दर्य सहज होता है। सौन्दर्य का लक्षण यह है कि वह हमें सर्जक बना देता है। पहले वह चित्त में एक अवकाश या खाली जगह रचता है और फिर उसमें कल्पना से भरता है यह मैं काव्य के यहाँ नागार्जुन काव्य के श्रोता-पाठक के सर्जक बन जाने की प्रक्रिया की बात कर रहा हूँ। नागार्जुन की प्रसिद्ध कविता है 'अकाल और उसके बाद।' कविता संक्षिप्त है। पूर्वाध की पंक्तयां 'कई दिनों के बाद' से शुरू होती हैं और उत्तरार्ध की पंक्तियां 'कई दिनों के बाद' पर समाप्त होती हैं कविता में अश्चर्य जनक तौर पर मनुष्य कहीं नहीं दिखई पड़ता। चूल्हा, चक्की, कानी कुतिया, धुआं, छिपकलियां, कौवा है। मनुष्य कहीं नहीं । जब 'दाने आये घर के अन्दर कई दिनों के बाद' तो अन्त में कौवे ने खुजलाई पांखे कई दिनों के बाद। सारी विभीषिका और विभीषिका के अन्त की कथा कह दी।

शब्दों में मनुष्य न हो किन्तु का व्यार्थ में वह केन्द्र में है। मनुष्य की तरह शब्दों में 'भूख' का भी नाम नहीं। लेकिन सारी यातना 'भूख' की है। ऐसी यातना है कि जिसमें मनुष्य के साथ पशु-पक्षी जड़-चेतन सब एक तान एक लय में ग्रस्त हैं। अकाल केवल शब्द नही, भूख केवल शब्द नहीं वह साक्षात भोगा जाता हुआ परिदृश्य फेनोमेनन है, अनुभव है। कविता में यही अनुभव अनुभूति बनकर असीम हो गया है। तद्भव शब्दों में चिर-परिचित छन्द मे आठ-दस पंक्तियों में एक ऐसी कविता, जैसी इस विषय पर शायद ही किसी अन्य भाषा में लिखी गयी है। यह है सहजता की जटिलता।

भक्त-कवियों के ही समान प्रगतिशील कवि भी समान-विचारधारा एवं आन्दोलन से जुड़े होने के बावजूद विशिष्ट भी हैं। उनकी पहचान अलग-अलग हैं। इसका कारण

उनकी निजता-समृद्धि है। जो आँखिन देखी, के कवि हैं, कागद लेखी के नहीं। नागार्जुन इनमें अग्रगण्य हैं।

नागार्जुन की रचना में समकालीन जीवन की विषमता की धार और उस विष्मता को समाप्त करने की छटपटाहट है। समकालीन जीवन के किसी भी क्षेत्र की कोई उल्लेखनीय घटना हो, व्यक्तित्व हो, नागार्जुन ने उसपर कलम चलाई है, अपनी भावनाएं दर्ज करायी हैं। नागार्जुन गहरी राजनीतिक समझ के कवि हैं। राजीतिक कविता की सार्थक पहचान बनाने वालों में वे अन्यतम में महत्व के लेखक हैं। बेलची कांड पर उन्होंने 'हरिजन गाथा' लिखी थी। यह कविता महाकाव्यात्मक गुणों से भरपूर है इसका ढॉचा नाटक का है और अनेक मिथकों का उपयोग इसमें हुआ है। हरिजन-गाथा का नायक कलुआ नामक शिशु है। इसमें संत गरीबदास नाम के एक दलित संत है जो वस्तुतः बाबा नागार्जुन ही हैं। कविता इस दृष्टि से युगान्तरकारी महत्व की है। इसमें भगवान का हरिजनावतार कराया गया है और ऐसे नायक की कल्पना की गयी है जो आजानु-बाहु दीप्त द्रग और सौम्य दर्शन ही काला-कलूटा है। अब इस पर विशेषपन विचार करें कि हमारा भावी नायक आजानु-भुज शरचाप धर, होंगे या काला-कलूटा दलित।

पर यह भी सही है कि राजनीतिक यथार्थ तक सीमित उनकी असंख्य कविताएं कविता के रूप में उल्लेखनीय नहीं रह जाती। वे वास्तविक जीवन संघर्ष में प्रखर सामाजिक संघर्ष में अपनी तात्कालिक भूमिका निभाकर अपनी सार्थकता बहुत कुछ खो देती है और एक समय की राजनीतिक चेतना का प्रतिरोधात्मक कार्रवई का उदाहरण भर होकर रह जाती हैं। सौन्दर्य बोध की प्रकृति भी द्वद्वात्मक है। सौन्दर्य बोध कुरूपता पर प्रहार करता है-सौन्दर्य बोध के समकालीन आयाम हैं- कर्म-सौन्दर्य, श्रम सौन्दर्य। इसीलिये नागार्जुन शोषक वर्ग पर व्यंग्य करते हैं। अन्य कवियों के विशेषतः कबीर को अपने राम पर भरोसा था और वे सांसारिकता में लिप्त लोगों को ललकारते थे- क्यों नश्वर से प्रेम करते हो-यह सब मिट जाएगा। मूर्ख हो जो सांसारिक सुखों में इतराते

हो। नागार्जुन के पास काल नहीं इतिहास का बोध है। उनके प्रभु राम नहीं, समाज और मानवीय भावना है। इस भूमि पर स्थित वे अमानवीय समाज विरोधी शोषकों पर प्रहार करते हैं। यह उनके व्यंग्य का ऐतिहासिक महत्व है जो उन्हें कबीर से जोड़ता है। वास्तविक सौन्दर्य–बोध का तकाजा है कि कवि सुन्दर और सुन्दर विरोधी दोनों का चित्रण करें। नागार्जुन ने प्रकृति और मनुष्य के अनुपम चित्र खीचें है। सुन्दर विरोधी पर तीव्र प्रहार किये हैं। नागार्जुन न होते तो हिन्दी की अच्छी कविता को इतने पाठक–श्रोता न मिलते। यही कहा जाता कि सामान्य लोग सस्ती कविताएं ही पसन्द करते हैं। नागार्जुन ने हिन्दी कविता की, भाव समृद्धि का ही नहीं उसके प्रेमी, रसिक, प्रशंसक समाज का भी विस्तार किया है।

नागार्जुन ने आधुनिक हिन्दी कविता को जटिलता के रोग से बचाने और उसे व्यापक जनजीवन में जीने योग्य बनाने के लिए जटिलता के विरुद्ध सरलता का सौन्दर्य शास्त्र रचने वाली असंख्य कविताएं लिखी हैं। इन कविताओं में जीवन के अनुभव और रचना विधान की अपार विविधता है। एक ओर 'सुबह–सुबह' और 'बहुत दिनों के बाद' कविता में अपने गाँव की प्रकृति और संस्कृति से गहरे लगाव की अभिव्यक्ति है। नागार्जुन 'घन–कुरंग' में बादलों की लीला के गीत गाते हैं तो 'शिशिर की निशा' में जाड़े की रात की प्रकृति के बदलते रूपों के चित्र खीचते हैं। नागार्जुन जब प्रकृति के सौन्दर्य पर लिखाते हैं तब भी वे समाज की विरूपता को नहीं भूलते। इसकी सच्चाई काले–काले जैसी छोटी सी कविता में दिखाई देतीं है।

काले–काले ऋतु रंग/ काली घन–घटा/काली–काली छवि –छटा/काले परिवेश/काली–काली करतूत।

नागार्जुन की सर्वाधिक लोकप्रिय कविताएं वे हैं जिनके सरल सहज रचाव के भीतर कवि की गहरी सामाजिक चिन्ता, प्रखर राजनीतिक चेतना और निर्भय तथा निर्मम आलोचना दृष्टि प्रकट हुई है। कवि ऐसी कविताओं में जहाँ धारदार व्यंग्य का प्रयोग करता है वहाँ प्रतिरोध का सौन्दर्य शास्त्र निर्मित होता है। इन कविताओं में एक ओर

'शासन की बन्दूक' 'अन्न पचीसी के दोहे' आदि हैं तो दूसरी ओर 'बाकी बच गया अंडा', 'आओ रानी हम ढोयेगें पालकी' 'तीनो बन्दर बापू के और 'हरगंगे' जैसी कविताएं हैं।

नागार्जुन सरलता का सौन्दर्यशास्त्र छन्दों और गीतों में ही नहीं रचते, मुक्तछन्द और गद्य-परक कविताओं में भी रचते हैं। अगर 'अकाल और उसके बाद' छन्द में रची बसी सरलता की काव्य संवेदना का एक प्रमाण 'आये दिन' कविता में मिलता है तो 'सत्य' में उसका दूसरा प्रमाण। जब अपने लोक जीवन की संस्कृति में गहरे पैठी हुई नागार्जुनी प्रतिभा आदिम और आधुनिक को मिलाकर काव्य-रसायन तैयार करती है तब 'मंत्र' कविता का जादुई यथार्थवाद रचा जाता है।

नागार्जुन लोक जीवन के यथार्थ, उसके अनुभव, उसकी भाषा, उसमें जीवित छंद और कविता के विभिन्न रूप अर्थात् पूरी लोक संस्कृति से अपनी साहित्यानुभूति की संस्कृति निर्मित करते हैं। इसलिए साधारण जन को भी उनकी कविताएं सहज तथा अत्मीय लगती हैं, उसके मन को छूती हैं और उसकी चेतना को जगाती तथा प्रेरित करती है। नागार्जुन की रचना केवल आंखों के लिए ही नही है, वह कानों के लिये भी हैं। तात्पर्य यह है कि वह केवल पढ़ने की वस्तु नहीं है, सुनने के लिए भी हैं। इसीलिए नागार्जुन की रचना के पाठकों का दायरा जितना बड़ा है उससे कहीं अधिक व्यापक है उसका श्रोता-समुदाय। नागार्जुन जब कविता या उपन्यास लिखते हैं तब उनके सामने कविता या उपन्यास के पाठक और श्रोता मूर्त रूप में होते हैं, केवल विदग्ध पाठक और चुने हुए श्रोता नहीं, साधारण पाठक और श्रोता के रूप में गाँव की अनपढ़ जनता भी। उनकी अनेक कविताएं उपन्यास जन आन्दोलनों से पैदा हुई हैं, और जन आन्दोलनों के लिए लिखी गयी हैं। उनके पाठक और श्रोता जन आन्दोलनों से जुड़े हुए लोग होते हैं। शमशेर ने 'बाबा हमारे नागार्जुन बाबा' कविता में ठीक ही संकेत किया है कि नागार्जुन की कविता अपनी पहुँच के लिए उम्र की भी कोई सीमा स्वीकार नहीं करती, वह बच्चों, जवानों और बूढ़ों तक पहुँचती है। नागार्जुन कहते हैं कि 'अच्छी कविता एक सार्थक संवाद है। 'संवाद के लिए दूसरे का होना जरूरी है। वह दूसरा जैसा होगा, संवाद में

वैसा ही होगा। कवि नागार्जुन के सामने संवाद के लिए वह दूसरा प्रायः साधारण जन होता है। वे कहते भी हैं–

जनता मुझसे पूंछ रही है क्या बतलाऊँ / जन कवि हूँ मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ?

यही बोध नागार्जुन की कविता में संवाद का स्वरूप निर्मित करता है। इनकी कविता एकालाप नही, सार्थक संवाद है। संवाद सार्थक वहीं होता है जहाँ न कोई असमंजस हो, न दो चित्तापन, अन्यथा संवाद दिमागी कसरत बन जाता है।

नागार्जुन की काव्य और उपन्यास दृष्टि में कोई दुविधा नहीं है, इसलिए उनकी संवादधर्मिता में न हकलाहट है और न शब्दों का दो मुँहापन। नागार्जुन अपनी कविता और उपन्यासों में सरलता का सौन्दर्य शास्त्र रचते हुए अपनी रचनाओं को एक ओर जटिलता के रोग से बचाते हैं तो दूसरी ओर लोकप्रियता के बाजारूपन से भी, इसीलिए वे न तो चौंकाऊ टेक्नीक का प्रयोग करते हैं और न बाजारू शिल्प का। वे जब सरलता का सौन्दर्य शास्त्र रचते हैं तब सरलता को उस सरलीकरण से भी बचाते हैं जिससे रचनओं में अर्धगौरव का नाश होता है।

बाबा आमटे और मदर टेरेसा जैसे लोगों की तारीफ खूब की जाती है लेकिन महानदी जैसा नागार्जुन उनसे किस मायने में कम था। वास्तव में वे एक रमते कवि जोगी थे जिनका ठाठ फकीराना था, अर्थात् वे फकीराना ठाठ के शीर्षस्थ कवि थे। मुश्किल से जन्म लेगा फिर दूसरा नागार्जुन जो अन्तिम यात्रा पर जा चुके हैं स्वयं लिख गये हैं–

'देखना सब कुछ था स्वयं जाकर
नदी, नद वन गिरि, मरूस्थल और सागर
पार करना था दधि को तैर करके
नाप आना था चराचर सैर करके
नील नभ की परिधि की थी थाह पानी

उच्चतम अभियान की थी राह पानी।'

विद्यापति और कालिदास जैसी समृद्ध क्लासिक परम्परा, कबीर जैसा खाँटी विद्रोह, तुलसी की विविधता, निराला के व्यक्तित्व और सौन्दर्य बोध प्रेमचन्द की सहज सरल यथार्थवादिता के साथ-साथ मुक्तिबोध के गतिशील यथार्थ को किसी एक साहित्यकार में साकार होता देखना चाहे तो हमारे भारतीय वाङ्मय में वे अकेले नागार्जुन हैं। नागार्जुन की रचनाएं शोषित, अपमानित और प्रताड़ित जन-जन की समग्र अन्तर्ध्वनि है। उपेक्षा, दमन और शोषण की मुक्ति के लिए 'प्रतिबद्ध हूँ-जी हाँ शतधा प्रतिबद्ध हूँ' और 'हिंसा' मुझसे थर्रायेगी मैं तो उसका खूनपियूँगा। जैसी पंक्तियाँ लिखने वाले बाबा प्रतिहिंसा को ही अपना स्थयी भाव मानते हैं। निर्भीकता और आस्था की ऐसी आम, विचारों का ऐसा ताप अब कविता में 'लुप्त होता जा रहा है, अन्तर्मन के आक्रोश और जूझने के हौसले को बाबा ने कभी मन्द नही होने दिया। विषमता भरे समाज में जनता की दुर्दशा से व्यथित कवि की वाणी कठपुतलियों को नचाने वाले हाथों को अंगारों जैसे आग उगलते शब्दों में चुनौती द्रेते हैं। यही हाल हम इस जन कवि के उपन्यासों मे भी देख सकते हैं। वो चाहे 'रति नाथ की चाची' की बात हो, 'बलंचनमा' या फिर 'पारो'। इसके प्रत्येक पात्र लगते हैं जैसे हमारे ही बीच के हों और प्रत्येक घटना जनसामान्य के बीच की घटना लगती है। जन सामान्य की बात वही कह सकता है जो हमारे बीच का हो और हर घटना से जुड़ा महशूस करता हो। बाबा नागार्जुन ऐसे ही रचनाकार है। बाबा नागार्जुन को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे कि इतने महान कवि को न पढ़कर अपने ही बीच में प्रत्येक दिन उठने बैठने वाले किसी व्यक्ति को पढ़ रहा हूँ।

अध्याय–1

नागार्जुन का व्यक्तित्व, रचना संसार एवं विचार धारा

जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व :

भारतीय जनमानस से गहरे रूप में जुड़े हुये रचनाकारों में नागार्जुन[1] अग्रगण्य हैं। नागार्जुन ऐसे साहित्यकार हैं जिन्होंने भारतीय जनता की शोषण जनित पीड़ाओं के यथार्थ का पूरा एहसास कराया।

मैथिली और हिन्दी साहित्य में समान रूप से अधिकार रखने वाले[2] वैद्यनाथ मिश्र अर्थात् नागार्जुन का जन्म जून 1911 ई. में हुआ था। वैसे अपनी जन्मतिथि के सम्बन्ध में नागार्जुन को स्वयं संदेह है। इनके पिता का नाम पं. गोकुल मिश्र और माता का नाम उमा देवी था। आपको चार वर्ष की अल्पआयु में ही मातृ वियोग सहना पड़ा था।[3] चार भाई और बहनों की शैशवावस्था में ही मृत्यु हो जाने पर इनके पिता ने एक महीने का अनुष्ठान वैद्यनाथ धाम में कराया तदुपरान्त इनका जन्म हुआ, इसी से इनका नाम भी वैद्यनाथ मिश्र पड़ा। अति रमणीय नाम से सशंकित घर व रिश्ते की वृद्धाओं ने इनका नाम ढक्कन रख दिया। गांव के बड़े बूढ़े आज भी इन्हें इसी नाम से पुकारते है। नागार्जुन ने लिखा है–

> 'हमगॉव जायेंगे तो बूढ़े लोग अब भी बुलायेंगे ढक्कन नागार्जुन कहने से नहीं चीन्हेंगे।'[4]

प्राचीन मिथिला के दरभंगा से कुछ दूर पूरब में तरौनी गॉव इनकी जन्मभूमि है। पूर्वजों से यजमानी और पुरोहिती का काम इनके यहां चला आ रहा है किन्तु उनका "बचपन पाण्डित्य परम्परा से, अनुष्ठान वैभव से भी नहीं जुड़ा है।'[5] नागार्जुन का जन्म अत्यन्त साधारण किसान परिवार में हुआ। संयोग की बात है कि वह परिवार ब्राह्मण था। ब्राह्मणवाद का दम्भ वहां नहीं हो सकता था। यह दम्भ तब होता जब उनका वातावरण ऐश्वर्य सम्पदा और विधि–निषेधों, अनुष्ठानों से बना होता।

बचपन से ही मॉ के स्नेह से वंचित कवि को विरासत में परिवार की दरिद्रता और पिता का दुर्व्यवहार मिला जिसे उन्होंने स्वयं स्वीकार करते हुए लिखा है–

> 'पैदा हुआ मैं। दीन हीन अपठित किसी कृषक कुल में।

आ रहा हूँ पीता, अभाव का आसव ठेठ बचपन से।'

इनकी माँ की मृत्यु हो जाने के उपरान्त इनके पिता ने इनकी विधवा चाची को अपना लिया जो इनके मन में वितृष्णा का भाव जागृत करने का कारण बनी, क्योंकि इसी स्त्री के कारण इनकी माँ को पिता की अमानुषिक, बर्बर एवं पाशविक यातनायें उठानी पड़ती थी। यही कारण था कि उनके मन में पिता से बदला लेने की भावनायें उठी थी। यही वितृष्णा और क्रोध कवि के साहसिक मन की नींव बने क्योंकि जीवन की सुबह का प्रभाव बचपन से आरम्भ होकर बहुत लम्बे समय तक व्यक्ति के मन पर हाबी रहता है।

गरीबी एवं अभाव के कारण इन्होंने बचपन में गाँव की संस्कृत पाठशाला से ही शिक्षा ग्रहण की। प्रथमा की परीक्षा 1925 में उत्तीर्ण करने के पश्चात् वैद्यनाथ गाँव से दूर बिनौली में मध्यमा की पढ़ाई करने पहुँचे। मध्यमा की शिक्षा के उपरान्त काशी शास्त्री बनने गये। इन्होने गर्वनमेन्ट कालेज, कलकत्ता में काव्य तीर्थ का भी अध्ययन किया। इसके बाद ही इनके विवाह की औपचारिकता भी पूरी कर दी गयी परन्तु अपने घुमक्कड़ी स्वभाव के कारण मात्र चार माह तक पत्नी के सानिध्य में रहे[6] और उसके उपरान्त ये विभिन्न स्थानों पर घूमते–घामते 1936 में श्रीलंका जा पहुँचे।

वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' का नागाजुर्न के रूप में उदय तब हुआ जब उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। आजकल कुछ लोग इस घटना को बढ़ा–चढ़ा कर इस रूप में पेश करते हैं कि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने का पाप धोने के विचार से वैद्यनाथ मिश्र बौद्ध बन गये।[7] इससे परिणाम यह निकलेगा कि नागांजुर्न की काव्य चेतना किसी न किसी रूप में ब्राह्मणवाद से आकांत है। बौद्ध धर्म में उनकी दीक्षा इस आकांतता की प्रतिकिया हैं। लेकिन वास्तविकता इससे भिन्न है। आलोचना के एक अंक में एक साक्षात्कार में नागार्जुन ने अपने बौद्ध बनने की कथा बतायी है। राहुल सांकृत्यायन द्वारा अनूदित 'सयुक्त निकाय' पढ़कर उनकी इच्छा हुई कि यह ग्रन्थ उसके मूल रूप में पढ़ा जाये। पालि सीखने का संभव उपाय था लंका जाकर वहां के बौद्ध मठों में रहना।

इसी लालसा से वे श्रीलंका जा पहुँचे । नागार्जुन वहां पालि पढ़ते थे और मठ में 'भिक्षुओं' को संस्कृत पढ़ाते थे। 'मठ में रहना और भिक्षु न होना, इसमें बड़ी झंझट बाजी थी। कायदा यह होता है कि जो भिक्षु बन गया हो सो उच्चतर आसन का अधिकारी हो गया, भले ही उम्र में छोटा होगा तो भी 'भिक्षु' आपसे ऊँचे आसन पर बैठेगा। मठ में जितने भी शिष्य हमसे संस्कृत सीख रहे थे, सब भिक्षु थे। वे बैठे ऊँची कुर्सी पर, हम बैठे नीची कुर्सी पर। उन्होंने कहा कि गुरूजी यह ठीक नहीं लगता। अन्य भी कई बातों में भिक्षु और भिक्षु में इतना–इतना फर्क कि क्या बतायें। तो हमने कहा कि चलो शिष्य की ही बात मान लें।'[8]

यह है नागार्जुन के बौद्ध बनने की कथा। अगर ब्राहमणवादी संस्कार की आक्रांतता की प्रतिक्रिया के कारण वे बुद्ध की शरण में आते तो ब्राह्मण संस्कारों के प्रति उग्रतापूर्ण प्रदर्शनवाद का परिचय देते, बौद्ध संघों के प्रति भावुकतापूर्ण श्रद्धा की झलक दिखाते, आलोचनात्मक विवेक, जो उनका प्रधान गुण है, से कार्य न लेते।

जिस प्रकार घुमक्कड़ी नागार्जुन को संस्कार में मिली उसी प्रकार अभाव और आलोचनात्मक विवेक भी उन्हें सहज संस्कार के रूप में प्राप्त हुआ। अन्तर इतना था कि घुमक्कड़ी पिता से मिली और आलोचनात्मक विवेक अभावग्रस्त जीवन और पिता की मानवीय कमजोरियों से उत्पन्न विषम पारिवारिक स्थिति के दबाव से । यह संस्कार ऐसा है कि नागार्जुन ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर भी ब्राह्मण नहीं है, 'बुद्ध शरणं' जाकर भी बुद्ध नहीं है। इससे परिणाम यह निकलता है कि नागार्जुन ने बौद्धधर्म में दीक्षित होने के बाद, उसके साहित्य और व्यवहार का अध्ययन करने के बाद अपने चिन्तन और अनुभव को समृद्ध किया, लेकिन अपने सहज आलोचनात्मक विवेक को कभी नहीं त्यागा। नागार्जुन के सृजन का पहला संघर्ष धर्म की जकड़बन्दी के खिलापफ चला। वे परम्परा से जुड़ते हैं, लेकिन उसे अविवेकपूर्ण स्वीकार नहीं कर लेते।

नागार्जुन का यह मानवतावाद एक तरफ वैज्ञानिक चिन्तन की तरफ अभिमुख है और दूसरी तरफ समाज के अर्न्तविरोधों के खिलाफ एक सजग रचनाकार की तीव्र

प्रतिक्रिया से सम्बद्ध है। नागार्जुन की इस चेतना का आधार निर्मित हुआ किसान आन्दोलन में उनकी भागीदारी के बीच। लंका के बौद्ध मठ में नागार्जुन जो अनुभव कर रहे थे, उसे देखते हुए वहां उनका अधिक दिन ठहरना असम्भव था। उन्होंने बिहार में किसान आन्दोलन के जनक स्वामी सहजानन्द से पत्र–व्यवहार किया और हिन्दुस्तान वापस लौट आये। स्वामी जी ने उनसे कहा कि, 'क्या करोगे पुरातत्व का, पुरालेख का, नये तत्वो से जुझो, नये लेख को बाँचों।'[9] बाद में जब नागार्जुन राहुल जी के साथ तिब्बत यात्रा पर रवाना हुए तो बीच से ही वापस लौट आये। कहते हैं तबियत खराब हो गयी थी। लेकिन 'यह बात भी मन के किसी कोने में थी कि वर्तमान से मुँह मोड़कर अतीत में भागना ठीक नहीं।'[10] लौटकर नागार्जुन सहजानन्द जी के साथ किसान आन्दोलन से जुड़ गये तथा 'दो वर्ष में तीन बार जेल गये।'[11]

डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है, 'नागार्जुन जितने क्रांतिकारी सचेत रूप से हैं, उतने ही अचेत रूप से भी हैं।'[12] नागार्जुन के सहज संस्कार और सजग विचारधारा में विरोध नहीं है। इसका कारण यह है कि अपने जीवन की स्थिति से, अपने विविध अनुभवों के प्रसंग में नागार्जुन की चेतना की जो आधार भूमि तैयार हुई उसकी स्वाभाविक परिणति क्रांतिकारी दिशा में ही हो सकती थी। इसीलिये जब वे मार्क्सवाद और वैज्ञानिक चिन्तन के करीब आये तब वे उनकी संस्कार की दुनियां के साथ घुलमिल गये। इससे उनके सृजन पर यह प्रभाव पड़ा। कि व्यक्तिगत अनुभवों को सार्वजनिक रूप में ढालने का जटिल कार्य नागार्जुन ने अत्यन्त सरलता के साथ किया है।'[13]

उन्होंने स्वीकार किया, 'शोषक और तानाशाही शक्तियों के खिलाफ जनमत तैयार करना मेरा पहला काम हो जाता है। संघर्ष के लिए जो प्रतीक मुखरित होते हैं उन्हें उभारता हूँ ताकि रग–रग में माहौल पैदा हो जाये।'[14]

अपने रचना संसार में नागार्जुन ने शोषित वर्ग को ही स्थान दिया है। वे उनके मार्मिक दु:खों का चित्रण इस जीवन्तता से करते हैं कि पाठक अभिभूत हो जाता है। चूंकि उनका स्वयं का सम्बन्ध शोषित वर्ग से रहा है और उन्होंने जीवन के यथार्थ का

स्वयं साक्षात्कार किया है अतः स्वाभाविक रूप से उनका झुकाव मजदूरों और किसानों की पीड़ा की अभिव्यक्ति की ओर रहा है।

इस प्रकार कुल मिलकर वैद्यनाथ मिश्र, ठक्कन, वैदेह, यात्री और नागार्जुन नामों की यात्रा करते हुए आज के बाबा का निर्माण हुआ है जो रीझ गये तो शिव की भाँति एवमस्तु, रूठ गये तो दुर्वासा की भाँति विकट प्रचण्ड।

रचना संसार :

नागार्जुन आधुनिक युग की लोक चेतना के लेखक हैं। उन्होंने एक ओर तो वर्ग–संघर्ष से पीड़ित समस्त मानव के प्रति गहन संवेदना व्यक्त करते हुए इसके लिए उत्तरदायी व्यवस्था के विरुद्ध तीव्र आक्रोश प्रकट किया और दूसरी ओर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी बहुसंख्यक जनता को अभावों, कष्टों एवं पीड़ाओं में लीन देखकर स्वदेशी शासकों के अनुचित कार्यों के प्रति प्रखर एवं प्रकृष्ट व्यंग्य वर्णों की बौछार की है।

राहुल जी से प्रेरित होकर जहां नागार्जुन ने राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण किया, वहीं निराला जी से प्रेरित होकर साहित्यिक क्षेत्र में कलम सम्भाली। यही कारण है कि राजनीतिक दृष्टि से जहां नागार्जुन पूर्णतया साम्यवादी विचारधारा की ओर उन्मुख हुए वहीं साहित्यिक दृष्टि से वे रचना की उस साम्यवादी विचारधारा को लेकर चले, जिसमें यथार्थ के सुदृढ़ धरातल पर मानव–जीवन के चित्र अंकित किये गये। इसी कारण नागार्जुन की रचनाओं में निराला का सा आक्रोश है, निराला का सा क्षोभ है, निराला की सी अक्खड़ता है, निराला का सा तीव्र व्यंग्य है निराला ने जिस प्रकार आधुनिक युग में अपने साहित्यिक माध्यम से नयी चेतना जागृत की थी, नयी क्रांति की प्रेरणा दी थी, साम्राज्यवाद का घोर विरोध किया था, मानव प्रेम का प्रसार किया था, जन–जीवन को उन्नत एवं उत्कृष्ट बनाने के लिये प्रोत्साहन दिया था, प्राचीन रूढ़ियों को समाप्त करने के लिए अभियान चलाया था, परम्पराओं का अच्छेदन किया था, भेदभाव मिटाने का प्रयत्न किया था और 'नवगति, नवलय, ताल, छंद', नवधरती, जनता और श्रम के गीत गाये थे, निःसन्देह उसी प्रकार नागार्जुन ने पीड़ित जनता के कष्टों को स्वर प्रदान का

है, अभाव ग्रस्त निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट की, अभावों में लालित-पालित तथा कष्टों से जूझने वालों के प्रति संवेदना व्यक्त की है, समाज की यन्त्रणाओं और पीड़ाओं से संत्रस्त मानव के उत्थान के लिये क्रान्ति का आह्वान किया है, उच्च समाज के शोषण जनित कार्यों का विरोध किया है और वीरता के साथ संघर्षरत सर्वहारा वर्ग का स्त्रवन किया है।

नागार्जुन के हृदय में भारतीय जन-जीवन के लिये अटूट स्नेह भरा हुआ है और भारत भूमि के अणु-अणु और कण-कण के प्रति अगाध श्रद्धा भक्ति भरी हुई है। इसीलिए इस विद्रोही कवि ने जन-जीवन को यातना एवं प्रताणना से बचाने के लिए क्रांति का आह्वान किया। उन्होंने जन-जीवन को अपनी साहित्य का माध्यम बनाया है और इसीलिये, 'नागार्जुन सर्वहारा कविता की धारा को तीव्र कर देते हैं। इनमें मजदूर वर्ग की संघर्षशील चेतना सम्मुन्नत रूप में प्रकट हुई है। पूँजीवादी चट्टानों से टकराती, भयंकर संघर्षों में तपती, मजदूर वर्ग की हिमायत करती हुई नागार्जुन की काव्यधारा जनवादी परम्पराओं के आगे बढ़ी है।'[15]

कवि नागार्जुन में न ब्राह्मण की हठधर्मिता है, न बौद्ध भिक्षुओं की निरीहता, न अन्य वामपंथी साहित्यकारों की भाँति लिजलिजीक्रांति चेतना वरन् प्रचण्ड ज्ञान से दूसरों की आवाज बन्द कर देने की शक्ति है और कबीर की भाँति सबको डॉट-फटकार सुनाने का साहस। कवि नागार्जुन में रहनुमा या मसीहा बनने की ललक नहीं है न किसी प्रकार का दर्प। 'उनके पास अनुभव और विचार की वह सर्वजित भूमि है, जहां से ये प्रहार करते हैं और हर बार जब वे प्रहार करते हैं तो कुछ न कुछ बहुत मूल्यवान दांव पर लगा होता है जिसे वह हर कीमत पर बचा लेना चाहते हैं। अकसर जो दांव पर लगा होता है वह होता है देश का सबसे पीड़ित जन।'[16]

हिन्दी काव्य साहित्य में नागार्जुन का प्रवेश एक क्रांतिकारी कवि के रूप में होता है। वे सच्चे अर्थों, में सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। उनका सम्पूर्ण प्रगतिवादी काव्य जीवन के यथार्थ पर आधारित है। उनकी दृष्टि व्यापक और भावनायें

उदात्त है। जहां उनका अपनी मातृभूमि 'मिथिला' के प्रति अटूट प्रेम है, वहीं उनकी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय लोक–कल्याणकारी भावनायें भी उनके साहित्य में स्थान–स्थान पर देखी जा सकती है। तीखा व्यंग्य ही नहीं, सामाजिक रूढ़ियों के प्रति किये गये व्यंग्य भी बड़े तीखे और हृदय स्पर्शी हैं।

नागार्जुन ने राजनीतिक विषयों, पर भी लिखा है। देश–विदेश की समसामयिक घटनाओं पर सम्भवतः सबसे अधिक कवितायें और उपन्यास उन्होंने ही लिखी है। नागार्जुन जन–मन के सजग चितेरे हैं। शोषकों और अत्याचारियों के लिए उनके यहां प्रतिहिंसा का स्थाई भाव है।

नागार्जुन की विचारधारा :

सामान्यतः उच्च कोटि के रचनाकार किसी न किसी विचारधारा से प्रतिबद्ध होते हैं। विचारधारा रचनाकार के लिए दृष्टि का काम करती है। वह रचनाकार को एक निर्दिष्ट मार्ग पर चलने के लिए प्रोत्साहित करती है। इसलिए विचारधारा से प्रतिबद्ध होकर रचनाकार का लेखन तरह–तरह के भटकावों से बच जाता है। विचारधारा से रचनाकार के प्रतिबद्ध होने का महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि वह उसके लेखन को सोद्देश्य बनाती है, साथ ही विषय–वस्तु के चयन में तथा उसके रचनात्मक उपयोग में वह रचनाकार की मदद करती है। विचारधारा रचनाकार को एक दृष्टि प्रदान करती है, जिससे वह अपने समय के सवालों से टकराते हुए इस बात का निर्णय करता है कि रचना में उसे किसका पक्ष लेना और किसका विरोध करना है।

उद्देश्य विहीन अथवा विचार विहीन साहित्य को, उत्कृष्ट साहित्य नहीं कहा जा सकता। क्योंकि साहित्य एक विचारधारात्मक संरचना है। साहित्य केवल मनोरंजन अथवा दिल बहलाने के लिए नहीं लिखा जाता, उसका एक निश्चित उद्देश्य होता है। इसीलिए लेखक प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी विचारधारा का पक्षधर अथवा विरोधी होता है। जहां तक नागार्जुन की बात है, वह वामपंथी विचारधारा से प्रतिबद्ध

रचनाकार है। लेकिन सुखद बात यह है कि उन की प्रतिबद्धता, सबसे पहले गरीब किसानों–मजदूरों के प्रति है, उसके बाद किसी राजनीतिक अथवा दार्शनिक विचारधारा के प्रति। उन्होंने अपनी पहली प्रतिबद्धता का उल्लेख करते हुए लिखा है –

'प्रतिबद्ध हूं, जी हां प्रतिबद्ध हूं –

बहुजन समाज की अनुपल प्रगति निमित्त ।'[17]

इन पंक्तियों में नागार्जुन ने घोषित रूप से स्वीकार किया है कि उनकी पहली प्रतिबद्धता 'बहुजन समाज' के प्रति है। वैसे भी, एक महत्वपूर्ण रचनाकार सबसे पहले अपने आस पास के समाज से जुड़ा होता है। वह इसी समाज की व्यापक अनुभव प्रक्रिया से गुजर कर एक रचनाकार बनता हैं। उसकी दृष्टि भी समाज के घटना–प्रवाह और जीवन जगत् की सूक्ष्म अनुभूतियों की उपज होती है। यह अनायास नहीं है कि एक बड़ा रचनाकार किसी राजनीतिक अथवा दार्शनिक विचारधारा से अधिक महत्व उस विचार दृष्टि को देता है जिसे उसने जीवन जगत के व्यापक अनुभवों से प्राप्त किया है। स्वयं नागार्जुन इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनकी पहली प्रतिबद्धता अपने आस पास के समाज और उसकी अनुभूतियों से जुड़ी हुई है। वे कहते हैं–'अस्सी प्रतिशत जनता हमारी इष्ट देता है, जो जीवन के आस पास फैली हुई है। मैं भी उन्हीं के साथ जुड़ा हुआ हूं। मैं समाज के घटना प्रवाह से विच्छिन्न नहीं हूँ।'[18] आशय यह है कि नागार्जुन अपने लेखन में उस बहुजन समाज की आशाओं–आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देते हैं, जिससे वे संवेदन के स्तर पर गहराई से जुड़े हुए है।

'बहुजन समाज' के प्रति प्रतिबद्ध होने का अर्थ यह नहीं है कि किसी राजनीतिक विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता से परहेज रखा जाय। राजनीतिक विचारधारा भी लेखक के लिए उपयेगी हो सकती है, बशर्ते कि वह जीवन और जगत को समझने में तथा उनके सवालों से टकराने में लेखक की मदद करें। लेकिन वह विचारधारा जो लेखन को जीवन और जगत की वास्तविकताओं से पालयन की ओर ले जाती है, निश्चित तौर से अनुपयोगी होती है। नागार्जुन वामपंथी विचारधारा से प्रतिबद्ध हैं, तो इसका प्रमुख

कारण यही है कि यह विचारधारा जीवन-जगत को और उसके सवालों को समझने में लेखक की मदद करती है।

नागार्जुन को राजनीति से गहरा सरोकार रहा है। वे साहित्य को राजनीति से बिलकुल विच्छिन्न नहीं मानते थे। स्वयं उनका लेखन इसका प्रमाण है कि वे राजनीति से गहरे रूप में प्रभावित रहे हैं। वैचारिक स्तर पर वे राजनीति और राजनीतिक विचारधारा से पहली बार सन् 1930 के आस पास प्रभावित होते हैं, गांधीवाद से। इस सम्बन्ध में वे कहते हैं- 'पहला संपर्क जो हुआ, वह गांधीवाद से हुआ, चूंकि हमारे कई मित्र थे जो काशी विद्यापीठ में पढ़ते थे और वह गांधीवाद का गढ़ था। इसी कारण मुझमें एक राष्ट्रवादी सम्मान भी पैदा हुआ।'[19] गांधी जी के तत्कालीन युग-व्यापी प्रभाव को देखते हुए नागार्जुन का उनसे प्रभावित होना स्वाभाविक था। नागार्जुन ही नहीं, इस दौर के सभी प्रमुख रचनाकार-जिनमें से अधिकांश रचनाकारों का बाद के दिनों में गांधीवाद से मोहभंग हो जाता है, गांधीवाद से प्रभावित हुए थे। नागार्जुन गांधीवाद के प्रभाव से बहुत जल्दी मुक्त हो जाते हैं, लेकिन आश्चर्य जनक बात यह है कि गांधीवाद से मुक्ति पा जाने के बाद भी वे उनके 'राष्ट्रवादी' प्रभाव से बहुत दिनों तक मुक्त नहीं हुए। सन् 1962-63 में उन्होंने जो चीन और चीन समर्थक कम्युनिस्टों के विरोध में कविताएं लिखी थी, उसके पीछे वहीं राष्ट्रवादी सम्मान की भावना विद्यमान थी। स्पष्ट है कि गांधीवाद से पीछा छुड़ाकर और गांधीवाद का विरोध करते हुए भी एक हद तक वे गांधीवाद के प्रभाव में बने रहे। इसका प्रमाण हम 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में ढूंढ़ सकते हैं। इस उपन्यास की नायिका 'चाची' का चरखा चलाना और सादगी तथा सदाचार का पालन करना जैसे कृत्यों के मूल में गांधीवादी प्रभाव देखा जा सकता है।

नागार्जुन वैचारिक स्तर पर गांधीवाद और कांग्रेस के मुखर विरोधी रहे हैं और इसके पीछे कारण यह है कि उनकी वामपंथी विचारधारा में गहरी आस्था रही है। वामपंथी विचारधारा का उनके उपर पहला प्रभाव-अत्यन्त क्षीण रूप में, वाराणसी प्रवास के दौरान पड़ा था। वे कहते हैं- 'काशी में रहते वक्त पंडिताउ परिधि के अन्दर पहली

बार मुझे पता चला कि प्रगतिशीलता किसे कहते हैं।'[20] उसमें इस विचारधारा की हलकी फुलकी समझ श्रीलंका प्रवास के दौरान विकसित हुई। वे कहते हैं– ' सन् 1937 में लंका के विद्यालंकार के महाविहार में रहते वक्त वहां के समाजवादी अध्यापक साधुओं से मेरा प्रथम परिचय हुआ, और तभी मार्क्स, लेनिन, स्टालिन की कुछ एक पुस्तकों को पढ़ने का मौका मिला।'[21] बौद्ध भिक्षु बनने के बाद उनमें जो वामपंथ की आरम्भिक समझ विकसित हुई थी, उसे प्रौढ़ता मिली, स्वामी सहजानंद से संपर्क होने के बाद। नागार्जुन कहते हैं, सन् 1938 में श्रीलंका से वापिस आने पर अपने राजनैतिक गुरू विख्यात किसान नेता स्वामी सहजानन्द के साथ में समर स्कूल आफ पालिटिक्स के क्लास में सम्मिलित हुआ। वहां समूचे भारत के तपे तपाये और सिद्धान्तवादी सोशलिस्ट कम्युनिस्ट और कांग्रेसी टाइप के प्रखर राष्ट्रवादी समाजवादी नेता क्लास लिया करते थे। मैं बौद्ध–साधु, भिक्षु नागार्जुन की भूमिका में शिक्षण शिविर में प्रारंभ से अंत तक लगभग तीस दिन रहा।[22] यही मार्क्सवाद (वामपंथ) का सैद्धान्तिक ज्ञान अर्जित करने के बाद उन्होनें बिहार के किसान आन्दोलन में भाग लेकर इसे अपने व्यावहारिक जीवन में भी उतारा। वामपंथी विचारधारा का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान का परिणाम है कि उनके उपन्यासों में समाजवादियों, साम्यवादियों के जो चरित्र उभरे हैं, वे अपने समाज और परिवेश की उपज लगते हैं, लेखक के हाथों के खिलौने नहीं। 'बलचनमा' के 'राधा बाबू' हों, डा0 रहमान हों, 'रतिनाथ की चाची' के ताराचरण हों अथवा 'वरूण के बेटे' के 'मोहन मांझी'– ये सभी चरित्र यदि अपने परिवेश की उपज लगते हैं– हालांकि एक हद तक ये भी प्रचार बहुलता की प्रवृति से ग्रस्त हैं, तो इसका एक मात्र कारण यही है कि लेखक को वामपंथ का सिर्फ किताबी ज्ञान ही नहीं है, वरन् उसका व्यावहारिक ज्ञान भी है।

वामपंथी विचारधारा के प्रतिबद्ध, नागार्जुन अपने आरंभिक दिनों में समाजवादियों के प्रति आस्थावान रहे। 'बलचनमा' में बलचनमा की राधा बाबू के प्रति 'सर्धा' इसलिए हो जाती है क्योंकि वे बाद के दिनों में समाजवादी हो जाते हैं। यहां स्पष्ट करना

आवश्यक है कि समाजवादियों के प्रति बलचनमा की श्रद्धा अथवा स्वयं बलचनमा का समाजवादी होना लेखक की समाजवादियों के प्रति गहरी आस्था का प्रमाण है। लेकिन, उल्लेखनीय है कि यायावर वृति वाले नागार्जुन समाजवादियों के प्रति भी बहुत दिनों तक आस्थावान नहीं रहे हैं। वे कुछ दिनों के बाद समाजवादियों के विरोधी हो गये। समाजवादियों से विरोध का क्या कारण था? इस संबंध में वे लिखते हैं–'पहले सोसलिस्ट पार्टी देहातों में किसानों का साथ देती थी, जमींदारों के खिलाफ देहातियों के बीसियों मोर्चे पार्टी के निगरानी में जहां तहां कायम हुये थे........ लेकिन पिछले पांच वर्षों में सोसलिस्टों का तेज घटता आया है। कसूर इसमें पार्टी के साधारण कार्यकर्ताओं का नहीं, बल्कि उपर की सोसलिस्ट नेताशाही का था।'[23] यही वजह है कि नागार्जुन की आस्था समाजवादियों से उठ जाती है। और उनका क्षुकाव समाजवादियों की ओर हो जाता है। 'वरूण के बेटे" में मोहन मांझी का समाजवादियों से मोह भंग स्वय् लेखक का मोह भंग है और उसका समाजवादी होना लेखक का साम्यवादी होना है। लेखक मोहन भांझी की इस बात के लिए प्रशंसा करता है कि 'अव वह हंसिया–हथौड़ा–मार्का लाल झण्डावाली' किसान सभा का थाना–सभापति था। इससे पहले प्रजा समाजवादी पार्टी की जिला कमेटी का सदस्य था।[24] कहना न होगा कि मोहन मांझी के राजनीतिक विचारों का परिवर्तन स्वयं लेखक के राजनीतिक विचारों का परिवर्तन है।

नागार्जुन साम्यवादियों से जुड़ने के बावजूद पार्टीवादी नहीं बने। उन्होनें कभी भी पार्टी की शर्तों पर वामपंथी विचारधारा का उपयोग अथवा दुरूपयोग नहीं किया। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि उन्होनें अपने विवेक को पार्टी प्रतिबद्धता से अधिक महत्व दिया। यही कारण है कि कुछ मुद्दों पर उनकी साम्यवादी पार्टियों और साम्यवादी नेताओं से बराबर अनबन होती रही। सन् 1962 के चीन–आक्रमण के बाद उन्होंने चीन और मार्क्सवादियों के खिलाफ बहुत सारी कविताएं लिखीं, जिसके कारण उन्हें पार्टी सदस्यता से इस्तीफा देना पड़ा और उग्र मार्क्सवादियों से भी बहुत भला–बुरा सुनना

पड़ा। ध्यातव्य है कि इस दौर के कुछ अति मार्क्सवादियों ने नागार्जुन को 'अराजकतावादी' और सर्वनकारवादी जैसी संज्ञाओ से विभुषित (?) किया था। इन मार्क्सवादियों की नाराजगी का एक मात्र कारण यह था कि नागार्जुन पार्टी प्रतिबद्धता से अधिक महत्व अपने विवेक को देते हैं। सवाल यह है कि क्या पार्टी से प्रतिबद्धता ही रचनाकार की ईमानदारी प्रमाण है? चाहे पार्टी का चरित्र प्रतिक्रियावादी ही क्यों न हो। पार्टी से चिपके रहना एक राजनीतिज्ञ की विवशता हो सकती है, साहित्यकार की नहीं। साहित्यकार पार्टी का और पार्टीगत राजनीति का पिछलग्गू नहीं होता, वह सबसे अधिक भरोसा अपने विवेक पर करता है। नागार्जुन ने कहा है कि हम संगठन के विरूद्ध नहीं है, लेकिन संगठन का साथ देने का मतलब अगर यह लगाया जाता है कि हम अपने विवेक के शत्रु हो जाएं तो हमें स्वीकार नहीं।'[25] विवेक पर भरोसा होने के कारण लेखक को पार्टी की शर्तों पर काम करना मंजूर नहीं है। नागार्जुन का मानना है कि लेखक अपने विवेक के आधार पर पार्टी के विचारों का समर्थन अथवा विरोध करने के लिए स्वतंत्र होता है। नागार्जुन ने कहा है कि 'बाहर–बाहर तो हम प्रगतिशील बने रहें और भीतर वही प्रतिक्रियावाद काम करता चले तो फिर कैसी राष्ट्रीयता और कैसी साम्यवादिता।'[26] तात्पर्य यह है कि केवल सिद्धान्त के स्तर पर मार्क्सवादी बने रहने से काम नहीं चलेगा। मार्क्सवाद को व्यावहारिक स्तर पर भी अपनाना होगा। इसके लिए मार्क्सवाद और मार्क्सवादियों को अपने यहां की जनसंस्कृति और जनसंघर्षों से जुड़ना होगा। रूस और चीन के प्रति अधिक जुड़ने की अपेक्षा अपने राष्ट्रीय सन्दर्भों से जुड़ना होगा। नागार्जुन ने लिखा है–'अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद जब राष्ट्रीय हो लेगा, तभी वह राष्ट्रीय मार्क्सवाद की संज्ञा पा सकेगा। मेरे लिए इसका मतलब स्थानीय समस्याओं से निकट के संघर्षों से जुड़ना है।'[27] अन्यत्र उन्होनें कहा है– 'मैं स्थानीय घटनाओं से निर्लिप्त होकर मार्क्सवादी नहीं रहना चाहता।'[28] कहना न होगा कि इन कसौटियों पर भारतीय मार्क्सवाद और यहां के मार्क्सवादी कभी भी पूरी तरह खरे नहीं उतरे। यही कारण है कि यहां का मार्क्सवाद और यंहा के मार्क्सवादी भारतीय राजनीति में अपनी

महत्वपूर्ण भूमिका के रेखांकन में अभी तक असफल रहे हैं। जाहिर है कि नागार्जुन ने जिन मार्क्सवादियों (साम्यवादियों) का विरोध किया था, उनका चरित्र इसी लायक था। इसलिए नागार्जुन को 'सर्वनकारवादी' और 'अराजकतावादी' कहने वाले निश्चित तौर से नागार्जुन के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं। डा० विश्वनाथ त्रिपाठी ने सही लिखा है कि 'नागार्जुन वामपंथी रचनाकार है। वामपंथी पार्टियों की तात्कालिक नीतियों पर उन्होनें बहुत चोटें की हैं— देशी विदेशी सभी वामपंथी पार्टियों पर और ज्यादातर मामलों में इतिहास ने उन पार्टियों को गलत साबित किया है और नागार्जुन को सही।'[29] कहने का आशय यह है कि वामपंथी पार्टियों की आलोचना करने मात्र से नागार्जुन को प्रतिक्रियावादी नहीं कहा जा सकता । उनका सम्पूर्ण लेखन इस बात का प्रमाण है कि वामपंथीयों का और वामपंथी पार्टी का विरोध करते हुए भी विचारधारा के स्तर पर वे वामपंथ से जुड़े रहे। यह विचारधारा उनके सम्पूर्ण लेखन में विद्यमान है। राजनीति के क्षेत्र में वे गांधीवादी, सुभाषवादी, जयप्रकाशवादी, सभी जमातो में बैठे, इसके बावजूद वामपंथ और 'बहुजन समाज' से उनकी प्रतिबद्धता हमेशा बनी रही यही कारण है कि उनके सम्पूर्ण लेखन मे किसानों – मजदूरों के हितों की बात कही गयी है, उनकी आशायों– आकाक्षाओं को अभिव्यक्ति दी गयी है। और इस वर्ग के खिलाफ काम करने वाली प्रतिक्रियावादी ताकतों की अच्छी–खासी खबर ली गयी है।

1. ''विनोदी स्वभाव, फक्कड़ाना अन्दाज, एकहरा बदन, सस्ता खादी का कुर्ता–पायजामा, सामान्य कद, आंखें पर चश्मा, पैरों में चप्पल, जोशीली मुद्रा वाले, कबीर की भांति मस्त मौला, पीड़ित जनों के कष्टों से व्यथित, मैथिल औघड़, स्वतः के प्रति लापरवाह किन्तु समाज के लिये जागरूक, शोषित असहाय जनता के प्रति संवेदनशील व्यक्ति का नाम है नागार्जुन। '–डा0 रतन, नागार्जुन की काव्य यात्रा, पृ.–2
2. 'नागार्जुन मूलतः मैथिली भाषी है। यात्री' नाम से मैथिली में कविता भी लिखते हैं। मैथिली की अपनी कविताओं पर वे साहित्य अकादमी के पुरस्कार से सम्मानित भी हुए थे।... आरंभिक जीवन में संस्कृत पढ़ते हुये वैद्यनाथ मिश्र (तब नागार्जुन नहीं हुए थे) संस्कृत के अलावा अपनी अवधी और ब्रज की कविताओं से जो पुरस्कार जीतते थे, उसी से अपना खर्चा चलाते थे।... नागार्जुन का अधिकांश जनवादी काव्य संस्कृत में है।'

   –अजय तिवारी, नागार्जुन की कविता, पृ. –28
3. 'स्वभावतः बुद्धि के प्रति आकर्षण का कारण है, मातृत्व की भूख। वह उसकी मानवीय आकांक्षा है।...' –वही, पृ. 30–31.
4. नागार्जुन की काव्य यात्रा, डॉ0 रतन, पृ.–1
5. श्री मनोहर श्याम जोशी, आलोचना, पृ. 56–57
6. इस घुमक्कड़ी का दुस्परिणाम यह हुआ कि आय का नियमित श्रोत न बन सका और वे 'सफल गृहस्तथ न बन सके। इस संसारिक असफलता के साथ–साथ उनकी घुमक्कड़ी का जो लाभ उनके कवि को मिला उसे हम उनकी कविता में सहज भी देख सकते हैं। भारत में पूरब–पश्चिम, उत्तर–दक्षिण सब तरफ की प्रकृति से नागार्जुन का प्रत्यक्ष परिचय है।'

   अजय तिवारी, 'नागार्जुन की कविता पृ.–28
7. कृष्णा शोबती, 'आलोचना', पृ.–56–57

8. नागार्जुन, 'आलोचना', पृ.–56–57

9. आलोचना, पृ.–56–57

10 वही।

11 वही।

12 डॉ0 रामविलास शर्मा, 'नागार्जुन की कविता और अस्तित्ववाद', पृ.– 141

13 अजय तिवारी, 'नागार्जुन की कविता', पृ.– 38

14 सुषमा शर्मा, 'उपन्यास और राजनीति', पृ.– 175

15 प्रो. रामचरण महेन्द्र, 'नागार्जुन के सम्बन्ध में', पृ.– 445

16 श्री केदारनाथ सिंह, 'नागार्जुन की काव्य–यात्रा', पृ.– 4

17 नागार्जुन, प्रतिनिधि कविताएं (सं0 नामवर सिंह), पृ.–15

18. नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार, पृ.–15

19. वही पृ.–189

20 वही पृ.–19

21 वही

22 वही

23 नागार्जुन, बाबा बटेसर नाथ पृ.–139

24 नागार्जुन, वरूण के बेटे, पृ.–26

25 नागार्जुन, मेरे साक्षात्कार पृ.–125

26 वही पृ.–55

27 वही

28 वही

29 विश्वनाथ त्रिपाठी, बाबा नागार्जुन–नागार्जुन : विचार सेतु (सं0 महावीर अग्रवाल), पृ.–42

अध्याय–2

लोक शब्द का अर्थ :

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु से 'घ' प्रत्यय करने पर निष्पन होता है। इस धातु का अर्थ जिसका लट्लकार के अन्य पुरुष के एक वचन का रूप 'लोक' है। अंतः लोक शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला।

इस प्रकार वह समस्त जन–समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाता है। 'लोक' शब्द से ही हिन्दी के 'लोग' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है, जिसका तात्पर्य है सर्व साधारण जनता। अतः 'लोक' शब्द का अभिप्राय उस समस्तजन समूह से है जो किसी देश में निवास करता है।

लोक शब्द अत्यन्त प्राचीन है। यहाँ तक कि वेदों में भी इसका उल्लेख पाया जाता है। साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋगवेद में अनेक स्थानों में किया गया है। इस वेद में लोक शब्द के लिए 'जन' शब्द का भी प्रयोग उपलब्ध होता है। वैदिक ऋषि कहते हैं कि विश्वामित्र के द्वारा उच्चरित यह ब्रह्म या मंत्र भारत 'जन' की रक्षा करता है–

य इमे रोदसी उभेः, अहममिन्द्रमतुष्टतम्,
विश्वामित्रस्य रक्षितः, ब्रह्मदं भारतंजनम्।

ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरूष सूक्त में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीवन तथा स्थान दोनों अर्थों में हुआ है।

'नाभ्या आसीदन्तरिक्ष
शीर्ष्णों द्यौः समवर्तत
पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्,
तथा लोकान कल्पयत्।'

संस्कृत व्याकरण के पिता महर्षि पाणिनी ने अपनी अष्टध्यायी में 'लोक' तथा 'सर्व लोक' शब्दों का उल्लेख किया है तथा इनसे 'ठ ञ' प्रत्यय करने पर 'लौकिक' तथा सार्वलौकिकः शब्दों की निष्पत्ति की है। पाणिनी ने 'वेद' से पृथक 'लोक' शब्द की

सत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने अनेक शब्दों की व्युत्पत्ति को बतलाते हुए लिखा है कि वेद में अमुक शब्द का अमुक प्रकार है। परन्तु लोक में इसका स्वरूप भिन्न है। वररुचि ने अपने वार्तिकों में भी 'लोक' शब्द का प्रयोग किया है।

महाभाष्कार पतंजलि ने भी जन साधरण के अर्थ में 'लोक' शब्द का व्यवहार किया है तथा लोक में प्रचलित 'गौः' शब्द के अनेक अपभ्रंश रूपों का उल्लेख किया है।

महार्षि व्यास ने महाभारत की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह ग्रन्थ अन्धकार रूपी अज्ञान से व्यथित लोक (सामान्य जनता) की आँखों को ज्ञानरूपी अंजन की शलाका लगाकर खोलने वाला है–

'अज्ञान तिमिरान्धस्य,
लोकस्य तुविचेष्टतः,
ज्ञानान्जन शलाकाभिः,
नेत्रोन्मीलन कारकम्।'

इसी प्रकार से महाभारत में वर्णित विषयों की चर्चा करते हुए लोक यात्रा का उल्लेख किया गया है–

'पुराणानां चैव दिव्यानां,
कल्पाना युद्ध कौशलम्,
वाक्य जाति विशेषाश्चः
लोक यात्रा क्रमश्चयः।'

भागवत्गीता में 'लोक' तथा 'लोक संग्रह' आदि शब्दों का प्रयोग अनेक स्थानों पर पाया जाता है। गीता में लोक संग्रह पर बड़ा बल दिया गया है।

''कर्मणैव हिंससिद्धिद्धमास्थिताः जनकादयः
लोक संग्रह मेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि।''

लोक शब्द की परिभाषा के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपना मत अभिव्यक्त किया है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान–

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है कि–

लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरो और गाँवों में फैली हुई वह समस्त जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा, सरल तथा अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएं आवश्यक होती है उन्हें उत्पन्न करते हैं।

भारत के लोक साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान–डा0 कुंज बिहारी दास ने लोक शब्द की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की है।

इससे स्पष्टतया ज्ञात होता है कि जो लोग संस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन परिस्थिति में वर्तमान हैं उन्हें ही लोक कहा जाता है।

लोक एवं संस्कृति :

'संस्कृति' संप्रत्यय कुछ अस्पष्ट सा है। इसके स्थान पर सामाजिक चेतना संत्यय का इस्तेमाल कही अधिक सटीक है। 'संस्कृति' की सभी कृतियाँ यथा–राजनीति, विधि, नैतिकता, कला, विज्ञान दर्शन और धर्म लोगों के आत्मिक कार्यकलाप, मानव की सामाजिक चेतना के मुख्य रूप हैं। मानव के कृतित्व और कर्तव्य की व्याख्या संस्कृति है।

इससे पहले कि मनुष्य सोचे उसे अपने लिये भोजन, वस्त्र, आवास आदि की व्यवस्था करनी पड़ती है। इसका मतलब है कि इतिहास का आधार भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं का उत्पादन है और इतिहास–निर्माण में निर्णायक भूमिका उन लोगों की है जो भौतिक संपदाओं का उत्पादन करते हैं। और वे कौन हैं? मेहनतकश–जन–समुदाय।

'लोक' शब्द से हम इसी अर्थ को अभिहित करते हैं और इसी कारण 'लोक संस्कृति' सामासिक शब्द की जगह 'लोक' और 'संस्कृति' कहना विषय पर सुस्पष्ट

वैज्ञानिक विचार करने के लिये आवश्यक मानते हैं। जब हम 'लोक संस्कृति' कहते हैं, तब यह ध्वनित होता है कि तथाकथित सभ्य शिष्ट, बौद्धिक कार्यकलाप करने वालों की 'संस्कृति' से बिल्कुल भिन्न 'असभ्य' 'अशिष्ट', 'अशिक्षित' शारीरिक श्रम करने वालों की संस्कृति अथवा सभ्यता की दौड़ में अत्यन्त पिछड़े आदिवासियों या गिरिजनों या 'गंवार' लोगों की संस्कृति। आज लोक-कला, लोक साहित्य, लोक-संगीत, लोक संस्कृति की बड़ी धूम है और यह धूम मचाये हुए है वे जो साहित्य-संगीत, कला से विहीन कहकर या रखकर इन मेहनतकश जन समुदाय को आज तक सींग-पूंछ के बिना पशु कहते आ रहे थे। बिना सींग और पूंछ के पशुओं में संस्कृति देखने को ये सींग और पूंछ वाले आज व्याकुल हो उठे हैं। क्यों? विचारणीय है। क्या यह अभिजातवर्गीय अभिरुचि मानव संस्कृति के श्रोत की खोज की भूख के कारण है जैसी मार्गन की थी या 'काव्याशास्त्र को विनोद' की वस्तु मानने वालों का 'नये विनोद का क्षेत्र' तलाशना है? ये वे लोग हैं जो कल तक मानव कार्य कलाप के वैचारिक हेतुओं को ही महत्वपूर्ण बताते थे। और आर्थिक कारकों को गौण और महत्वहीन कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। ये वो लोग हैं जो कल तक मानते थे कि इतिहास मात्र भीड़ से ऊपर उठे वीरों, सेना नायकों, राजा-महाराजाओं, राजनेताओं आदि के कार्यकलापों का परिणाम होता है, इतिहास को महान् विभूतियों का जीवन-चरित कहकर शोषण की पूँजीवादी प्रणाली का स्वरूप ही उन मानवातवादी आदर्शों के गहन अन्तर्विरोध में निहित है जो सच्चे कलाकारों को प्रेरणा दिया करते हैं। कला के प्रति बुर्जुआ समाज की शत्रुता बुर्जुआ साहित्य तक में इस या उस रूप में पूंजीवाद की आलोचना को जन्म देती है। इसी कारण बुर्जुआ समाज में उत्पन्न शेक्सपियर, गेटे, वाल्जाक तथा अन्य प्रतिभाशाली लेखक अपने युग और परिवेश से ऊपर उठकर शोषण की पूंजीवादी प्रणाली की बुराईयों की प्रचण्ड कलात्मक शक्तियों के साथ भर्त्सना करने में सक्षम रहे। इस वर्ग के लोगों की कला-साहित्य संस्कृति भक्ति खाल या खोल मात्र है शोषण-मूलक निजीकरण के घिनौने चेहरे को ढकने के लिए।

के0 एंगेल्स ने लिखा था कि सम्पदा की जननी प्रकृति और जनक श्रम है। भौतिक संपदाओं के उत्पादन में तो श्रम की अहम् निर्णायक भूमिका आज निर्विवाद रूप से प्रतिष्ठित हो गयी है किन्तु आत्मिक संस्कृति के उत्पादनों में श्रम की भूमिका के विषय में संदेह, भ्रान्ति और अस्पष्टता आज भी बहुतों के मन में–यहाँ तक कि प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के मन में भी बनी हुई है। अतः इस प्रश्न पर जरा गम्भीरता से विचार करने की जरूरत है।

यह प्रश्न दर्शन के मूल प्रश्न से जुड़ा हुआ है। हमारे चारों ओर असंख्य पिण्ड दिखाई देते हैं। उनमें यांत्रिक, भौतिकीय, रासायनिक तथा शरीर क्रियात्मक प्रक्रियाएं प्रतिपल घटती रही हैं। उन सब को भौतिक परिघटनाएं या 'पदार्थ' कहते हैं। हमें क्षुब्धा और उद्वेलित करने वाली भावनाएं यथा–क्रोध, हर्ष, अभिमान, लज्जा, घृणा आदि ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त अनुभूतियाँ और हमारे मस्तिष्क को सदा अशान्त एवं व्यस्त रखने वाले विचार इन सबको आध्यात्मिक परिघटनाएं चेतना, की परिघटनाएं या केवल 'चेतना' कहा जाता है।

'लोक संस्कृति' के प्रचलित अर्थ को ही ग्रहण करें तो भी उसके अध्ययन और अन्वेषण की आज की प्रवृत्ति उनके प्रति वैज्ञानिक प्रवृत्ति नहीं है। लोक–जीवन सामाजिक चेतना के विविध रूपों के उद्भव, विकास और परिवर्तन की वैज्ञानिक समझ के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री दे सकते हैं। इस दृष्टि से उनका वैज्ञानिक अध्ययन धर्म, नीति, विधि, दर्शन साहित्य–कला आदि के सच्चे वस्तुगत स्वरूप को उजागर करता है और सामाजिक चेतना के इन रूपों पर प्रत्ययवाद या चेतनावाद के द्वारा डाले गये आवरणों को अनावृत्त भी करता है। ऐसा करना वैज्ञानिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त करना है। वैज्ञानिक प्रगति की गति को भी तेज करना है। लोक–जीवन, लोक–संस्कृति, लोक कलाओं के अध्ययन की ऐसी अभिरुचि शास्त्रीय है, करणीय है।

लोक कलाओं के प्रति कैसी दृष्टि होनी चाहिये–यह मार्क्स ने यूनानी–प्राचीन यूनानी कलाओं पर अपने विचार प्रकट करते हुए यों दी है–

'क्या प्रकृति का सामाजिक सम्बन्धों के बारे में वह दृष्टिकोण यूनानी कल्पना तथा इस कारण यूनानी कला के आधार में अन्तनिर्हित है। ऐसे समय में सम्भव है जब स्वचलित तकुवे, रेलवे लाइने, इंजन तथा बिजलीतार प्रणाली विद्यमान है।'

कला भिन्न–भिन्न कालों में भी कभी अपनी पुनरावृत्ति नहीं करती। लेकिन यदि कला कृतियाँ ऐतिहासिक रूप से विशेष सामाजिक रूपों से जुड़ी रहती हैं तो इसका मतलब यह नहीं है कि उन सामाजिक रूपों के लुप्त हो जाने पर अपना महत्व खो बैठती हैं। इस विषय में मार्क्स कहते हैं प्राचीन यूनानियों की कला तथा उनके महाकाव्य अब भी हमें सौन्दर्यात्मक आनन्द प्रदान करते हैं तथा जिन्हें कुछ मामलों में तो मानक तथा अलभ्य माडेल माना जाता है।

इतना ही नही, मार्क्स इस घटना की गम्भीर व्याख्या करते हैं। यूनानी कला यथार्थ के उस भोलेपन भरे और साथ ही स्वरूप, स्वाभाविक बोध को प्रतिबिम्बित करती थी, जो मानव जाति के विकास की शुरूआती मंजिलों में, उसके शैशव के समय में उसका अभिलक्षण था, वह 'नैसर्गिक सत्य परकता' को उसकी अनुपम आकर्षणशीलता तथा सबके लिये विशेष सम्मोहकता समेत, प्राप्त करने की कामना को प्रतिबिम्बित करती थी।

हम मार्क्स के शब्दों में ही लोक कलाओं को किस दृष्टि से देखा जाना चाहिये, कहना चाहते हैं–

'कला कृतियों को विशेष सामाजिक, अवस्थाओं तथा सम्बन्धों का मूलतया प्रतिबिम्ब मानते समय उन लक्षणों को देखना नितान्त आवश्यक, जो इन कृतियों के शास्वत मल्य हैं।'

वर्तमान में विकसित किसी भी देश की संस्कृति का मूल उद्गम वहाँ का लोक जीवन ही है, क्योंकि लोक संस्कृति ही तो मानव की सामूहिक ऊर्जा का श्रोत होती है। लोक जीवन का रस ही समाज की जड़ों को सींचता है। आज का मनुष्य जिस तरह की मनुष्यता को खोज रहा है, उसे लोक संस्कृति के विकास में ही उपलब्ध किया जा

सकता है। यह लोक संस्कृति तो लोक–परम्पराओं में, लोक–साहित्य, लोक–नाट्य, लोक–कला, लोक–गीत में सहज आत्मीयता के साथ उल्लसित है। लोक जीवन में कटुता, द्वेष, घृणा की जगह प्रेम, सेवा सहृदयता और हार्दिकता मिलती है। जन कल्याण की भावना से आपूरित लोक संस्कृति ने हमेशा लोक धर्म के माध्यम से ही अनुभूति और यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। उसके जीवन मूल्य हमारी धरोहर है। लोक संस्कृति की यह जो शक्ति है वह उसकी विज्ञान सम्मत धारणा के कारण ही है।

संस्कृति मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी वास्तविकता है। युग–युग से समाज को विकास की प्रेरणा देती हुई यह संस्कृति विचार, कर्म और आचरण का यथार्थ है। यही कारण है कि सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी अपनी संस्कृति को समझता है उसी के अनुरूप वह आचरण करता है। इस तरह संस्कृति तो किसी समाज के उन संस्कारों के रूप में होती है जिनके द्वारा एक निश्चित दिशा में कार्य करने के निर्देश प्राप्त होते हैं। काल और परिस्थिति के अनुरूप समाज का आन्तरिक वाह्य कलेवर बदलता है। सांस्कृतिक मूल्य भी तो शनैः–शनैः परिवर्तित होते रहते है। प्रसिद्ध विचारक मैथ्यु–आर्नल्ड ने भी अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है–

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करनें जिन साधनों और यंत्रों का प्रयोग करता है वह सभी संस्कृतियों के अंग है। संस्कृति में जिन भौतिक, अभौतिक वस्तुओं का समावेश होता है, उसको भी हम संस्कृति के क्षेत्र में गिनते हैं।

संस्कृति के अन्तर्गत समाज की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक व्यवस्था का सम्मलित प्रवाह निरन्तर गतिमान रहता है। संस्कृति वस्तुतः व्यक्ति और समाज के मानसिक विकास का परिचायक है। लोक जीवन तो इसी संस्कृति का कुबेर है। यह लोक जीवन निरन्तर प्रवाहमान नदी की तरह उसे अनुप्राणित करता है। लोक कलाकारों की कला झरने की तरह कल–कल करती हुई सतत्–प्रवाहमान रहती है।

लोक कलाकारों के जीवन में और उनकी कलाओं में लोक संस्कृति व्याप्त होती है। ग्राम्य जीवन का ही दूसरा नाम लोक–कला है। रंग–बिरंगे परिधानों में इन्द्रधनुषी

छटा बिखेरते हुए ग्रामीण जनों में जीवन के प्रति आस्था का स्वर हिलोरे मारता है। ऐतिहासिक परम्परा को पीढ़ी दर पीढ़ी संजोए ये कलाकार उसमें समकालीन समाज की अनेकानेक स्थितियों को प्रतिबिम्बित भी करते रहते हैं। यही उनकी शक्ति है और यही धरोहर है। इन्हीं कलाकारों की दुनिया में देश और मानव जाति के सच्चे उत्कर्ष का रेखांकन बोलता हुआ नजर आता है।

लोक संस्कृति जन-जन के श्रम से सिंचित होकर प्रकृति की गोद में पलती-पनपती रही है। मानव के मानव के प्रति सहज प्रेम ही लोक संस्कृति का साध्य रहा है। श्रम की पूजा के साथ ही पारस्परिक प्रेम से भरी विश्व बन्धुत्व की भवना हमारे लोक-जीवन का मूल आधार रही है। जन-जीवन के बीच कलाओं में लोक संस्कृति आज भी स्पंदित है। लोक कला को संरक्षण और प्रोत्साहन देने के नाम पर ढोल पीटने में लगे हुए शोषक वर्ग का नजरिया अभिजात समूह के मनोरंजन तक सीमित रह जाता है। जबकि आवश्यकता लोक-कला और कला संस्कृति के माध्यम से जनता को बदलने, उसे चैतन्य करने उसे परिष्कृत करने की है जिनकी बिनाह पर ही ये समाज टिका है।

लोक संस्कृति की स्वतंत्र सत्ता :

प्राचीन भारतीय साहित्य के अवलोकन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही देश में संस्कृति की दो पृथक-पृथक धारायें प्रवाहित हो रही थी, जो निम्नलिखित थी :-

1. शिष्ट संस्कृति
2. लोक संस्कृति

शिष्ट संस्कृति से तात्पर्य उस अभिजात वर्ग की संस्कृति से है जो बौद्धिक विकास के पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थी। यह वर्ग अपनी प्रतिभा के कारण समाज का अग्रणी तथा पथ-प्रदर्शक था तथा जिसकी संस्कृति का श्रोत वेद और शास्त्र था। परन्तु लोक संस्कृति से हमारा अभिप्राय जन-साधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोक

से प्राप्त करती थी। जिसकी उत्स-भूमिजनता थी। इस संस्कृति के अनुयायी बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर अवस्थित थे। यदि ऋग्वेद और अर्थवेद का सूक्ष्मदृष्टि से अध्ययन किया जाय तो यह पार्थक्य स्पष्ट ही प्रतीत हो जाता है। संस्कृत के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान पद्म भूषण आचार्य पं0 बलदेव उपाध्याय ने इस विषय का गम्भीर विवेचन करते हुए अपना अभिमत निम्न प्रकार से प्रकट किया है:-

'लोक संस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया-कलापों के पूर्ण परिचय के लिये दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित रहती है। इस दृष्टि से अथर्ववेद, ऋग्वेद का पूरक है। ये दोनों संहितायें दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचारिकायें हैं। यदि अथर्ववेद के विचारों का धरातल समान्य जन-जीवन है तो ऋगवेद का विशिष्ट जन-जीवन है।'

ऋग्वेद में यज्ञ-यागादिक विधान पाया जाता है तो अथर्ववेद में अंध-विश्वास, टोना-टोटका, जादू और मंत्र का वर्णन उपलब्ध होता है। इस प्रकार ऋगवेद में शिष्ट तथा संस्कृत जन के विचारों का विवरण मिलता है तो अथर्ववेद में सामान्य जनता के जीवन का चित्रण हुआ है। इस प्रकार ये दोनों वेद विभिन्न संस्कृतियों के प्रतीक है।

उपनिषद काल में भी ये दोनों संस्कृतियां पृथक रूप में दृष्टिगोचर होती है। वृहदारण्यक, कठोपनिषद तथा अन्य उपनिषदों में जहाँ आत्मा-परमात्मा, जीव और जगत आदि का वर्णन है, अभिजात संस्कृति के ग्रन्थ हैं। परन्तु जिनमें लोक जीवन का वर्णन है, जिनमें लोक विश्वास तथा लोक रीति-रिवाजों का उल्लेख है उनका सम्बन्ध निश्चय ही लोक संस्कृति से है। गृह्य सूत्रों को यदि लोक संस्कृति का विश्व कोष कहे तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी।

पालि जातकों में लोक संस्कृति का सजीव चित्रण किया गया है। 'नच्च' जातक में वैवाहिक प्रथा का उल्लेख करते हुए वर के आवश्यक गुणों की ओर संकेत पाया जाता है। वावेरू जातक के अध्ययन से तत्कालीन व्यापार का पता चलता है। पालि सुत निपात में धनियगोप का जो कथन है उसमें ग्रामीण जीवन की बड़ी ही बाँकी-झाँकी देखने को

मिलती है। धनियगोप भगवान इन्द्र को चुनौती देते हुए कहता है कि मेरे घर में गाय है, बैल है, मेरा घर सुन्दर है। मेरी स्त्री सुन्दर तथा पतिव्रता है मैं उसकी कोई बुराई नहीं जानता। मेरे घर में भात पकाया गया है, दूध भी घर में रखा है। नदी के तीर पर मैं सुख-पूर्वक निवास करता हूँ। मेरे घर में सदा आग जलती रहती है। अतः ए भगवान! यदि तुम वर्षा करना चाहते हो तो वर्षा करो।

बौद्ध युग में ग्रामीण जीवन कितना सुखी समृद्ध था। किसान का घर सुख अैर समृद्धि का आवास था और वह किस प्रकार सुखी जीवन व्यतीत करता था। ग्रामीण संस्कृति का इतना सुन्दर तथा सजीव वर्णन अन्यत्र मिलना कठिन है।

आदि कवि बाल्मीकि के आदि काव्य में वर्णित सुग्रीव और जामवन्त जो बन्दरो और भालुओं के राजा थे-उन आदिम जातियों के नेताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जो आज भी इस विशाल देश में लाखों की संख्या में विद्यमान है। उस समय शिष्ट जनता तथा साधारण जनता की भाषा में भी अन्तर था। हनुमान जब लंका में अशोक वाटिका में बैठी हुई सीता से मिलने के लिये जाते हैं, तब वे अपने मन में सोचने लगते हैं कि यदि मैं शिष्ट लोगों की भाषा-संस्कृत वाच- का प्रयोग करने लगूँगा तो सीता माँ मुझे रावण समझकर डर जायेंगी।

इससे ज्ञात होता है कि रामायण के युग में शिष्ट तथा साधारण लोक पृथक-पृथक भाषाओं का प्रयोग करते थे।

महाकवि कालिदास के काल में भी शिष्ट जनों तथा सामान्य मनुष्यों की भाषा पृथक थी। महाकवि ने लिखा है कि शिव और पार्वती के विवाह में सरस्वती ने दो प्रकार की भाषा द्विधा विभक्तेन च वाङमयेन। में वर एवं वधू की प्रशंसा की। संस्कार से पवित्र भाषा-संस्कृत में तो वर-शिव की स्तुति की तथा सरलता से समझने योग्य भाषा-प्रकृत में पार्वती की प्रशंसा की-

द्विधा विभक्तेन च वाङमयेन,
सस्वतीतन्मिमधुनं नु नाव।
संस्कार ृतेन गिरा वरेण्यं,

वधू सुख ग्राह्य निबन्धनेन।।

संस्कृत के नाटकों में श्रेष्ठ पात्रों के लिये संस्कृत भाषा का व्यवहार किया गया है तथा चेरी दासी एवं इतर पात्र विभिन्न प्रकार की प्राकृत बोलते पाये जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि शिष्ट तथा सामान्य जनों के लिये व्यवहार की भाषायें पृथक–पृथक थी।

संस्कृत के महाकवियों तथा नाटककारों की कृतियों में लोक संस्कृति का जो विराट और भव्य रूप दृष्टिगोचर होता है उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थों में शिष्ट संस्कृति तथा लोक संस्कृति का समान रूप से बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है।

मेघदूत में जहाँ यक्ष के घर की वापी (तल्लैया) का कालिदास ने 'वापी चास्मिन मरकट शिलाबद्ध सोपान मार्गा' लिखकर उच्च वर्ग के वैभव का वर्णन किया है वहाँ रघुवंश में अपनी सूक्ष्म दृष्टि से उन्होंने लोक संस्कृति का भी मनोरम चित्रण किया है। ईख के खेत की छाया में बैठकर धान के खेत की रक्षा करने वाली स्त्रियों का वर्णन करना ये नहीं भूले हैं। महाकवि का कथन है–

इक्षुच्छाया–निणादिन्यः,
तस्य गोप्तुर्गुणोदवम्।
आकुमार कथोद्श्यातं,
शालिगोप्यो जगुर्यशः।।

इस प्रकार वैदिक काल से मध्यकाल तक लोक संस्कृति की पृथक धारा प्रवाहित होती दिखाई पड़ती है। कहने का अभिप्राय केवल इतना ही है कि आदि काल से ही लोक संस्कृति की स्वतंत्र सत्ता विद्यमान थी, जिसका श्रोत आज भी अजश्र रूप से अक्षुण्य दिखाई पड़ता है।

लोक संस्कृति और मानवीय मूल्य :

भौतिक जगत किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिफल हो या किसी ब्रम्हा, अल्लाह या गॉड का आत्म विस्तार परन्तु इतना तो निश्चित ही है कि सृष्टि का आदि प्रस्फुटन सर्वत्र सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम का ही प्रतिबिम्ब रहा होगा। देश काल एवं परिस्थितियों ने उसे कोई भी स्वरूप प्रदान किया हो, परन्तु मूल कलेवर न केवल दोष मुक्त वरन् मंगलमय एवं शास्वत है। यही कारण है कि आपाधापी के इस युग में भी भौतिकता, द्वेष, कलह, स्पर्धा आदि के मोटे आवरण के बीच भी वह मधुर स्पंदन होता महानतम सात्विक विचारकों से लेकर क्रूर हत्यारों तक के अन्तःकरण में स्पंदित होता रहता है। मुक्त मन का सरल कम्पन, सुख–दुख प्रेम–निर्वेद, ईर्ष्या–द्वेष आदि मूल प्रवृत्तियों से तरंगित होकर स्वयं को जिस विधा में व्यक्त करता है उसे लोक कला कहते हैं। यह प्रवृत्ति देश, जाति, धर्म, काल के बन्धनों से मुक्त होतीं है, इसीलिये इसके साथ लोक जैसा सर्वशक्तिमान प्रत्यय जुड़ गया है। मूल प्रवृत्ति को विकास की वैज्ञानिक विचार धारा से जोड़ा जाये तो उसमें जैविक उत्पत्ति के प्रथम सोपान का द्वैतीकरण (अको अहम्, बहु स्याम) हो, या एकेश्वर की मिट्टी के बुतों में श्वांस फूंकना हो, सबमें ऊँर्जा के अनन्त श्रोत का ही एक अंश या अंश न सही तो इच्छा का प्रकाशन ही यह सृष्टि है।

अतः जीव के स्वाभाविक क्रिया–कलाप या लोक–कलाओं में उसी ऊर्जा या कम से कम उसके ही एक स्वरूप का प्रतिबिम्ब होना आवश्यक है। मुझे लगता है कि माता के साथ गीत के साथ घूमते बाल–वृद्ध उसी मूल आवृत्ति से जुड़ जाते हैं। उन पर किसी प्रकार की कृत्रिमता का आरोप नहीं किया जा सकता।

डार्विन का विकासवाद आज प्रत्यक्षं किम् प्रमाणम् बन चुका है। बुद्धिजीवी विज्ञान तथा दर्शन की कसौटी पर कसते हुए इसे भैतिक जगत के ध्वनि विज्ञान की विशिष्ट घटना अनुनाद द्वारा व्यक्तकर सकते हैं जो आध्यात्मिक जगत का ब्रम्हवाद है। लोक नृत्य तथा लोक नाट्य के पात्र सर पर सींग बाँधे, कमर पर मोर पंख या अन्य जानवरों के

मुखौटे मुँह पर लगाये अपनी वंश परम्परा का जाने अनजाने परिचय देते हैं। वही हमारा मौलिक स्वरूप है।

प्रश्न यह उठता है कि जिस स्वाभाविक या अमूर्त कंपन को मूर्त रूप देने के लिये कृत्रिम सामाजिक परिवेश में लिपटी आत्मा व्याकुल रहती है, उसने इन सामाजिक बंधनों में स्वयं को क्यों उलझाया? यदि आदिवासी नृत्य गीतों से प्रारंभ कर रॉक एण्ड रोल, पॉप–सांग या डिस्को तक याहू–याहू की विकृत आवृत्ति है जो सामान्य जीवन में हम उससे परहेज क्यों करते हैं?

लगभग 25 हजार वर्ष से लेकर 5 हजार तक की इस मानवीय यात्रा के अनेक रूप क्यों हैं? ऐसा लगता है कि प्राकृतिक स्वच्छन्दता के परिवर्तन की आवश्यकता इसलिये हुई कि मनुष्य अपनी विकास यात्रा का एक तारतम्य स्थापित करना चाहता था। उसे स्नेहिल ही सही पर मुक्ति का मार्ग बन्धन से जुड़ा मिला, यही कारण है कि नीति–रीति परम्परायें सभी बदली और इनसे जुड़े–सुख–दुख के रेचन का स्वरूप भी परिवर्तित होता गया।

भौगोलिक परिस्थितियों या प्राकृतिक साधनों की उपलब्धता के आधार पर विश्व के अलग–अलग भागों में परिवर्तन की दर तथा उपक्रम दोनों अपनी गति से अग्रसर होते रहे। ये सारे बदलाव या परिवर्तन लोक–जीवन पर जो अलौकिक प्रभाव अंकित करते रहे उनकी एक अलिखित आचार–संहिता सामाजिक जीवन में उतर गयी, जो संस्कृति कहलायी। यह सार्वभैमिक सभ्यता का अंग बनकर भी सूर्य के श्वेत के प्रकाश में छिपे सात रंगों की तरह किसी विशेष–भू–भाग की न केवल अमूल्य संपत्ति वरन सुखद अनुभूति भी होती है। इसका प्रभाव सर्वत्र होने के बाद भी सही प्रतिनिधित्व लोक कलाओं के माध्यम से ही होता है। इसीलिये लोक कलायें हमारी संस्कृति की सर्वोत्तम दर्पण कहलाती हैं। किसी अन्तर्राष्ट्रीय समारोह में जब हमें विश्व के अधिकांश उन्नत भू–भागों की लोक कलाओं को देखने का अवसर मिलता है तो ध्यान से देखने पर यही स्पष्ट होता है कि सर्वत्र एक ही तत्व प्रधान है। स्वतंत्र नृत्य से या किसी कहानी से गुथे

सम्पूर्ण दृश्य विशुद्ध प्रेम, क्रोध, करुणा, निर्वेद आदि भावों का प्रदर्शन करते हैं। सभी देशों के लोक-नर्तक, गायक या कलाकार प्रायः जानवरों के मुखौटों का प्रयोग करते हैं। इससे दो बातें सामने आती है प्रथम तो अपने से निम्न श्रेणी के जन्तुओं से हमारा सम्बन्ध। दूसरा सम्पूर्ण विश्व में एक आश्चर्यजनक साम्य।

भारत एक देश ही नहीं प्रायद्वीप भी है, समय के साथ संकुचित विभाजन की प्रक्रिया से गुजरते हुए इस प्रायद्वीप का जैसा भी सीमांकन किया जाय, पर प्रारम्भ में अफगानिस्तान से लेकर इण्डोनेशिया तथा मलाया तक का सम्पूर्ण भू-भाग भी इसी के प्रभाव में आता था। तिब्बत तथा दक्षिण चीन का अधिकांश भाग भी इसी के प्रभाव में आता था। यह किसी देश के महत्व को कम करने या विस्तारवाद की किसी योजना के अन्तर्गत नहीं कहा जा रहा है, वरन् सभ्यता एवं संस्कृति की एक इकाई का रेखांकन मात्र है। इस सम्पूर्ण भू-भाग के लोक गीतों या नृत्यों के सूक्ष्म अवलोकन से यही निष्कर्ष निकलता है कि ये प्यार की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति है। शौर्य का जहाँ अपना विशिष्ट स्थान है, वहीं वैराग्य की भी अविरल धारा प्रवाहित होती रहती है। जहाँ तक लोक-नाट्यों का प्रश्न है, अधिकांश रामायण एवं महाभारत के ही चारों ओर घूमते हैं। स्थानीय विभूतियों का समागम अवश्य है परन्तु वे सत्यवादी हरिश्चन्द्र, ध्रुव, प्रहलाद, कर्ण, राम, सीता, राधा, कृष्ण, द्रौपदी, दुष्यन्त, शकुन्तला, नल, दमयनती, बुद्ध, महावीर आदि नामों के साथ विभिन्न भूमिकाओं में चित्रित है। आधुनिक भारत को ही ले, तो विभिन्न राज्यों एवं शसित प्रदेशों में शायद ही कोई ऐसा हो जहाँ एक दर्जन विभिन्न प्रकार की स्थानीय बोलियाँ न हो, प्रत्येक बोली में उसका लोकगीत, नृत्य एवं नाट्य अनिवार्य रूप से पाया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण देश की सैकड़ों बोलियों में लोक कलाओं का विपुल भण्डार संग्रहीत है। लोक गीत भाषा तथा भावों में सम्पन्न होने के साथ ही साथ बहु आयामी है। अकेले ब्याह गीतों, में सांध्यगीत, प्रातःकाल का गीत, हल्दीगीत, देवी पूजन गीत, बारात आगमन गीत, सिन्दूरदान गीत, कलेवा गीत, विदाई

गीत, समधी मिलन गीत आदि सत्रह प्रकार के गीतों का सम्मिलन है। इनका क्रम इतना सहज एवं स्वाभाविक है कि सुनने वाले के समक्ष एक निरन्तरता अंकित हो जाती है।

ऋतु या माह के अनुसार गीतों का भी अपना विशिष्ट स्थान है। फाग, चैत, बैसाखी, कजली सभी काल क्रम के अनूठे नग हैं। इसके अतिरिक्त अल्हा और महाभारत जहाँ ढोल की थाप पर अपने-अपने ढंग से कन्याकुमारी से कश्मीर तक रोंगटे खड़े करते, नसों में गर्म लहू का संचार करते है, वहीं गेरूआ वस्त्र पहने वय किशोर के योगी सारंगी की शान्ति ध्वनि पर संसार की नश्वरता का अहसास कराते राजा भर्तृहरी की कहानी सुनाते रहते हैं।

फसल बोने, निराई करने, काटने आदि के अपने-अपने गीत है। मायके से ससुराल जाती हुई ग्रामीण बाला अपने परिवार जनों से लिपटकर रोती है। इस रोने में वह जिस करुण श्रृंगार की धारा प्रवाहित करती है, वह न केवल हृदय विदारक होता है, वरन् साहित्य का अनमोल रत्न है। पूर्वी उत्तर प्रदेश (भोजपुरी) की ऐसे ही मौके की एक पंक्ति निम्न प्रकार है-

'जोगिया की नाई फेरा दिहा हो बिरनवा'

ऐ भाई मैं तो जा रही हूँ लेकिन तुम मेरी ससुराल में उसी प्रकार बार-बार आते रहना, जिस प्रकार भिक्षा माँगने वाला योगी नियमित रूप से गलियों का चक्कर लगाता है।

अपने भाई से बहन आजीवन उसकी खोज खबर लेने के कर्तव्य का पालन कराना चाहती है। ऐसी दुर्लभ पंक्तियाँ किसी भी काव्य की धरोहर बन सकती हैं। इस धनी देश में निर्धन रहते हैं यह युक्ति विदेशी से ज्यादा स्वदेशी लगती है। क्योंकि अधिकांश लोक गीतवियोग श्रृंगार के है और इसका कारण जीविका की खोज में पति का परदेश जाना है। 'बारा बरसी खटन गया सी' जैसे लोक गीत भरे पड़े हैं। लोक नृत्य एवं लोक नाटकों की भी आत्मा ऐसी ही निर्मल तथा समृद्ध है। नौटंकी, नाच, तमाशा, भांगड़ा रासलीला, आदि अलग-अलग भागों में प्रचलित लोक नृत्य तथा लोक नाट्य है, जिन्हें

गीत नाटिका कहना उचित होगा। ये प्राचीन मान्यता तथा संस्कृति को प्रतिबिम्बित करते है।

देश–विदेश के अनेक साहित्य संस्कृति–मर्मज्ञों की यह धारणा है कि भारत में पूर्व ऐतिहासिक काल से ही राजाओं की शासन परम्परा के कारण यहाँ का सामान्य जन–जीवन दलित परम्परावादी तथा चाटुकार रहा होगा। उसमें विकास या प्रगति के बीज अंकुरित नहीं हो पाये होंगे। किन्तु यहाँ के लोक कलाओं के अवलोकन से यह धारणा भ्रामक प्रतीत होती है। यहाँ की राजशाही आदर्श प्रजातंत्र का कितना संशोधित संस्करण है इसका अनुमान प्रचलित लोक कलाओं से लगाया जा सकता है। दादी, नानी की कहानियों से लेकर लोक गीतों या लोक नाट्यों तक की कहानियों में तीन–चौथाई 'एक था राजा' से प्रारम्भ होती है। अधिकांश में राजा के उदात्त चरित्र का वर्णन होता है। वह छद्म वंश में स्वयं लोगों के सुख–दुख का पता लगाने के लिये तपती धूप, मूसलाधार वर्षा तथा ठिठुरती काली रातों में जन सामान्य के बीच जाता है. उनके दुखों को दूर करता है। स्वयं कष्ट सहता है, त्याग के जीवन का निर्वाह करता है। कभी–कभी किसी आततायी राज्य की कहानियाँ आती भी हैं। तो अंततः उनका पतन ही मिलता है। 'सत्यमेव जयते' ही लोक संस्कृति की आत्मा है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम जैसा लोक–नायक जिसे हम सर्वथा दोषमुक्त मानकर ईश्वर का अवतार कहते हैं जो अपराजेय माने जाने वाले बुराई के प्रतीक रावण से लोगों को मुक्ति दिला सकने में समर्थ थे। वे एक धोबी के कहने पर महारानी सीता का निष्कासन कर देते हैं। परन्तु सीता अग्नि परीक्षा में अपने को निर्दोष सिद्ध करती हैं। यह सब लोक कथाओं के माध्यम से ही घर–घर पलती पनपती हमारी लोक संस्कृति है। लैला–मजनू, हीर–रांझा, सोहनी–महिवाल, फुलवा–मनवा, ढोला–मारु, हाड़ा–रानी, जैसी लोक कथायें इस देश के प्रत्येक अंचल में चल रही है। सबका चरित्र जाति, धर्म धनी, निर्धन आदि घरौंदों से बहुत ऊपर है। इसे वर्ग विहीन समाज की उस आदर्श कोटि में रखा जा सकता है जहा

संघर्ष स्वतः समान हो जाता है। इनके पात्र भिन्न-भिन्न वर्गों के हैं पर उन्हें समाज का मुक्त समर्थन प्राप्त है और विजय भी उन्हीं की होती है।

लोक जीवन का यह शिवत्व स्वरूप ही युगों से विश्व के लिये अपरिहार्य रहा है। इसलिये बीते हुए कल ही अपेक्षा आने वाले कल में इसकी आवश्यकता अधिक हो गयी है। मानवीय मूल्यों के शिव का संदेश सर्वत्र बिखरे यही भौतिकवादी युग की आवश्यकता है।

लोक साहित्य के विभिन्न प्रकार

लोक-विश्वास :

जन सामान्य में प्रचलित लोकविश्वास मूलतः जन साधारण में प्रचलित सहज मान्यताएं होती हैं। मानवीय रिश्तों की गर्माहट से निर्मित ये सहज विश्वास जीवन के प्रत्येक पहलू के साथ मिलकर जीवन को निर्मित करते हैं, लोक अपने आप में समूह का ही द्योतक होता है और इसकी निर्मिति ही इसलिये होती है क्यों कि इसकी प्रत्येक इकाई विकास के लिए एक दूसरे का अविलम्ब बनती है। समग्रतः लोक अपनी सामूहिक चेतना और अपने सामूहिक उत्तरदायित्व के मूलाग्रहों से संचालित एवं संवलित होता है।

लोक चेतना वस्तुतः विश्वास का ही पर्याय है, सामूहिक सहकारिता उत्तरदायित्व की भवना और जीवन के सहज विनियवों से निर्मित व्यक्ति की चेतना सामाजिक प्रवाह में अहमवादी रूपानो और प्रायःद्वीपीय स्थितियों वाली न होकर वृहत् को अपने में समेटने और स्वयं को वृहत् के साथ जोड़ने की मूलभूत इच्छा–क्रिया का परिणाम होती है।

समूहवाद की इस चेतना के साथ ही वे तमाम अनुशांगिक चेतनाएं जो इसे विकसित एवं पल्लवित करती हैं, मूलतः लोकविश्वास के विमर्श का कारण बनती हैं। सामूहिकता की यह उपचेतना हमारे जीवन और इससे जुड़ी हुई तमाम छोटी बड़ी घटनाओं से निःसृत होती हैं। चाहे वह व्यक्ति की आँगिक मानसिक क्रियायें हो, प्रकृति जन्य विश्वास की पारलौकिकता के विमर्श हो सभी कुछ लोकविश्वास के अन्तर्गत आता है।

लोक के ये विश्वास जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सघन रूप से जुड़े हुए हैं, व्यक्ति के साँस लेने से लेकर उसके अतिम यात्रा तक में लोक–विश्वास अपनी पहाड़ सरीखी छाया से उसे हमेशा आवृत्त किये रहते हैं। आवश्यक नहीं कि विश्वास परकता की यह श्रृखला तर्काश्रित या यूँ कहा जाये कि यह अतर्कपूर्ण ढंग से ही जीवन में आती है। लेकिन महत्वपूर्ण यह है कि शुष्क–बौद्धिक तर्क प्रणाली के संजाल से विरत लोकात्मक विश्वास का यह प्रारूप जीवन का मधुरमय पक्ष है, क्योंकि यह हमें बहुत सहज भाव से

मनुष्य से प्रकृति से जीवन और पृथ्वी से जुड़ने की प्रेरणा देता है। यह जुड़ाव ही लोक विश्वास की मूल धूरी है जो तर्क पर नहीं भावना से विकसित होती है।

लोक विश्वास जीवन की व्याख्या की एक बानगी है। हमारे तमाम त्योहार, उल्लास, स्वप्न सब कुछ इसी से जुड़े हैं। यदि हमको हमारे परिवेश को समझना है तो हमें हमारे लोक विश्वास को भी समझना होगा। इस प्रकार यह अनुभूति की वस्तुगत अवस्था का परिचायक बनता है, जिस अनुभूति को हम सिर्फ महसूस कर सकते हैं। लोक विश्वास तमाम रीति-रिवाजों अनुबन्धों और जीवन के तमाम क्रिया-व्यापारों से हमारे सामने एक ठोस शक्ल लेकर न सिर्फ हमें प्रभावित करता है बल्कि लगभग उन मार्गों पर चलने के लिए विवश भी करता है। स्पष्ट है कि यह लोक विश्वास हमारी सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा बनकर आते हैं। अगर यह न होते तो वह सारी चीजें जिनसे एक सहज जीवन की निर्मिति होती है वह न होता। यदि ये होते तो गंगा शायद सिर्फ एक बहते हुए पानी का श्रोत होती। फूल सिर्फ विभिन्न रंगीन आकृतियाँ होती और हवा सिर्फ जीवन प्राण होती। हवा और गंगा जीवनदायिनी है इसलिये देव है। इसलिये पत्ते के हरेपन में भी हम उल्लास ढूँढ पायें, यह सब इसलिये क्योंकि हममे लोक का विश्वास बना रहा है। जीवन की तमाम मूलभूत शर्तों की भाँति यह हमारी रंगों में है, और इसलिये जीवन की उपस्थिति के लिये इन सबका होना भी आवश्यक है। आज के आपाधापी में बहुत सी चीजें छूट रही हैं। लोकात्मक विश्वास का यह प्रदाय भी हमसे छूट रहा है, लेकिन जिन्दगी को फिर से समझने के लिये हममें ग्रामशी की जिजीविषा पैदा करनी ही होगी, जिससे इसे सही आलोक में मूल्यांकित किया जा सके।

लोकगीत :

लोकगीत वह गेय गीत है जिसमें जन-जन का अनुरंजन सदा होता रहता है। इन गीतों को स्त्री और पुरुष समान रूप से गाते हैं। इनगीतों में कुछ ऐसे गीत उपलब्धा होते हैं जो केवल स्त्रियों द्वारा ही गाये जाते हैं-जैसे-संस्कार विषयक गीत। जो केवल

पुरुषों की ही सम्पत्ति है, जैसे–होली के गीत। लोकगाथायें तो केवल पुरुष वर्ग के द्वारा ही गायी जाती है। मानो इन्हें गाने का पुरुषों को एकमात्र अधिकार प्राप्त है। गायकों की संख्या की दृष्टि से लोकगीतों को दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. एकल
2. सामूहिक

एकल वह गीत है जिसे केवल: एक ही व्यक्ति गाता है। जैसे–शीतला माता के गीत। इसगीत को शीतला देवी को प्रसन्न करने के लिये उस बालक की माता गाती है, जिसका पुत्र चेचक के रोग से पीड़ित रहता है। इसी प्रकार से आल्हा, लोरकी और विजयमल की लोक–गाथाओं को केवल एक ही लोक गायक गाता है। आल्हा गीत के गायक को 'अल्हैत' और हुड़का पर पहाड़ी लोक गीत के गाने वाले को 'हुडुकिया' कहा जाता है।

इसके विपरीत कुछ ऐसे भी लोकगीत हैं जो सामूहिक रूप से ही गाये जाते हैं जैसे झूमर। इस गीत को अनेक स्त्रियाँ गोलाकार रूप में एकत्रित होकर बड़े प्रेम से गाती हैं। इसी प्रकार से होली के गीत को अनेक पुरुष एक साथ मिलकर तार स्वर से गाते हैं।

इस तरह एकल (सोलो) तथा सामूहिक रूप (कोरस) से लोक गीतों को गाने की प्रथा प्रचलित है।

गीत मनुष्य का स्वभाव है। हमारे जीवन में ऐसा एक भी कार्य नही जो बिना गीत के हो। किसान खेत में हल चलाता है तो गीत के साथ, और महिलाएं चक्की पीसती हैं तो चक्की के स्वर के साथ गीत की समधुर कड़ियाँ भी गूँजती हैं।

गीत, ताने–बाने की तरह हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन चुके हैं। हमारे यहाँ बच्चे के जन्म के गीत हैं, नाम–करण संस्कार के गीत है, जनेऊ के गीत है, ब्याह के

गीत है और तो और आदमी जब मर जाता है तो उसे भी गाते बजाते हुए ले जाने की प्रथा है। सम्पूर्ण जीवन स्वयं एक सुन्दर संगीत है–

जिन्दगी का साज भी क्या साज है,
बज रहा है और बे आवाज है।

हमारा जीवन भी किसी साज से कम नहीं, वह बजता तो रहता है किन्तु उसकी आवाज हमें सुनाई नहीं देती है।

इन गीतों में मानव मन की सुकोमल भावनाएं अंकित रही हैं। मनुष्य का मन जहाँ अपने आप में नहीं समाता, या बेचैन हो उठता है तो वह किसी की याद में गाता, गुनगुनाता आया है। इन गीतों के सहारे की प्राचीन काल में मनुष्य इन्द्रधनुष की तरह रंगीन स्वप्न बुनता, गिरि–शिखरों की यात्रा करता, सागर की लहरों से खेलता और वायु की लहरों पर तैरते हुए अनन्त के ओर–छोर नापता आया है। गीत, एक साथी की तरह सदा उसका साथ देते आये हैं।

लोक–जीवन के सुख–दुख, उल्लास–हर्ष, विषाद और संघर्ष को अभिव्यक्त करते हुए लोकगीत कोटि–कोटि हृदयों का प्रतिनिधित्व करते हैं पनिहारिन और बोझा ढ़ोती हुई स्त्रियों के साथ–साथ घर में चक्की पीसती हुई महिलाओं के सुरीले कंठों से रचे बसे लोक गीत जन–जीवन में इतने गहरे बैठे हुए हैं कि ये जन जीवन का अविछिन्न अंग बन गये हैं। लोक–जीवन के चप्पे–चप्पे में, लम्हें–लम्हें में, पोर–पोर में लोकगीत रचे–बसे हैं। समाज लोक गीतों के दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखता आया है। लोक गीतों को गाकर मजदूर और कृषक अपनी थकान मिटाते हैं। लोक गीतों की यह परम्परा आदिम युग से चली आ रही है। जिससे लोक–संस्कृति अपने मूलरूप में झंकृत होती है। कहना न होगा कि मानव के संस्कारों की व्यंजना इन लोकगीतों में बराबर होती रही है।

लोक गाथा :

लोक गीतों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. लोक गीत
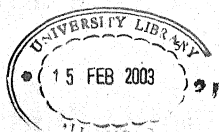
2. लोक गाथा

लोक गीत वे हैं जिनका आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है और जिनमें गेयता की प्रधानता रहती है। परन्तु लोक गाथा के प्रबन्धात्मक लोक गीत हैं, जो आकार में किसी महाकाव्य को चुनौती दे सकते हैं, और जिनमें प्रधान तत्व कथा है।

इस प्रकार लोक गीत छोटा तथा गेयता-प्रधान होता है परन्तु लोक गाथा में प्रबन्धात्मकता होती है और यह कथा प्रधान होता है। अंग्रेजी में लोक गाथा को 'बैलेड' कहा जाता है। इसीलिये विद्वानों ने 'बैलेड' की परिभाषा बतलाते हुए यह ठीक ही लिखा है कि वह कथा है जो गीतों में कहीं गयी हो।

लोक गाथाओं की विशे ाताएं :

विद्वानों ने लोक गाथाओं की निम्नांकित दस विशेषताओं का उल्लेख किया है-

1. रचयिता का अज्ञात होना
2. प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव
3. संगीत और नृत्य का अभिन्न सहचर्य
4. स्थानीयता का प्रचुर पुट होना
5. मौखिक प्रवृत्ति
6. उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अत्यन्ताभाव
7. अलंकृत शैली की अविद्यमानता
8. रचयिता के व्यक्तित्व का अनस्तित्व
9. लम्बा कथानक
10. टेक पदों की पुनः पुनः आवृत्ति

लोक गीतों की ही भाँति लोक गाथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका रचयिता अज्ञात होता है। भोजपुरी, प्रदेश में आल्हा, विजय मल, लोरकी, गोपीचन्द और भरभरी आदि अनेक लोक-गाथायें प्रचलित हैं, परन्तु इसकी रचना किसने

की है यह कहना बहुत कठिन है। वास्तव में ये लोक गाथायें सवर्धनशील महाकाव्य (इपिक ऑफ ग्रोथ) के उदाहरण हैं।

जातीय रचना की यह विशेषता होती है कि इसका रचयिता सवैयों के दल के मुखिया के रूप में होता है, जब गाथा की रचना समाप्त हो जाती है तब उसके लेखक या गायक होने का वह अभिमान नही करता। इस प्रकार की जातीय रचनाओं में गाथा की प्रधानता होती है, दल का भी महत्व होता है, परन्तु किसी व्यक्ति विशेष या रचयिता की महत्ता नहीं होती। जातीय रचना में अनेक व्यक्तियों का हाथ रहता है। सभी के सहयोग से इसकी रचना होती है।

लोक सुभाषित :

सर्व साधारण जनता अपने दैनिक व्यवहार में अनेक लोकोक्तियों, पहेलियों मुहावरों और सूक्तियों का प्रयोग करती है। इससे उनकी वचन–चातुरी का पता चलता है। लोकोक्तियों के प्रयोग से किसी उक्ति या कथन में शक्ति अथवा विशेषता आ जाती है और श्रोताओं के ऊपर उसका बड़ा सुन्दर प्रभाव पड़ता है। अतः कुशल वक्ता अपने कथन के समर्थन में लोकोक्तियों का प्रयोग प्रायः किया करते हैं। मुहावरों के व्यवहार के द्वारा भाषा में चुस्ती आती है और उसका स्वरूप सुन्दर बन जाता है। पहेलियों का प्रयोग प्रायः मनोरंजन के लिये किया जाता है। छोटे–छोटे बालक अपना मन–बहलाव करने के लिये एक–दूसरे से पहेलियाँ पूछते हैं। पहेलियों के लिये उत्तर की प्रतीक्षा होती है, परन्तु शीघ्र ही उत्तर न मिलने पर प्रश्नकर्ता की जीत समझी जाती है। इस प्रकार पहेलियां ज्ञानार्जन के साथ ही मनोरंजन का भी साधन है।

उत्तरी भारत में घाघ और भरथरी के नाम से अनेक सूक्तियां प्रचलित हैं, जिन्हें दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. वर्षा तथा कृषि सम्बन्धी
2. स्वास्थ्य तथा भोजन के नियमों से सम्बन्धित।

ये दोनों ही अनुभव के आधार पर स्थित हैं। लोक–सुभाषित की अन्तिम विधा बालकों के गीत है, जिन्हें तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–

1. पालने के गीत
2. लोरी
3. खेल के गीत

लोकोक्तियाँ :

लोक सुभाषित में लोकोक्तियों का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा किसी कथन में तीव्रता तथा प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। इसके प्रयोग से किसी कथन की पुष्टि की जाती है और इसका प्रभाव श्रोताओं पर बहुत अधिक पड़ता है। सर्व साधरण जनता के द्वारा प्रयुक्त होने के कारण इसे लोकोक्ति (लोक=जनता+उक्ति=कथन) कहा जाता है। लोकोक्तियाँ अनुसिद्ध ज्ञान की निधि हैं। मानव ने युग–युग से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया है उनका प्रकाशन इनके माध्यम से होता है। ये चिरकालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र हैं। समान रूप से चिर–परिचित तथा अनुभूत ज्ञानराशि का प्रकाशन इनका प्रधान उद्देश्य पाया जाता है।)

परम्परा :

लोकोक्तियों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वेदों में भी इनकी सत्ता उपलब्ध है। उपनिषदों में भी लोकोक्तियाँ प्रचुर परिमाण में पायी जाती हैं। संस्कृत साहित्य में तो इनका विशाल भण्डार उपलब्ध होता है। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थों में इनका सुन्दर प्रयोग किया है। महाकवि राज शेखर ने प्राकृत भाषा में निबद्ध 'कर्पूर मंजरी' नामक सट्टक में 'कर कंगन को आरसी क्या' इस हिन्दी लोकोक्ति के भाव का प्रयोग किया है। पालि ग्रथों में भी ऐसी लोकोक्तियां प्राप्त होती हैं जिनके अनुभूत की व्यंजना पाई जाती है।

लोकोक्तियों की विशेषताएं :

1. लोकोक्तियों की सबसे बड़ी विशेषता इनकी समास शैली है। इन कहावतों में इनके रचयिताओं ने गागर मे सागर भरने का सफल प्रयास किया है। लोकोक्तियां आकार में छोटी होती हैं, परन्तु इसमें विशाल ज्ञान राशि सिमटी रहती हैं।

उदाहरण के लिए– 'तीन कनौजिया तेरह चूल्हा' को लिया जा सकता है। इन चार शब्दों में कनौजिया ब्राम्हणों की स्पर्शा–स्पर्श सम्बन्धी विचार धारा पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

संस्कृत में एक छोटी सी लोकोक्ति में चार्वाक दर्शन के सम्पूर्ण सिद्धान्तों का अवलोकन किया जा सकता है–

'यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्,
ऋणं कृत्वा धृतंपिवेत्,
भस्मीभूतस्य देहस्य,
पुनरागमन कुतः।'

2. इनकी दूसरी विशेषता अनुभूति और निरीक्षण है। लोकोक्तियों में मानव जीवन के युग–युग की अनुभूतियों का परिणाम और निरीक्षण शक्ति अन्तर्निहित है। काशी के सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है–

'राड़–साड़, सीढ़ी, सन्यासी।
इनसे बचे तो सेवे काशी।'

जिन लोगों को काशी में निवास करने का अवसर मिला है वह जानते हैं कि यहाँ के साँड़ और सीढ़ियों कितनी खतरनाक है। इसी तरह बुदेलखण्ड के सम्बन्ध में यह लोकोक्ति प्रचलित है–

'झाँसी गले की फाँसी, दतिया गले का हार।
ललितपुर नहि छोड़िये, जब तक मिले उधार।।'

इससे स्थानीय जनता के व्यवहार का पता चलता है।

3. इनकी तीसरी विशेषता सरलता है। ये लोकोक्तियाँ बड़े ही सरल भाषा में निबद्ध होती हैं। जिन्हें अनपढ़ जनता भी बड़ी आसानी से समझ सकती है। इनकी सरलता के कारण श्रोताओं पर इसका अतिशय प्रभाव पड़ता है। जैसे–

'नसकट पनही, कतकट जोप,

जो पहिलौठी बिटिया होय,

पातर कृषि, बौरहा भाय,

घाघ कहै दुख कहाँ समाय।।'

इस लोकोक्ति के भाव को समझने में तनिक भी कठिनाई नही होती है। कहावतें गद्य में भी होती हैं और पद्य में भी। पद्यात्मक लोकोक्तियों को याद करने में बड़ी सुविधा होती है। इनका प्रभाव भी जनता के ऊपर सम्भवतः अधिक पड़ता है।

अध्याय–3

नागार्जुन के उपन्यासों का विकास क्रम

नागार्जुन ने लगभग हिन्दी को एक दर्जन उपन्यास दिये जो रचना कर्म के किसी भी पैमाने से एक उल्लेखनीय योगदान है नागार्जुन को जनवादी आन्दोलन से जोड़कर समझने से पूरी बात स्पष्ट नहीं हो सकती इसके लिये शायद नागार्जुन के व्यक्तिगत जीवन प्रसंगों को समझने की आवश्यकता है। वे कैसे परिवार में पले–बढ़े, किस तरह का घरेलू वातावरण उन्हें अवदान में मिला, किन विकट सान्सारिक परिस्थितियों का उन्हें सामना करना पड़ा, उनमें यह सब निश्चित था कि समाज के किन लोगों और वर्गों के बीच उनकी परचित और गति है उस अंचल की, उसके शदियों से सुख–दुःख भोगते आये शोषित–पीड़ित लोगों की, उनके रीति रिवाजों, क्रिया–कलापों, रहन सहन की जो गहरी जानकारी उन्हें इस सहभागिता से उपलब्ध हुई वह किसी भी रचनाकार के लिये एक बेजोड़ थाती है। जीवन की यही मजबूरियाँ रचनाकार नागार्जुन के लिये वरदान सिद्ध हुई उनके घुमकड़ी स्वभाव ने जीवन अनुभवों की इस बड़ी पूंजी में अत्यधिक वृद्धि की।

नागार्जुन ने कुल 13 उपन्यास लिखे हैं दो मैथली भाषा में और ग्यारह हिन्दी में मैथली उपन्यास 'पारो' उनकी पहली रचना है। हिन्दी का सर्वप्रथम उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' है। वास्तव में 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास से ही सामाजिक उपन्यास की धारा का जन्म होता है इसमें नागार्जुन ने निम्न मध्य वर्ग का और उसके शोषण का प्रभावशाली चित्रण किया है एक ओर वे मर्क्सवादी सिद्धान्तों को आत्मसात करते हैं तथा दूसरी ओर देहाती जीवन का उनको गहरा व्यक्तिगत अनुभव है तथा उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके बाद आत्म कथा शैली में लिखा हुआ बाबा नागार्जुन का बहुचर्चित उपन्यास है 'बलचनमा'। इसमें निम्न वर्गीय एक कृषक पुत्र की यातना पूर्ण और अभाव ग्रस्त जीवन गाथा है। यह उनका उपन्यास समाजवाद की श्रेणी में रखा जाता है। इनके 'वरुण के बेटे' उपन्यास में प्रगतिशीलता और साम्यवादी विचारधारा के दर्शन होते हैं यह लघु उपन्यास मछुआ जाति के वर्ग संघर्ष को लेकर चला है। मछुआ जाति जीवन को पूरी तरह से उनकी कमियों को सामने लाने वाला हिन्दी का प्रथम लघु उपन्यास है।

'कुम्भीपाक' में मानव जीवन के यथार्थ 'कुम्भीपाक' का चित्रण किया है इस रचना के माध्यम से वह ग्रामीण और शहरी जीवन में एक प्रकार का समन्वय स्थापित करना चाहता है। 'हीरक जयन्ती' बाबा नागार्जुन का राजनैतिक भ्रष्टाचार को अभिव्यक्त करने वाला सशक्त लघु उपन्यास है। इसमें भ्रष्ट नेतृत्व पर एक कटु व्यंग्य है। 'उग्रतारा' में नागार्जुन ने उस नारी की मनःस्थित का चित्रण जो प्रेम किसी और से करती है और उसे विवाह किसी और से करना पड़ा, का मार्मिक चित्रण किया है। 'इमरालियां' अथवा 'जमनियाँ' में देश के मठों में किस प्रकार का धार्मिक पाखण्ड और आडम्बर चलता है और साधु भी इसका किस प्रकार शिकार होते हैं यह प्रदर्शित किया गया है। 'बाबा बटेश्वर नाथ' उपन्यास में लेखक का अनोखा प्रयोग है जिसमें जीने के लिये जीना जीना नहीं है, परोपकार के लिये जीना ही जीना है तथा संगठन ही सत्य है, दर्शाया गया है। 'नई पौध' नामक उपन्यास का आर्थिक संघर्ष प्रधान रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान है इसमें मैथली समाज के घृणित परम्परागत कार्यों का पर्दाफाश इस उपन्यास में किया गया है।

उपन्यास रतिनाथ की चाची का कथानक :

गौरी 'रतिनाथ की चाची' है। गौरी ही इस उपन्यास की नायिका है रूप सुन्दरी गौरी दरिद्र रोगी बैधनाथ झा से ब्याही गयी, उसके पति में केवल एक गुण था कि वह कुलीन था।

'उच्चकुल में कन्या ब्याहने के सनक के सामने अन्य बातों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता इसी का अभिशाप 'रतिनाथ की चाची' ने जीवन भर भोगा।'

1– बेटे उमानाथ और बेटी प्रतिभामा के जन्म के बाद गौरी के पति का स्वर्गवास हो गया। गौरी का देवर विधुर जयनाथ है। रतिनाथ जयनाथ का बेटा है रतिनाथ ही गौरी का मानस पुत्र हैं जयनाथ से गौरी को गर्भ रह जाता है जो उसकी इच्छा से विरूद्ध होता है वह अपने मायके जाकर साहसी माँ के माध्यम से गर्भपात कराकर मुक्ति प्राप्त करती है। वृत्ती संयमी आत्मनिर्भर चाची ने अपना जीवन तापसी की तरह बिताया देवर के बालात्कार से गौरी को गर्भ रह जाना उसके जीवन की सबसे बड़ी आपत्ति बन गयी। विधवा गौरी के गर्भ धारण करने के कारण समाज उसका बहिष्कार करता है। जयनाथ ही गौरी के दुखी जीवन का कारण है लेकिन फिर भी गौरी जयनाथ से सम्बन्ध नहीं तोड़ती है, जयनाथ को समझाती हुयी गौरी स्त्री जीवन को सत्य करती है। 'किसी भी युग में स्त्री को अमृत पीने का सुयोग नहीं मिला पुरूष को अमृत पिलाकर स्वयं वह विष पान ही करती आई।'

रतिनाथ के मोतीहारी चले जाने के बाद घर में गौरी और जयनाथ दोनों ही रह जाते हैं और वह जयनाथ को समझा कर उससे अपने को बचाती रही वह तैतीस वर्षीय विधुर देवर को कभी भी घृणा की दृष्टि से नहीं देखी वह जयनाथ और एक तेलिन के सम्बन्ध को जानते हुए भी जयनाथ को दोष नहीं देती है। तकली चलाने के कारण चाची कृत्तियों का जीवन अनुभव करती है, कृत्तियों का शोषण खादी वाले करते हैं। 'चाची की समझ में नहीं आ रहा था कि गाँधीं जी के चेले इस प्रकार की बेइमानी क्यों करते

हैं? उसके पुत्र उमानाथ को माँ का चरखा चलाना अच्छा नहीं लगता,' वह कहता है खबरदार अब कभी चरखा छुआ तो हाथ काट दूँगा।

अपमानित प्रेमहीन, वृत्ति और लांक्षित जीवन सहते सहते चाची का शरीर थक गया एक वर्ष तक संग्रहणी से बीमार रही इसके बाद हैजा होने के कारण वे काल की गोद में समा गयी। तार देने पर भी उनका पुत्र उमानाथ न आया। अन्तिम समय पुत्र दर्शन भी न कर सकी। चाची की इच्छानुसार उनका मानस पुत्र रतिनाथ ही उनका अंतिम संस्कार किया। ' गौरी के अन्तिम संस्कार के बाद रतिनाथ मन ही मन बुदबुदाता है ' अस्थि गंगा में प्रवाहित करके हृदय से बारम्बार यही बात उठ रही थी कि अमावस्या की उस रात को कौन था? चाची एक घनी अंधेरी छाया तुम्हारे बिस्तरे की तरफ बढ़ आयी थी, वह क्या थी? चाची शील और शालीनता को प्रतिमूर्ति तुमने क्यों उस धूर्त का नाम नही बतला दिया?[2]

रतिनाथ की चाची की जनचेतनता :

यह नागार्जुन का प्रथम सामाजिक उपन्यास है। मैथली समाज के संयुक्त परिवार का यर्थाथ चित्रण इसमें किया गया है। जयनाथ सामंतवादी परम्परा एवं रूढ़िवादी मैथली समाज का प्रतिक है वह बेकार और बालक वृत्ति पर निर्भर रहने वाला है। नागार्जुन के शब्दों में 'वह सामजिक चेतना सें विहीन पौरूषहीन व्यक्ति है गौरी का पति वैधनाथ एक अधेड़ रोगी, दरिद्र, दमा का मरीज था, जो समाज के बेमेल विवाह को चित्रित करता है। इस प्रकार नागार्जुन ने कुलीन मैथली परिवार में स्त्रियों की दयनीय स्थिति का इस बेमेल विवाह के माध्यम से यर्थाथ चित्रण प्रदर्शित किया है। गौरी अनमेल विवाह का शिकार हुयी विधवा हैं। गौरी के दुखों का अन्त नही है। नया कर्ज से छुटकारा पाने के लिए उसे अपनी बेटी प्रतिभामा को भी धन के लिए बेचना पड़ा। इस प्रकार इसकी बेटी भी बेमेल विवाह का शिकार बनी। इस उपन्यास के माध्यम से शोषक और शोषित समाज के बीच समाजिक यर्थाथ की तीखी अभिव्यक्ति मिलती है। पति की मृत्यु के बाद असहाय गौरी वैधव्य जीवन जीती हुई अपना समय परिवार के दो बच्चों के

लालन पालन में व्यतीत करना चाहती है लेकिन गौरी का देवर जयनाथ उसके वैधव्य जीवन को खण्डित कर उसे गर्भिणी बना देता है। यह रहस्य खुलने के भय से वह पलायनवादी और नारी कलंक को धारण करती हुयी वह समाजिक उपेक्षा का पात्र बनती हैं। न वह माँ बन पाती है और न सम्मानित जीवन ही जी पाती है। उसकी पुत्र वधु उसकी सेवा करते हुए भी अपमान और घृणा करती है। छुट्टी पर आये उमानाथ को दम्मो बुआ के माध्यम से माँ की यह काली करतूत जब पता लगती है तो कुद्र उमानाथ माँ का झोटा पकड़कर कहता है 'राक्षसी कहीं कीं ले अपना घर मैं जाता हूँ तलाब में डूबने और तू मौज मस्ती मारती रहना। असहाय गौरी बेटे के पैर पकड़कर कहती है' मैं खुद इसलिए डुब नहीं मरी की तुम्हारे हाथों से सद्गति मिलेगी तो मेरे सारे कुकर्म धुल जाएगें। पति की मृत्यु के बाद गौरी के भाई की यह इच्छा थी कि गौरी सदैव मायके में ही रहे तब स्वाभिमानी गौरी अपनी माँ से कहती है ' विवाहिता के लिए पित्र कुल का अमृत भी पतिकुल के माडे या पीने के साधारण जल पीने से तुक्ष्य है।' गौरी ने केवल सहते जाना और आत्म क्लेश में लीन रहना सीखा है। गौरी के जीवन का संक्षिप्त विवरण देकर सुरेश सिन्हा लिखते हैं–

' उसका चरित्र इस उपन्यास में बड़ा ही आकर्षण बन पड़ा है। उसका विधवा जीवन बड़े ही श्रेष्ठ यर्थथवादी ढंग से चित्रित किया है हिन्दी उपन्यास साहित्य की अन्य विधवा नायिका निर्मला (प्रेमचन्द के उपन्यास निर्मला की नायिका) की भाँति गौरी भी महान है पर निर्मला की तुलना में उसके चरित्र में गतिशीलता अधिक है और उसका दृष्टिकोण प्रगतिशील है।[3] डा० चन्दी प्रसाद जोशी ने लिखा है– ' भारतीय विधवा नारी के प्रति जो करूणा संवेदना तथा सहानुभूति चाची समेट चुकी है वह हिन्दी उपन्यास में कोई विधवा नहीं पा सकी।'[4]

भारतीय ग्रामीण जीवन को यथार्थ अभिव्यक्ति प्रेमचन्द्र के बाद नागार्जुन के उपन्यासों में ही मिलता है। ' नागार्जुन ने एक ओर मार्क्सवादी सिद्धान्तों को

आत्मसात किया है और दूसरी ओर देहाती जीवन का उनको गहरा व्यक्तिगत अनुभव है तथा उनका घनिष्ट संबंध है।[5]

बलचनमा का कथानक :

नागार्जुन का बहुचर्चित उपन्यास बलचनमा में निम्न वर्गीय एक कृषक के पुत्र की यातना पूर्ण और अभाव ग्रस्त जीवन गाथा है। बचपन में ही पिता की मृत्यु होने के कारण उसे जमीदार के यहाँ नौकरी करनी पड़ी और जमीदार के अमानवीय अत्याचारों को झेलना पड़ा। लेखक ने इसमें बलचनमा के जीवन का खण्ड चित्र खींचा है। बलचनमा ही इस उपन्यास का मुख्य पात्र है। इस उपन्यास का सम्पूर्ण कथानक बलचनमा की आप बीती है। यह बिहार के दरभंगा जिले के देहाती जीवन पर आधारित एक उपन्यास है। ' वैयक्तिक समस्याओं के सामाजिक परिवेश में अभिव्यक्ति के स्थान में सामाजिक समस्याओं की व्यक्तिगत परिणति बलचनमा में मिलती है।[6]

एक परिश्रमी ईमानदार खेत मजदूर अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से जमींदारों के अत्याचार सहता है। वह परिश्रमी एंव सरल प्रवृत्ति का है, जिस काम के लिए उसे रखा गया है उस काम को बड़ी सावधानी से करता है, श्रम ही उसका जीवन है, उसका चिरत्र उच्चकोटी का है, इसी कारण जब सुखिया उसके चरित्र का अनुचित लाभ उठाना चाहता है तो वह उसे फटकार देता है। बचपन से ही उसके मन में उच्च वर्ग के प्रति आकोश है। 'छुटपन से ही (14 वर्ष की उम्र से) उसने जमीदारों और मालिकों का शोषण सहा और इस शोषण के प्रति एक द्वन्द भाव शुरू से ही उसके बीच खड़ा है।'[7] जीवन की धारा में अपने को खुला छोड़ संघर्षों से जूझता हुआ बलचनमा अन्त में जमींदार के लठेंतों के प्रहार से बेहोश होकर जमीन पर लुढ़क जाता है लेकिन टूटता नहीं और न ही किसी प्रकार का समझौता करता है।[8] वह अपने बाहुबल पर विश्वास करता है लड़कर और संघर्ष कर अपने अधिकारों को लेना जानता है इस प्रकार इस उपन्यास में कृषक और मजदूर लोगों के शोषण का चित्रण हुआ है।

'इसके कथानक को नागार्जुन ने बलचनमा की स्मृतियों से सजाया है मालिक और मालकाइन की निम्न स्तरीय कृपणता, अत्याचार, भैंस पालन, बलचनमा द्वारा राधा बाबू की ससुराल जाने, सुखियाँ का भूत भगाना, धान रोपना, प्रथम रेल यात्रा आश्रम की दिनचर्या, पटना में फूल बाबू का सहवास, जमींदार का अपनी बहन के साथ अनाचार ऐसे अनेक प्रसंगों को लेकर इस उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। पूरे उपन्यास में किसानों का दुखदर्द और संघर्ष व्याप्त है।'[9]

बलचनमा और उसकी जनचेतनता :

बलचनमा को केन्द्र बनाकर नागार्जुन ने उभरते हुए कृषकों के जीवन की तस्वीर हमारे सामने प्रस्तुत की है। इसमें नौकर और मालिक के बीच गहरा अन्तर है। बलचनमा को जीवन में चिन्ताओं के अलावा कुछ नहीं मिला किन्तु उन चिन्ताओं से वह घबराता नहीं बल्कि उन्हें भूलकर चैन की नींद सोता है। परन्तु उसके चरित्र में विद्रोह की चिंगारी है वह भाग्य और ईश्वर इच्छा को अन्तिम सत्य मानने को तैयार नहीं है इस प्रकार उसका चरित्र प्रगतिशील विचारधारा का प्रतीक है। प्रेमचन्द्र का होरी परिस्थितियों के आगे कही हार मान जाता है पर बलचनमा न तो झुकता है और न हारता है । होरी की तरह उसे परम्पराओं और धार्मिक अन्ध विश्वासों ने ग्रस्त नहीं किया, वह अपने बाहुबल पर विश्वास करता है। लड़कर और संघर्ष कर अपने अधिकारी को लेना जानता है उसके सशक्त संघर्ष की आवाज उन समूची परम्पराओं के विरूद्ध खड़ी होती है। जो एक ऐसी राजनीति को जन्म देती है। 'जिसमें कृषक और मजदूर लोगों के शोषण का चित्रण हुआ है इसे फूल बाबू के राजनीतिक व्यक्तित्व को रचनात्मक ढंग से दिखाया गया है। इस प्रकार यह उपन्यास साम्यवाद के नजदीक आता है। नागार्जुन ने इस उपन्यास के माध्यम से शोषण मूलक व्यवस्था के हिमायतियों पर बज्र बनकर टूटते है। वह जमीदारों मालिकों के समाजतन्त्र का तिलमिला देने वाले व्यंग्य वाणों की बौछार करते है।'[10]

उनके मुखौटों को उतारते हुए उनकी असलियत खोलते हैं उन्हें सब के सामने नंगा करते हैं। सामंतवादी, सम्राज्यवादी, पूँजीवादी, गठजोड़ का पर्दा साफ करने वाले साधारण मजदूर के दुख–दर्द से प्रेरित नागार्जुन का बलचनमा उपन्यास एक मूल्यवान उपलब्धी है। इस उपन्यास में लोकजीवन की बात आते ही जो छवि पाठक के मन में उभरती है वह मजदूर किसानों की दुख और शोषण गाथा की, शोषक सत्ताओं के अन्याय और उन पर आक्रोश बरसाने वाली छवि होती है। यह छवि समाजवाद और मार्क्सवाद की विचार धारा से जुड़ी हुई है।

नई पौध का कथानक :

नई पौध से लेखक का अभिप्राय नई पीढ़ी से है इसमें अर्थ के लाभ से किसी लड़के या लड़की को बेचा नही जा सकता, दिखाया गया है। 'इसमें मिथला का जीवन अंकित किया गया है। मिथला में सोरठ का मेला लगता है जहॅा विवाह के इच्छुक वर एकत्र होते हैं, यही पर अभिभावक अपनी कन्याओं के लिए वरों का चयन करते हैं। विसेसरी पितृविहीन बालिका है। उसे अपने नाना खोखा पण्डित का संरक्षण प्राप्त है। खोखा पण्डित धन का दीवाना है, उसने अपनी छः लड़कियों को बेचकर अच्छी रकम इकट्ठी कर ली है। विसेसरी के लिए वह मात्र नौ सौ रूपयों के लिए चतुरानन चौधरी को चुनता है। चौधरी साहब की उम्र पचास के ऊपर पहुॅच चुकी है, उनकी तीन पत्नियॉ तथा कई बच्चे हैं, परन्तु बहुत धनवान हैं। अर्थ की महत्ता को समझकर ही खोखा पण्डित ने विसेसरी का विवाह चतुरानन चौधरी से तय कर दिया। गॉव के प्रबुद्ध और नवयुवक व्यक्ति इस विवाह का विरोध करते हैं बारात लेकर आये हुये चौधरी साहब निराश होकर बिना विवाह किये गॉव से लौट जाते हैं इस प्रकार विसेसरी का विवाह होते होते बच गया, पर अब यह विवाह गॉव की समस्या बन गया। प्रगतिशील नवयुवक इस समस्या का हल साहस और धैर्य से करते हैं। समाजवादी युवक नेता दिगम्बर स्वयं विसेसरी से विवाह के लिए आगे बढ़ता है और विसेसरी के साथ

विवाह कर वह नई पौध की घोषण करता है।'[11] धैर्य हिम्मत और साहस के बल पर विसेसरी अपनी पसन्द का जीवन साथी प्राप्त करती हैं, अपने साथियों के सहयोग से और खुद के उचित निर्णय से विसेसरी अपनी अनमोल जिन्दगी को खतरे से बचाने में सफल रही उसने अपनी परिवार का विरोध करने की हिम्मत दिखाई। इस प्रकार लड़कियों की नई पीढ़ी के लिए विसेसरी आशा की किरण बन गई।

'नई पौध' के प्रमुख पात्र :

(1) विसेसरी (उपन्यास की नायिका)

(2) रामेश्वरी (विसेसरी की माँ)

(3) खोखा पण्डित (विसेसरी का नाना)

(4) चतुरानन चौधरी (वृद्ध और अमीर व्यक्ति)

(5) बाचस्पति चौधरी (विसेसरी के पसन्द का वर)

(6) महेश्वरी झा और दिगम्बर मालिक दोनों प्रगतिशील युवक।

नई पौध और जन चेतनता :

'आर्थिक संघर्ष प्रधान रचनाओं में नागार्जुन की 'नई पौध' उपन्यास महत्वपूर्ण स्थान है। नई पौध में अर्थ, धन, लालच और अनमेल विवाह की बात की गई है। इसमें मैथली समाज में घृणित परम्परागत कार्यों का पर्दाफास किया गया है। मैथली ब्राहम्णों में कम उम्र की अवस्था में कन्याओं का विवाह बुढों से करा दिये जाते थे।[12]

इसमें लेखक ने एक सड़ी–गली प्रथा, स्वार्थपरता और पुरानी पीढ़ी का शोषण, वासना का नंगा चित्रण किया है।[13]

'नई पौध' उपन्यास का आधार अर्थ और अनमेल विवाह की समस्या है। यद्यपि कथा का विषय पुराना है किन्तु असके निर्वाह और विवेचन का ढंग मौलिक है। नागार्जुन ने इस उपन्यास के माध्यम से एक गम्भीर समस्या को प्रस्तुत किया है।[14]

नागार्जुन के इस उपन्यास में अमीरी और गरीबी के नजारे हैं एवं अर्थ का धिनौना रूप है, परन्तु साथ ही साथ इसमें जुझते लड़ते और आर-हार कर भी नये मोर्चे बांधने वाले युवा पीढी का सौन्दर्य है।

वरूण के बेटे का कथानक :

इस उपन्यास की कथावस्तु मछुआ जाति के जीवन पर आधारित है, इसमें मछुआ जातीय वर्ग संघर्ष को, प्रदर्शित किया गया है। मछुआ जाति जीवन को पूरी तरह से उनकी कमियों को सामने लाने वाला सम्भवतः यह हिन्दी का प्रथम लघु उपन्यास है। मछुओं को जीवन में कैसे-कैसे संघर्षों और अभावों का समाना करना पड़ता है, उसे बड़े ही कलात्मक ढंग से इस रचना में अत्यन्त मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है। जब सारा संसार निद्रा में डूबा हुआ है तो मछूआ जाति के लोग ठंडे पानी में डुबकियाँ लगाकर जाल फैलाते हैं और ठंडी रातों को कार्य करते हैं। यह घटना ही और गोनयसी नामक दो छोटे-छोटे गाँवों की है। दोनों गाँव अत्यधिक निकट होने के कारण एक ही गाँव लगते हैं, यहाँ के अधिकांस व्यक्ति मछलियाँ पकड़कर जीवन निर्वाह करते हैं गढ़कोकर की मछलियाँ ही उनके जीवन का आधार हैं। गाँव के जमींदार गोखरन को धन की लालचबस अन्य व्यक्ति को भेज देता है, वह व्यक्ति उन लोगों को मछलियाँ नहीं पकड़ने देता, सभी मछुये इसका प्रतिरोध करते हैं और मिलकर एक संघ की स्थापना करते हैं और समस्त व्यक्ति अत्यन्त सजगता से इस आन्दोलन में भाग लेते हैं । मधुरी, मछुआ, खुरखुन की बहादुर बेटी है। मधुरी इस संघ की प्रमुख नारी सदस्या है । भोला साहनी का बेटा मंगल मधुरी से प्रेम करता है। मधुरी भी मंगल से प्रेम करती है लेकिन परिस्थिति वस मंगल का विवाह उससे नहीं हो पाता है। मधुरी अपने पिता की नशा खोरी सहन नहीं करती है। विवाह के बाद मधुरी अपने नशाखोर ससुर और असर्मथ पति के घर अपना जीवन बर्बाद नहीं करना चाहती वह विद्रोही नारी अपनी ससुराल का त्याग करके मायके चली आती है। विवाह के बाद भी मंगल और मधुरी दोनों मिलते रहते हैं

वह मंगल के बैटे को भी बहुत प्यार करती है, मधुरी कैम्प के सहायता शिविर में काम करती है वह सभी युवकों से एक सा खुला व्यावहार करती है सहायता कैम्प का कार्य समाप्त होने के बाद वह मछुआ संघ की कोषा अध्यक्ष बनती है। माँझी ने पचास गाँव के किसान प्रतिनिधियों का वार्षिक सम्मेलन आयोजित किया सम्मेलन में मधुरी महिला किसान सेवको के साथ काम करती है किसान सभा की ग्राम कमेटी में मधुरी को ले लिया जाता है। मछुआ संघ के सभी सदस्य महिलाएं भी इस आन्दोलन में कूद पड़ती हैं। आन्दोलन के उग्र तेवर देखते हुए उसको नियन्त्रित करने के लिए डिप्टी मजिस्ट्रेट पुलिस लेकर आ जाता है। और सभी आन्दोलनकारियों को गिरफ्तार कर लिया जाता है। लेकिन आन्दोलनकारी दृढ़ निश्चयी हैं वे झुकने को तैयार नहीं अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध निरन्तर बढ़ते रहने का व्रत लेते हैं सरकार के नये प्रस्ताव को वे गैर कानूनी मानते हैं मछुआ बन्दी बनकर मछुआ संघ के नारे लगाते हुए चले जाते हैं। इस उपन्यास में बाढ़ पीड़ितो द्वारा मालगाड़ी के डिब्बे न खाली करने से उत्पन्न रेलवे अधिकारियों से संघर्ष मधुरी का ससुराल जाना दरभंगा जाकर मछली बेचना, माधुरी द्वारा बाढ़ पीड़ितो के लिए सहायता शिविर चलाना, कांग्रेसी नेताओं का मजदूरी देते समय लुप्त हो जाना चुनाव जीतने के लिए रूपये बाँटना ईमानदारी, जनसेवा और एकता जैस शब्दो को अपने स्वार्थ के लिए प्रयोग करना आदि प्रसंगों का चित्रण नागार्जुन ने बड़े ही कुशल चितेरे के रूप में प्रस्तुत किया है। देश कोष की माटी की गंध ताल पोखर का पानी आदि आँचलिक सौन्दर्य के सुक्ष्म चित्रों का चित्राँकन बड़ी बारीकी से किया गया है।

'वरूण के बेटे' के प्रमुख पात्र

(1) मधुरी	(नायिका)
(2) मोहन माँझी	(नेता)
(3) कुसुम कक्कड़	(पंजाबी लड़की)
(4) मंगल	(प्रेमी)
(5) खुरखुन	(पिता)

वरुण के बेटे और उसकी जनचेतनता :

प्रगतिशील और साम्यवादी विचारधारा का प्रर्वतन करने वाला नागार्जुन का यह लघु उपन्यास मछुआ जाति के वर्ग संघर्ष को प्रदर्शित करता है निम्न मछुआ जाति अपने जीवन यापन के लिए विषम संर्घष करती है जमींदारी के उन्मूलन के कारण जमींदार उच्चवर्ग और धनी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं और मछुआरा वर्ग निम्न वर्ग का । इस उपन्यास की नायिका मधुरी अत्यधिक प्रगतिशील विचारों वाली महिला है जब बनिये का आदमी पिता की कर्ज की वसूली के लिये अपशब्दों का प्रयोग करता है तो मधुरी उसे डॉट पिलाकर भगाा देती है अधिकांश नारियाँ परित्यक्ता का जीवन जीने के लिये विवश होती हैं लेकिन वह अपने बोड़स पति का त्याग करती हैं और मेहनतकश और ईमानदार व्यक्ति से पुनः विवाह की इच्छा रखती हैं मधुरी को इस उपन्यास में राजनैतिक और उन्मुक्त विचारों वाले पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने वाली नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है, उसके लिये डिप्टी मजिस्ट्रेट कहते हैं 'मोहन मॉझी में तुम्हें भी कमन्युज्म का पाठ पढ़ा ही दिया' तो मधुरी इसका सीधा उत्तर देती है' तो इसमें क्या हर्ज है जीन्दगी और जहान औरतो के लिये नहीं है क्या ? मधुरी अन्ध समाज की अन्ध परम्पराओं को ठुकरा देती है वह–'लाख बात वरदाश्त करके भी लड़कियों को ससुराल में रहना चाहिये' को नहीं स्वीकारती[15] अपमानित , शोषित, नारि का जीवन जीना वह पसन्द नहीं करती है बाढ़ शरणार्थियों की सहायता में वह अपने को अर्पित कर देती है वह मछुआ संघ में सम्मिलित होकर उसमें सक्रिय योगदान देती है सामाजिक सेवा कार्यो में वह जेल जाने में भी नहीं घबराती। निम्न वर्गीय जनता की पीड़ा को सघंर्ष के माध्यम से अपने अधिकारों को प्राप्त करना है। शक्तिशाली ताकतों के समक्ष नतमस्तक न होना है। आन्दोलनकारी यह घोषणा करते हैं – 'मछुओं का संगठन तय कर चुंका है कि किसी भी परिस्थित में घुटने नहीं टेकेगें सरकार का नया प्रस्ताव गैर कानूनी है वे गढ़ पोखर की सीमाओं के अन्दर नहीं घुसने देंगें।

मछुआ जाति। सामान्य जन से आधार बनाकर यह अपन्यास लिखा गया है। नागार्जुन ने जिस बेवाकी से इसमें मछुआ जाति के सभी पक्षों । आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक का चित्रण किया है उससे नागार्जुन के जन सामान्य से जुड़े होने का ही प्रमाण मिलता है।

इस रचना के अन्त मे लेखक को साम्यवादी स्वीकार किया गया है नारी से 'इन्कलाब जिन्दाबाद, मछुआ संघ जिन्दाबाद हक की लड़ाई जीतेंगे–जीतेगें गढ़पोखर हमारा है हमारा है ' इस तरह से नागार्जुन ने इस उपन्यास में अपने पात्रों और घटनाक्रम के माध्यम से समाज की जर्जर मान्यताओ व्यवस्थाओं और कुरितियों पर कुठाराघात किया है ऋण शोषण का प्रतिरोध और वर्ग संर्घष को प्रदर्शित करता है इस प्रकार लोक साम्यवादी विचारों का पोषक है।

डा0 सरोजनी त्रिपाठी का कथन -- 'साम्यतादी विचारों से प्रभावित यह कथानक ग्रामीण क्षेत्र विशेष की उन घटनाओं को चित्रित करता है जो लेखक के उद्देश्य को प्रकट करने में समर्थ है।'[16]

कुम्भी पाक का कथानक--- कुम्भीपाक नागार्जुन की एक महत्वपूर्ण रचना है प्रथम तो इसमें मानव जीवन के यर्थाथ कुम्भीपाक का चित्रण है द्वितीय नागार्जुन जी ने आंचलिक प्रवेश को छोड़ कर नागरीय जीवन का चित्रण किया है। लेखक इस उपन्यास के माध्यम से ग्रामीण और शहरी जीवन में एक प्रकार का समन्वय स्थापित करना चाहता है कुम्भीपाक के कथानक के सम्बन्ध में लेखक का कथन दृष्टव्य है। इसमें एक नारी की कहानी है जो 19 वर्ष की आयु में विधवा हो चुकी है 4 महीने के गर्भ को गिराने के लिए कोई रिस्तेदार आशनशील ले जाता है और धर्म शाला में अकेली छोड़ कर खिसक जाता है, तब से दो वर्ष इंदिरा के कैसे कटे हैं यह बात धरती जानती होगी या आसमान जानता होगा। इसमें परूष जाति द्वारा शोषित नारकीय जीवन जीने वाली चम्पा (बुआ) इन्दिरा (भुवन) की कहानी है इनको नारकीय जीवन से बाहर निकाल कर मुक्ति दिलाने का कार्य निर्मला करती है। चम्पा शर्मा की अश्रिता है दोनों पति पत्नी की तरह

रहते हैं भुवन चम्पा की आश्रिता है शर्मा और चम्पा का लड़कियां बेचने का व्यवसाय है चम्पा की मामूली पढ़ाई के बाद विवाह हुआ और दो साल बाद विधवा हो गयी उसकी बड़ी बहन की चेचक में मृत्यु के बाद बच्चों की देखभाल के लिए अपने जीजा के साथ रहने लगी, डरपोक जीजा के चम्पा से शारीरिक संबध होने के बावजूद भी वह शादी के लिये तैयार न हुआ वापस माँ के घर जाकर वहाँ सफदर की रखैल के रूप में एक बेटी और एक बेटे को जन्म दिया शराबी सफदर और बच्चों को छोड़कर वह एक होटल चलाने लगी वहीं पर वह लड़कियों के देह व्यापार का अड्डा चलाया वहाँ से मुक्त होकर शर्मा जी के साथ रहने लगी यही चम्पा और शर्मा जी इन्दिरा को बेचने की योजना बनाते हैं। निर्मला अपने मौसेरे भाई सदानन्द को पत्र देकर लिखती है– लड़कियों और औरतों की खरीद बिक्री जिनका धन्धा था ऐसे ही एक राक्षस के चंगुल से आपकी छोटी बहन इन्दिरा को छुड़ा लाई है, झपट्टा मारकर चील की तरह छीन लाई, सदानन्द के परिवार में इन्दिरा का सुरक्षित नारी की उद्वार की भावना इन्दिरा में है लड़कियों को बेचने का व्यापार करने वाली चम्पा भी निर्मला के प्रभाव से बदल जाती है, साहसी निर्मला के बारे में उम्मी की माँ कहती है ––'बलिहारी है जीवन की ––––––––––––झिझक तंग दिली, और उदासी तुमसे भागे–भागे फिरते हैं खुशी और मस्ताना पन तुम्हारे कदम–कदम पर न्यौक्षावर है। मुर्दों के अन्दर जान फूँक दी तुमने –––––––भुवनेशरी लाश नहीं तो और क्या थी चुटकी बजाकर उस मैना को उड़ा दिया तुमने' चम्पा पूरी तरह बदल जाती है राय साहब के सामने बुरे धन्धों को स्वीकार करती है स्त्री उद्धार की बातें करती है। टाइप राइटर से टाइप सीख कर मंनबोध लाल की उसी चाल में स्वालम्बी जीवन व्यतीत करने लगती है, इस प्रकार निर्माला के माध्यम से इन्दिरा और चम्पा के नारकीय जीवन का उद्धार संभव हो सका।

कुम्भीपाक के प्रमुख पात्र :

1. चम्पा (बुआ)
2. इन्दिरा (भुवन)

3. निर्मला

4. शर्मा (चम्पा के पति के रूप में रहते हैं)

5. सदानन्द (चम्पा का भाई)

6. मनबोधन लाल (चाल के मालिक)

कुम्भीपाक की जनचेतनता :

नागार्जुन ने इस लघु उपन्यास के माध्यम से समाज में प्रचलित यर्थाथ कुम्भीपाक का विशाल चित्र प्रस्तुत किया है। मानव जीवन में विशेषताः नारी को छोटी सी भूल के कारण क्या-क्या कष्ट झेलने पड़ते हैं इसका मार्मिक और ह्दयस्पर्शी निरूपण लेखक की लेखनी के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है। हमारे देश में नारी के प्रति दृष्टिकोंण बदल जाये उसे मात्र भोग्य न समझा जाये तो अधिकांश विधवा औार निराश्रित महिलायें कुम्भीपाक के गर्त से निकल सकती हैं। 'निराश्रित और विधवा महिलाओं का विवाह हो जाये तो अधिकांश भयानक प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है, मानव समाज के भ्रष्ट भेड़िये अपने दिल को बहलाने के लिये अनेक युवतियों का जीवन जीते जी कुम्भीपाक में परिवर्तित कर डालते हैं इसमें समाज में प्रचलित अनाचार पतन भ्रष्टाचार आदि का चित्रण किया हैं।[17] 'इस सन्दर्भ में डा0 सुरेश सिन्हा का कथन दृष्टव्य है--- 'सामाजिक यर्थाथ का यथातथ्य चित्रण करने से लेखक ने कोई कसर शेष नहीं रखी ---- इसमें चित्रित यर्थातवाद का स्वरूप समाजवाद है, जिसकी पृष्ठ-भूमि पर परिवर्तनशील परिस्थितियों के परिप्रेक्ष में नवीन नारी चेतना का प्रगत्शील दृष्टिकोंण से चित्रण किया है और आर्थिक रूप से स्वावलम्बिनी बनने में उसकी सारी विशेषताओं एवं समस्याओं का समाधान खोजा है।'[18]

निर्मला बड़े साहसिक ढ़ग से इन्दिरा और चम्पा का नारकीय जीवन का उद्धार करती है और उन्हे आर्थिक रूप से स्वावलम्वी बनाने की प्रेरणा देती है इस प्रकार निर्मला एक साहसी और प्रगतिशील विचारों वाली महिला के रूप में प्रस्तुत होती है।

'लेखक कुम्भीपाक के माध्यम से यह स्वीकार करता है कि आँचलिकता में ही पीड़ाओं का बोझ नहीं गॉव में ही गरीबी जिन्दा नहीं है, महानगरो की गोद में भी पीड़ा , हीनता, कुन्ठा सन्त्रास्त आदि की भीड़ है। लेखक यह महसूस करता है कि समस्यायें गॉव व नगर की नहीं होती वरन वे मानव मात्र की होती हैं गॉवो में ही नही वरन शहर की भीड़ तक भी साम्यवादी दर्शन देखना चाहती हैं। प्रेम, सम्बन्ध, व्यवहार, तथा मानवता की रीतिता की अनुभूति के सिवा कुछ भी तो नहीं । 'लेखक ने ऐसी असहाय प्रतिमा को खण्डित न कर उसे विनाश से बचाकर सृजन की ओर प्रेरित किया वह जीवन निर्माण की ओर गतिशील हो गयी। उपन्यास में स्थान-स्थान पर समाज की गतिशीलता सडांन्ध वर्ग वैषम्य सामाजिक अत्याचार और शोषण की बू आती है जिससे घबराहट सी होने लगती है परन्तु नयी दृष्टि प्राप्त होती है।

उग्रतारा का कथानक ------नागार्जुन का यह लघु उपन्यास उग्रतारा की कथा गाथा और कामेश्वर की सामाजिक क्रान्ति की प्रेरणा को लेकर आगे बढ़ता है। सामाजिक समस्याओं के चित्रण के साथ-साथ ही उस नारी की मनः स्थिति का चित्रण किया है जो प्रेम किसी और से करती है और विवाह किसी और से करना पड़ता है। इस रचना का कथानक उगनी के इर्द गिर्द घूमता है। अतः उगनी या उग्रतारा इस उपन्यास की नायिका है, वह 'जमीदार के कामेश्वर नामक विदुर पुत्र से प्रेम करती है, कामेश्वर भी उगनी से प्रेम करता है। कामेश्वर के साथ भागने के प्रयत्न में उगनी पकड़ी जाती है और उसे जेल जाना पड़ता है।[19] 'सिपाही भीखन सिंह भंग की बर्फी उगनी को धोखे से खिलाकर बलात्कार करता है, परिस्थिति वस उगनी पचास वर्ष के भीखन से शादी करती है उसके साथ वैवाहिक जीवन खूब मन लगाकर व्यतीत करती है कामेश्वर उगनी के लिये फेरी वाला बनता है उसकी प्रतिज्ञा है ------ मैं उगनी का इस नरक से निकाल ले जाऊँगा उगनी ने परिस्थितियों से समझौता जीने के लिये किया यौन वृत्ति के लिये नहीं कामेश्वर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता है वह उगनी को क्वार्टर से भगा लाता है कामेश्वर

उगनी की माँग में सिन्दूर भर देता है यह उगनी का तीसरा विवाह था क्वार्टर छोड़ते समय उगनी सिपाही जी को पत्र लिखकर अपने विवाह की हकीकत बताती है अपने बच्चे को पाल–पोस कर बड़ा करने की आकांक्षा रखती है, बड़ा होने पर मैं उस बच्चे को आपके पास वापस भेज दूंगी पिता के स्थान पर रजिस्टर में तुम्हारा ही नाम दर्ज होगा आपकी छाया में आठ महीने रही हूँ, मन में आपको पिता या चाचा मानती रही और आगे भी वैसा ही मानती रहूँगी मजबूरी वस मैंने आपको धोखा दिया, सिपाही जी आप मुझे सारा जीवन याद रहेगें। उग्रतारा ने न विधवा जीवन को स्वीकार किया न अनमेल विवाह और न बलात्कार की ही परवाह की। अपने प्रियतम से विवाह करके जिन्दगी को क्रान्तकारी स्वरूप प्रदान किया। इस उपन्यास में कामेश्वर एक आदर्श प्रेमी के रूप में प्रस्तुत हुआ है। भभीखन सिंह से गर्भ रहने के बाद भी अपनी प्रेमिका के प्रति पूर्ववत प्रेमभाव रखना उसकी हृदय की विशालता का स्पष्ट परिचायक है। उगनी द्वारा सिपाही को पत्र लिखने का न तो वह विरोध करता है और न ही नाराज होता है। लेखक के शब्दों में ' –– कामेश्वर नये भारत का नया युवक है पुराने ढ़ंग का छिछौर नौजवान नहीं है।

उग्रतारा के प्रमुख पात्र :

1. उगनी (उग्रतारा)
2. भमीखन सिंह (सिपाही)
3. कामेश्वर (प्रेमी)
4. गीता

उग्रतारा की लोक चेतनता :

विधवा समस्या और अनमेल विवाह की समस्या हमारे समाज की अत्यधिक जटिल समस्यायें है। इन समस्याओं का चित्रण और उसका निराकरण इस उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में उगनी शक्ति, साहस और धैर्य की प्रतिमूर्ति है।

इच्छानुसार सही ढ़ंग से जीवन व्यतीत करने के लिए वह समाज से संघर्ष करती है, वह आशावादी है तथा परिर्वतन में विश्वास करती है। वह विधवा होने के कारण परम्परागत समाज की अन्यायकारी नीति नियमों का पालन करते हुये आत्मक्लेश सहकर घुट–घुट के जीवन बिताना मंजूर नहीं करती और एक स्वतन्त्र नारी के रूप में मानवीय तथा सम्मानपूर्ण जीवन जीने का हक वह संघर्ष के माध्यम से प्राप्त करती है। 'नारी देह की पवित्रता की बुर्जुआ मान्यताओं को खुले रूप में उखाड़ फेकने वाली उग्रतारा एक प्रगतिशील महिला है।'[20] इस उपन्यास में कामेश्वर के साथ उसका तीसरा विवाह था, इस तीसरे विवाह के माध्यम से वह प्रचलित मान्यताओं को नकारती हुयी अपने जीवन को सुखमयी बनाती है। वह क्वार्टर छोड़ते समय भभीखन को पत्र लिखकर स्पष्ट कर देती है कि उसने अपने प्रेमी से विवाह कर लिया है, वह भभीखन द्वारा चार माह का गर्भ धारण किये हुये है, यह बच्चा उसी को वापस लौटा देगी, पिता का नाम भी उसी का होगा। इस प्रकार उगनी सत्य का उजागर कर अपने प्रेमी से भी छिपाव नहीं करती है, सत्य को स्वीकार करते हुए उसने स्पष्टवादिता का परिचय दिया है।

'कामेश्वर भी एक आदर्श प्रेमी और प्रगतिशील विचारों वाला व्यक्ति है सच्चे प्रेम के कारण ही वह उगनी का उद्धार करता है।'[21] भभीखन सिंह के गर्भ रहने के बाद भी उसके प्रेम में कोई कमी नहीं आती है, वह स्पष्ट और दृढ़ विचारों वाला व्यक्ति है। उगनी को सिपाही को पत्र लिखना उसमें बच्चे को वापस लौटाने की शर्त को भी वह हृदय से स्वीकार करता है। लेखक ने इन पात्रों के माध्यम से समाज में प्रचलित व्याभिचार को समाप्ति का रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किया है। लेखक ने उगनी के माध्यम से समाज कन्टकों से पीड़ित नारियों की स्थिति का परिचय देते हुए युवकों को सहानुभूति रखने की प्रेरणा दी है। समाज में उभरती हुयी नयी चेतना का चित्रण कामेश्वर और उगनी के माध्यम से किया गया है। समाज मैं बढ़ते हुए व्याभिचार को रोकने का उपाय बताया है लेखक ने कामेश्वर के रूप में एक विकसित मस्तिष्क वाला प्रगतिशीलता का पोषक युवक प्रस्तुत किया है। डा0 सुरेश सिन्हा के कथनानुसार–––

'नायिका उग्रतारा अर्थात उगनी के माध्यम से सामाजिक यर्थाथ का चित्रण करने का प्रयत्न किया है इसमें भी लेखक की समाजवादी चेतना प्रतिपादित हुयी है। उगनी कभी परिस्थितियों से समझौता नहीं करती वातावरण से ऊपर उठकर उस पर विजय प्राप्त करती है।

प्रेम की स्वतंत्रता एवं सफलता में समाज एवं रूढ़ियां कभी बाधक नहीं हो सकती यदि प्रेम के दोनों पक्ष साहस, आत्म विश्वास, एवं प्रगतिशीलता से ओत-प्रोत हो। उगनी और कामेश्वर के माध्यम से इस मूल सत्य को बड़े ही यर्थाथवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है जो इतना स्वाभाविक प्रतीत होता है कि प्रगतिशीलता कही भी आरोपित नहीं प्रतीत होती।[22]

इस प्रकार उग्रतारा की जनचेतनता अतुलनीय है, इसमें लेखक ने समाज में व्याप्त व्याभिचार तथा विधवा नारी समस्या का यर्थाथवादी चित्र उपस्थित किया है। इसके साथ ही साथ अबला नारी का यदि समर्थ पुरूष हाथ थाम ले तो समाज का बहुत बड़ा रोग दूर हो सकता है।

हीरक जयन्ती का कथानक :

नागार्जुन द्वारा लिखित 'हीरक जयन्ती' राजनैतिक भ्रष्टाचार को दर्शित करने वाला श्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें भ्रष्ट मन्त्री की जीवनी प्रदर्शित की गई है। इस लघु उपन्यास में एक कांग्रेसी भ्रष्ट मंत्री की जीवनी प्रदर्शित की गई है। उनका नाम नरपति नारायण सिंह उर्फ बाबू सिंह है । बाबू जी की हीरक जयन्ती, का आयोजन कवि मृणाल की मस्तिष्क की उपज है। बाबू जी के सभी लाभान्वित चेला चपाटे इस आयोजन से आन्नदित होकर स्वीकृति देते है। बाबूजी की अनन्य हित चिन्तिका मनुजुखी देवी को सबसे अधिक प्रसन्नता है, श्री नरपति हीरक जयन्ती समारोह समिति बनायी जाती है यह समिति चन्दा के रूप में आस-पास की खानों से 'डेढ़ लाख रूपया वसूलते हैं। केन्द्रीय मंत्री घासी राम जी को इस समारोह का अध्यक्ष बनाया जाता है। बाबू जी की

त्याग, जनसेवा की भावना आदि का वे अपने भाषण में उल्लेख करते हुए बाबू जी को अभिनन्दन अर्पित करते हैं । राना रेवती रंजन प्रसाद सिंह अपने भाषण में बाबू जी को कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। काव्य गोष्ठी के बाद नृत्य का आयोजन होता है, तरूण सोढषी कन्याओं के नृत्य तथा उनके अंग प्रत्यंग के उन्मत कसाव को देखकर केन्द्रीय मंत्री घासी राम जी का जीवन धन्य हो जाता है। तत्पश्चात डुमरियाँ के खुमार पद नारायण सिंह द्वारा प्रीति भोज का आयोजन होता है उसी समय बाबू जी को फोन द्वारा सूचना मिलती है कि उनके पुत्र नगेन्द्र को अवैध रूप से गांजा लाने के अभियोग में पुलिस ने पकड़ लिया है लेकिन एम. पी. श्री राय उन्हें छुड़ा लेते हैं । हीरक जयन्ती समारोह के अगले दिन बाबूजी की कन्या मृदुला अपने प्रेमी के साथ माँ के गहने और पाँच हजार रूपये लेकर बम्बई भाग जाती है। यह समाचार ' विगुल नामक अखबार में पिता की हीरक जयन्ती और पुत्री की ताम्र जयन्ती' शीर्षक में छपता है।

इससे हीरक जयन्ती समारोह से सम्बन्धित सभी सदस्य कारखाने मोटरों और कई मकानों के मालिक हैं विधायक बुझावन राय निर्माण कार्य के लिए प्राप्त सम्पूर्ण धन राशि को ही हजम कर डालते हैं। राजा साहब रंगीन प्रकृति के व्यक्ति हैं, वे बिनोवा जी को भूदान में सदा पानी में डूबी रहने वाली भूमि दान करते हैं गुरू भाई महन्त सीता शरण दास को जहरीली मिठाई खिला कर स्वर्ग पहुँचाते हैं। इसके बाद दिखावे का रोना धोना करते हैं। एक पुराने नेता शिव दयाल पाठक हैं, जो अपनी पुत्री के माध्यम से अधिकांश एम0 एल0 ए0 और एम0 पी0 को अपने बस में रखते हैं। सदनके महामन्त्री राम प्यारे प्रसाद सचान की विशेष कृपा पात्र कलकत्ता के एक धनी की विधवा बहन है। बाबू धर्मराज सिंह दो नामों से एक प्रेस चलाते हैं। राम निरंजन अग्रवाल विधान सभा में बाबू जी के शत्रुओं को रोके रखते हैं। गोपी बल्लभ ठाकुर समय–समय पर माधवी का रस निचोड़ते रहते हैं। कवि मृगाल चरित्र से ही चापलूस व्यक्ति हैं। बाबू जी परम पुजारिन मंजु मुखी देवी हैं जिनके कारण सत्तारूढ़ दल में बाबू जी का विकास होता है। नागार्जुन ने नम्बर एक के भ्रष्ट एवं रिश्वत खोर मंत्री पं0 नरपति नाराण सिहं के

काले कारनामों का परिचय बड़े ही श्रेष्ठ ढंग से आत्म कथा शैली द्वारा रानी भुवन मोहिनी को अपने जाल में फंसाकर अपने नाम कई बंगले उससे बनवा लेते हैं बाढ़ पीड़ितों की सहायता राशि को अपना ही धन मानते हैं माधवी उचित श्रेणी न होने पर भी विभागाध्यक्ष बन जाती है।,

हिरक जयन्ती के पात्र-- चित्रण--

(1) नरपति नारायण सिंह, उर्फ बाबू सिंह

(2) मृणाल

(3) मंजु मुखी देवी

(4) घासी राम

(5) राना रेवती रंजन प्रसाद सिंह

(6) पद नारायण सिंह

(7) नरेन्द्र

(8) एम0 पी0 श्री राय

(9) बुझावन राय

(10) माधवी

(11) गोपी बल्लभ ठाकुर

(12) मृदुला

हीरक जयन्ती की जनचेतनता :

नागार्जुन ने इस लघु उपन्यास के माध्यम से राजनैतिक स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार पाखण्ड और घूसखोरी का यर्थाथ दर्शन कराते हैं किस प्रकार देश के नेता देश सेवा के नाम पर स्वार्थ पूर्ति करते हैं मात्र अपने हित के लिए ही कैसे-कैसे हीरक जयन्ती समारोह आयोजित किये जाते हैं इसी का यर्थाथ चित्रण ही मार्मिकता से

प्रस्तुत किया है वे चुटीले हास्य और तेज व्यंग्य वाणों से राजनीति में व्याप्त भ्रष्ट परिवेश को प्रस्तुत करते हैं। इस उपन्यास में जितने भी पात्र हैं सभी अनैतिक अनाचारी और भ्रष्टाचारी हैं, देश भक्ति के नाम पर ही अपने स्वार्थ हित साधना करते है। उनका महाकाव्य अवसर वादी राजनीति है। वे सदैव अपने ही लाभ में डूबे रहने वाले व्यक्ति है। इसी से इनके मन और मस्तिष्क में मानसिक असंतोष गरीबी हटाओ के नाम पर ही सदैव गरीबों के खून चूसने की योजना बनाते रहते हैं इनका वास्तविक आत्म चिंतन वासना की पुर्ति ही है इस सम्बन्ध में डा0 घनश्याम मधुप का कथन दृष्टव्य है---

'नये समाज के इस नये उभरते वर्ग यर्थाथ चित्रण करने में लेखक को काफी सफलता मिली है। लेखक ने इस यर्थाथ को अपने चुटीले व्यंग्य वाणों और चुटीले हास्य से मर्मस्पर्शी तथा रोचक बना दिया है।'[23]

इमरालियाँ अथवा जमनियों का कथानक :

बाबा नागार्जुन द्वारा लिखित इमरालियाँ अथवा जमनियाँ नामक लघु उपन्यास में देश के मठों में धार्मिक पाखण्ड और आडम्बर को चित्रित करता है, इसके साथ ही साथ भारतीय साधु भी कैसे इन प्रपंचों के जाल में फंसते हैं लेखक इसी को स्पष्ट पात्रों के माध्यम से करवाना चाहता है। इस उपन्यास की नायिका इमरालियाँ हैं। वह अपनी गलतियों से साधु संतों अपराधियों और ठगों के जाल में फँस गई है। उसमें अपराधियों के मध्य रहकर ही अपराधिक दुर्गुणों का समावेश हो गया है, लेकिन वह अपने को सुधारना चाहती है अपराध वृति के कारण ही वह जेल काटना चाहती है। वह स्वभाव से विनोद प्रिय है पुरूषों के प्रति उसके मन में विचित्र सा आकर्षण है, उसके किया कलापों और स्वभाव को देखकर प्रतीत होता है कि उसका यौवन प्यासा रह गया है महाराज के मुख को बार-बार ध्यान से देखना तथा महाराज की खुली जांघ को देखकर न भुलापाना उसकी इसी प्रवृति का परिचायक है। मन में अतृप्त यौन ग्रन्थि के कारण मस्तराम के प्रति आकर्षित होती हैं लक्ष्मी के एक बच्चे की बलि दी जाने की घटना को

सुनकर वह अत्यधिक दुखी होती है। वह साहसी संवेदनशील भावना प्रधान कोमल हृदया और नायिका है। कथानक का दूसरा महत्वूर्ण पात्र बाबा मस्तराम वास्तव में मस्तराम ही है। चरस और गॉजे के नशे के कारण वह किसी योग्य नहीं है। वह परिवर्तन शील स्वभाव के कारण वह बाबा के विरूद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त घटनाओं के प्रमुख केन्द्र में एक बाबा के दर्शन होते हैं जो झाड़-फूँक के माध्यम से आम जनता पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है। वह वास्तव में एक मुसलमान है जो एक लड़की के प्रेम के कारण नेपाल पहुँचता है। वहीं से बाद में साधु बनकर जमनियाँ मठ का बाबा बन जाता है। वह पाखण्डी और प्रपंची है वह स्त्रियों को बेंत लगवाकर आर्शिवाद देता है। उसका यह वास्तव में व्यभिचार, जघन्य कुकृत्य और देशद्रोह के कारनामों का अड्डा है, अपराधिक वृति के कारण पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया जाता है।

इमरालियाँ अथवा जमनियाँ के प्रमुख पात्र--

(1) इमरालियाँ

(2) बाबा

(3) मस्तराम

(4) बगौती

(5) वकील

जमनियां का बाबाः

नागार्जुन के कथा साहित्य में धर्म के प्रतीक मन्दिरों, मठों एव्म तीर्थ स्थानों का जो चित्रांकन हुआ है उसे देखकर लगता है कि ये तथा कथित धर्म केन्द्र मात्र अनैतिक और भ्रष्टाचार के प्रच्छन्न अड्डे हैं। साथ ही देश की धर्म प्रबल, भोली-भाली जनता को लूटने और शोषण करने के अनवरत माध्यम भी।

जमनियां मठ पाखण्डी साधु एव्म महंतो का अड्डा बना हुआ है। यहां भांग और बादाम की आड़ में शराब के दौर चलते हैं। गांजा, अफीम तथा मर्फिया बिहार, नेपाल,

तराई की सीमा में स्थित इस मठ के विशेष आकर्षण है। इस मठ में रहने वाली बाबा की चेलियों का कार्य पैसे वालों और प्रभावशाली लोगों को अपने चुंगल में फंसाकर उनको दुहना है। गौरी के विषय में यह कथन–'काशी, मथुरा, प्रयाग, हरिद्वार घूमती रहती थी। लौटने का अक्सर गौरी अपने साथ किसी–न–किसी मालदार आदमी को बाबा तक ले आती।'[24]

जमनियां में मठ स्थापित करने की पृष्ठ–भूमि पर प्रकाश डालते हुए बाबा ने बताया कि यह 'पिछड़ी और नीच जातियों का क्षेत्र है, जिसमें समस्त सुविधांए है। अनपढ़ लोग साधुओं के लिए अच्छे भक्त सिद्ध होते हैं। नेपाल निकट होने के कारण भागने की सुविधा भी है। पुलिस स्टेशन दूर है। बीहड़ रास्ता है, स्कूल कालेज नहीं। कोई नेता भी यहां नहीं पहुंचता।'[25]

काशी हिन्दुओं का सबसे बड़ा तीर्थ स्थान माना जाता है। यह एक बहुत ही विलक्षण और बड़ा ही विचित्र स्थान है। ऐसा लगता है कि मानो हिन्दुत्व और भारतीयता के सारे गुण और अवगुण विश्वनाथ की शरण में दुबके पड़े हैं । इस स्थान के बारे में यह उक्तिजन–प्रचलित है– 'राँड, साँड, सीढ़ी, सन्यासी, इनसे बचे तो सेवे काशी।'[26] स्पष्ट है कि धर्म के केन्द्र मन्दिरों मठों एव्म तीर्थ स्थानों का सांस्कृतिक रस निचुड़ गया है। अब धर्म के ये सभी केन्द्र भ्रष्टाचार एव्म अनैतिकता के अड्डे बन गये हैं।

पारो :

नागार्जुन का उद्देश्य मिथिला में प्रचलित विवाह की गलत परम्पराओं की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करना है। मिथिला में पंजी–प्रथा प्रचलित है। वहां पर हर जन्म लिये हर बालक का नाम वंश गोत्र आदि पंजीकार लोग अपनी पोथियों में लिख लेते हैं। विवाह के लिए वहा 'सौराठ' का मेला लगता है जिसमें विवाहेच्छुक वर इकट्ठे होते हैं। कन्याओं के अभिभावक वहां आते हैं और वर का चयन करते हैं। विवाह के कुछ मध्यस्थ भी होते हैं, जो 'घटक' कहलाते हैं। ये 'घटक' और पंजीकार जमकर भ्रष्टाचार करते

हैं। उनके लिए रूपये लेकर अधिक उम्र के दूल्हे से कम उम्र की कच्ची कली से उसका विवाह करवा देना और लड़की का जीवन बरबाद कर देना मामूली सा खेल है। इसी भ्रष्टाचार की शिकार प्रस्तुत उपन्यास की नायिका पारो हैं। यह चुल्हाई चौधरी नाम के एक वृद्ध ठूँठ से बंधकर आजीवन घुटती रहती है। और अन्त में मृत्यु में ही इस कष्ट का हल पाती है। इस विवाह में 'लूच झा' घटक का कार्य करते हैं। और पार्वती की मां को पैंतालिस वर्षीय चुल्हाई चौधरी के ऐश्वर्य की प्रशंसा करके उसके विवाह के लिए तैयार कर लेते हैं। इस प्रकार पन्द्रह वर्ष की कोमालांगी पैंतालिस वर्षीय वर से व्याह दी जाती हैं, इस विवाह को कियान्वित कराने में लूच झा को दो मन चावल कुछ रूपये और वस्त्र. आदि मिलते हैं । पार्वती प्रपंच छल और आडंबर से युक्त सीधी साधी जिन्दगी की तलाश करती हुई टूटती– बिखरती नजर आती है। जब उसके ममेरे भाई बिरजू की बहिन का जो अभी अविवाहित है का जिक्र आता है तो वह बिरजू से कहती है– ' झझंट लगे तो जहर ही खिला दीजिये।'[27] और आगे चलकर वह कहती है– 'हे भगवान! लाख दंड दे मगर फिर औरत बनाकर इस देश में जन्म नहीं दे।'[28]

इस उपन्यास के हर वाक्य में पार्वती के दाम्पत्य जीवन का असन्तोष व्यक्त होता है। इस अनमेल विवाह की अत्यन्त कारूणिक कथा 'पारो' में समायी हुयी है जिसे उपन्यासकार नागार्जुन ने बहुत ही मार्मिक शब्दों में चित्रित किया है।

उपन्यासकार नागार्जुन के समाज के दर्दीले चित्रों को अपने उपन्यासों में जीवन्त किया है। नारी सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का जहां उल्लेख किया है वहीं उनके सामाधान के लिए भी मार्ग सुझाया है। सामाज के विविध आयामों का चित्रण भी उन्होने बड़े कौशल से किया है। इसलिए वे सफल उपन्यासकार सिद्ध हुए हैं। क्योंकि उन्होनें गांव की हर समस्या को अपने आँखों से देखा है और सहज भाषा के उन सभी समस्याओं को प्रस्तुत किया है। और उन समस्याओं से भारत के गांव आज तक छुटकारा नही पा सके।

गरीबदास :

एक गरीब हरिजन मजदूर लक्षमन दास ने हरिजन बस्ती में एक स्कूल खोला। बाबा गरीबदास उसे चलाने के लिए अपनी छोटी सी आय से हर महीने तीस रूपये देते रहे। इस तरह शुरू हुआ यह स्कूल कैसे आस-पास के क्षेत्र की सम्पूर्ण गतिविधियों का केन्द्र बनता गया। यही बताने के बहाने स्वनाम धन्य अंग्रेज कथाकार नागार्जुन ने एक लम्बी चुप्पी के बाद फिर से कलम हाथों में लेकर जतलाना चाहा है कि हम कैसे समाज का स्वप्न देखा करते रहें हैं। कि आज भी कैसा समाज चाहता है, एक रचनाकार। कि आज हमारा जो हाल हवाल है उसमें यदि हम चाहे तो एक ऐसे समाज का निर्माण कर सकते हैं जो हमारे विगत सपनों का प्रतिरूप भी होगा और भावी पीढ़ी के लिए हमारी पीढ़ी से हासिल एक उपलब्धि भी कहला सकेगा।

रचनाकार निराश नहीं होता। रचनाकार विषम परिस्थितियों में से भी एक सम रास्ता खोज निकालने का न केवल प्रयास करता अपितु एक निष्कंटक राह खोजकर समाज के सामने ला उपस्थित करता है। यही ठीक, यही किया है अस्सी वर्षीय रचनाकार नागार्जुन ने इतनी ही वय के गरीबदास की कथा-व्यथा के सपनों सरोकारों के बहाने इस औपन्यासिक कृति की रचना करके दु:खमोचन के रचनाकार का एक और यादगार पात्र- जिसका नाम है इस बार - गरीबदास।

1. डा0 आर्दश सक्सेना– हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, शिल्प विधि

2. डा0 प्रकाश चन्द्र भट्ट : नागाजुर्न जीवन और साहित्य, पृ.– 168

3. डा0 सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास, पृ.– 510

4. डा0 चन्डी प्रसाद जोशी, हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय विवेचन, पृ.– 366

5. डा0 सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास, पृ.– 302

6. डा0 घनश्याम मधुप, हिन्दी उपन्यास, पृ.– 151

7. डा0 अतुल वीर अरोड़ा आधुनिकता के सन्दर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास पृ.–116

8. डा0 सुषमा धवन : हिन्दी उपन्यास पृ.– 106

9. डा0 रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ.–195

10. डा0 राम खिलावन पाण्डे : आलोचना अंकन का उपन्यास विशेषांक, पृ.– 148

11. डा0 बेचन, आधुनिक उपन्यास उदभव और विकास, पृ.–208

12. डा0 बच्चन : आधुनिक हिन्दी उपन्यास और सिद्धान्त, पृ.–203

13. डा0 रामदरश मिश्र : हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ.–145

14. डा0 सरोजनी त्रिपाठी : आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास, पृ.–225

15. डा0 कुवंर पाल सिंह, हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना, पृ.– 165

16. डा0 सरोजनी त्रिपाठी आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास पृ.– 227

17. नागार्जुन ------कुम्भीपाक, पृ.– 105

18. डा0 सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास

19. हिन्दी के मार्क्सवादी उपन्यासों की नायिकायें डा0 एच. जी. सांलुखे

20. वही

21. नागार्जुन -- उग्रतारा, पृ.– 39

22. डा0 सुरेश सिन्हा हिन्दी उपन्यास उद्भव और विकास पृ.– 516

23. डा0 घनश्याम मधुप– हिन्दी लघु उपन्यास पृ.– 159

24. नागार्जुन इमरतियां– पृ.– 28

25. नागार्जुन इमरतियां– पृ.– 65

26. वही पृ.– 113

27. नागार्जुन, पारो, पृ.– 50

28. वही, पृ.– 82

अध्याय–4

नागार्जुन के उपन्यासों में लोक जीवन

नागार्जुन के उपन्यासों में मानवीय संवेदना, आस्थावादी स्वर एवम् यथार्थ जन चेतना :

कोई भी साहसिक कृति जिस देश काल–खण्ड व समाज में जन्म लेती है, उस देश काल तथा समाज का प्रभाव उस कृति पर पड़ना अनिवार्य है। उस काल की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवम् दार्शनिक विचारधाराओं के बीच से ही साहित्यकार की चेतना के निवास का स्फुरण होता है। साहित्यकार के निजी दृष्टिकोण को उस युग की परिस्थितियां और बदलती हुई सामाजिक चेतना बहुत दूर तक प्रभावित करती है। अतीत साहित्यकार को अनुभव प्रदान करता है। भविष्य उसमें आशा का संचार करता है, परन्तु युग साहित्यकार का निर्माण करता है। साहित्यकार युग चेतना से प्रभावित रहता है। नागार्जुन पर भी उस काल की सम्पूर्ण चेतना प्रबल रूप से हावी रही है।

नागार्जुन स्वयं लिखते हैं 'इस बात में अधिक विवाद की गुंजाइश नहीं है कि जिस विशिष्ट राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिवेश में साहित्यकार की चेतना का प्रस्फुटन होता है उससे प्रभावित हुये बिना वह नहीं रह सकता।'[1]

सहित्य के अन्तर्गत जीवन और उसके परिवेश को अभिव्यक्त करने वाली, सबसे सशक्त विधा उपन्यास है। इसी कारण उपन्यास साहित्य युग में युग की सम्पूर्ण परिस्थितियां और समस्यायें समाहित हो जाती हैं सुप्रसिद्ध आलोचक राल्फफॉक्स ने कहा है कि युग की परिस्थितयों की उपेक्षा साहित्यकार नहीं कर सकता। उनका कहना है– 'क्या उपन्यासकार दुनियां की समस्याओं की जिनमें वह रहता है उपेक्षा कर सकता है? क्या वह अपने चारों और भयानक वातावरण देखकर अपना मुंह बन्द रख सकता है?[2]

इसी प्रकार के विचार उपन्यासकार प्रेमचन्द्र ने भी व्यक्त किये हैं–'साहित्यकार बहुधा अपने देश–काल की परिस्थितियाँ से प्रभावित रहता है, जब उसे कोई लहर देश में उठती है तो साहित्यकार के लिये उससे अविचलित रहना असम्भव हो जाता है और

उसकी आत्मा अपने देश बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और उस तीव्र विकलता में भी वह रो उठता है पर उसके रूदन में भी कातरता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।'[3]

इस प्रकार उपन्यास के सन्दर्भ में व्यक्त उक्त दोनों मत सामयिक जीवन एवम् उपन्यास के अविच्छिन सम्बन्धों का ही समर्थन करते हैं।

नागार्जुन ने हिन्दी साहित्य में स्फुट रूप से सन् 1930–35 ई0 में लिखना प्रारम्भ किया। उनकी सर्वप्रथम कविता सन् 1935 ई0 में प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'विश्व बन्धु' (लाहौर) में 'राम के प्रति' शीर्षक से छपी थी।[4] लगभग इसी समय उनकी मैथिली एवम् संस्कृत भाषा में भी कुछ रचनायें प्रकाशित हुई। उनके साहित्य जगत में प्रविष्ट होने के समय भारत का इतिहास नव जागरण के प्रबल आह्वान का इतिहास है। भारत इस समय तक अंग्रेजों के शिकंजे में जकड़ा हुआ था। गांधी के नेतृत्व में इस शासन से मुक्ति पाने के लिये अहिंसक आंदोलन प्रारम्भ हो चुका था। उपन्यासकार नागार्जुन के लिये 1935 से 1947 तक की कालावधि, वह समय है जब उन्होंने बिहार जनपद के ग्रामीण अंचल का न केवल बहुत निकट से दर्शन ही किया, वरन् वहां के जन जीवन के हर्ष विषादों, आशा–आकांक्षाओं और संघर्ष पूर्ण स्थितियों से निकट का तादात्म्य भी स्थापित किया। उनके दु:ख दर्द को जितना उन्होंने देखा और समझा है, उतना विरले ही रचनाकार समझ पाये हैं कारण, उन्होंने उस अंचल के जीवन को स्वयं भोगा है।

सामाजिक एवम् धार्मिक परिस्थितियां :

प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना व्यापक, सामाजिक प्रतिक्रिया को जन्म देती है। चूँकि नागार्जुन के उपन्यासों का काल–खण्ड अंग्रेजों के भारत में आगमन से लेकर स्वतंन्त्रता प्राप्ति के बाद (सन् 1968) तक फैला हुआ है।अत: सामाजिक दृष्टि से भी यह काल भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रीय

एवम् अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर यह काल भारी उथल–पुथल का है। यथा–द्वितीय युद्ध भारत का स्वतंत्रता आन्दोलन और भारत की स्वतंत्रता क्रान्ति भारत–पाक बंटवारा इस काल की कतिपय प्रमुख उल्लेखनीय घटनायें हैं। नागार्जुन साहित्य के सामाजिक एवम् धार्मिक सन्दर्भों को स्पष्ट करने के लिये उनके युग की सामाजिक एवम् धार्मिक परिस्थितियों को जानना भी प्रसंगापेक्षी है।

प्राचीन भारत में गांव के लोग आर्थिक अभावों में रहने के कारण सामाजिक दृष्टि से आवश्यक व वांछित विकास नहीं कर सके। इस काल का भारतीय समाज ग्राम–पंचायतों, जाति–व्यवस्था और संयुक्त परिवारों द्वारा नियंत्रित होता था तथा रूढ़ियों रीति–रिवाजों एवम् सामाजिक कुरीतियों से ग्रस्त था। यह समाज अपने को युगानुरूप परिवर्तित न कर सका और अनेक विकृतियों और विसंगतियों ने इसे अविकसित ही बना रहने दिया।

लोग वर्णात्मक–धर्म में आस्था रखते थे और समाज में छुआछूत पूरे जोरों पर थी। खान–पान तथा विवाह के नियम इतने कठिन थे कि एक जाति दूसरी जाति के निकट नहीं आ सकती थी।

सामाजिक दृष्टि से नारी की स्थिति अभी अच्छी नहीं थी। उसकी स्थिति सहज मानवीय न होकर वह केवल उपभोग की वस्तु बन गयी थी। उसका जीवन पिता, पति तथा पुत्र के संरक्षण में पलता था। वह स्वतन्त्रता की अधिकारिणी न थी, उसके विधवा होने पर पति के साथ चिता पर भस्म होना एवम् सती प्रथा के समारोह में भाग लेना समाज गौरव की बात समझता था।

उन्नीसवीं शताबदी में ईसाई मिशनरियों द्वारा किये गये प्रचार ने नये विचारों और सामाजिक सेवा के भावों को जन्म दिया। भारत का शिक्षित वर्ग इस नये सामाजिक विचार दर्शन से प्रभावित हुआ एवम् परम्परागत रूढ़िवादी विचारों से मुक्ति पाने का प्रयास करने लगा। भारत में अंग्रेजों की राजनीतिक सत्ता स्थापित होने पर यहां के सामाजिक जीवन में उनके सम्पर्क का प्रभाव नये सामाजिक दृष्टिकोण को विकसित करने

में सहायक हुआ। अंग्रेजों ने अपने शासन को सुदृढ़ बनाने के लिये यातायात तथा संचार–साधनों का विकास और शिक्षा का प्रसार किया। भारतीय समाज अब दो स्पष्ट वर्गों में विभक्त हो गया था। पहला वर्ग, वर्ग व्यवस्थ, जाति व्यवस्था और सामाजिक परम्पराओं के प्रति न केवल आस्थावान था वरन् उन्हें अनिवार्य भी मानता था। दूसरा वर्ग पैदा तो भारत में हुआ था लेकिन स्वयं को व्यक्तित्व में अंग्रेजों जैसा अनुभव करता था। इस समय एक तीसरा सुधारवादी वर्ग भी उठ खड़ा हुआ जिसका प्रतिनिधित्व राजा राम मोहन राय, स्वामी विवेकानन्द, महादेव गोविन्द रानाडे, स्वामी दयानन्द तथा महात्मा गांधी कर रहे थे। इस युग में प्रधान सामाजिक संस्थाओं में ब्रह्म–समाज, आर्य–समाज, प्रार्थना–समाज, रामकृष्ण मिशन तथा थियोसॉफिकल सोसायटी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये सभी संस्थायें सामाजिक जीवन से कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों, रूढिवादी मान्यताओं को हटाने तथा स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने का प्रयत्न कर रही थी। इन सुधार मूलक प्रयत्नों से समाज के सम्बन्ध में भारतवासियों के परंपरागत दृष्टिकोण में बदलाव आया। समाज का एक वर्ग पुरानी सामाजिक मान्यताओं में विश्वास रखता था। इस वर्ग को कोई भी सामाजिक परिवर्तन ग्राह्य नहीं था। दूसरी विचारधारा से अनुपालित वर्ग युगीन राजनीतिक, सामाजिक आन्दोलनों से प्रभावित होकर समाज के प्रति गतिशील दृष्टिकोण अपनाने का पक्षधर था।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गांधी जी देश के राजनीतिक क्षितिज पर उभरे और सन् 1919 से स्वतंत्रता प्राप्ति तक उन्होंने कांग्रेस का मार्गदर्शन किया। गांधी जी के नेतृत्व में देश के सामाजिक जीवन में नया मोड़ आया और भारत का स्वतंत्रता आन्दोलन कुछ उच्च क्षितिजों तक सीमित न रहकर जन आंदोलन का स्वरूप ग्रहण करता चला गया गांधी जी यदि एक ओर राजनीतिक स्तर पर संघर्षरत थे तो दूसरी ओर समाज के उत्थान के लिये रचनात्मक कार्य भी कर रहे थे। तत्कालीन भारतीय समाज बाल–विवाह, अनमेल–विवाह, पर्दा–प्रथा, विधवा–विवाह आदि अनेक सामाजिक

समस्याओं से ग्रस्त था। गांधी जी ने अछूतोद्धार, ग्राम–संगठन, पीड़ितों की सेवा, स्त्री–शिक्षा, किसान–मजदूर आदि के उन्नयन कार्य को अपना लक्ष्य बनाया।

औद्योगिक प्रगति के बढ़ते चरणों ने युग की मान्यताओं में परिवर्तन कर दिया और व्यक्ति गांव से परिवार छोड़कर शहर की ओर आजीविका की तलाश में जाने लगा। पाश्चात्य तथा वैज्ञानिक शिक्षा–जन्य व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के कारण नवयुवक संयुक्त परिवार से उदासीन रहने लगे और इस प्रकार एकल परिवारों का प्रचलन हुआ। वैज्ञानिक चिंतन और आर्थिक स्वार्थों ने धीरे–धीरे समाज में विद्यमान आधार भूत वर्ण–व्यवस्था और आश्रम–व्यवस्था को आघात पहुंचाया। संयुक्त परिवार के विघटन का सबसे अधिक प्रभाव नारी–जीवन पर पड़ा। संयुक्त परिवार में नारी अबला और अधिकार हीन होते हुये भी जीवन–निर्वाह कर लेती थी। किन्तु अब उसे जीने के लिये आर्थिक संघर्ष के लिये तैयार होना पड़ा। नारी शिक्षा समय की मांग बन गयी और विधवा विवाह का भी प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार देश की स्वतंत्रता से पूर्व तीव्रता से बदलते हुये सामाजिक ढांचे ने सभी क्षेत्रों में नारी की भूमिका में आमूल परिवर्तन कर दिया। वह अब जीवन के क्षेत्र में पुरुष के अधिक निकट आयी। पुरुष के साथ सतत् बढ़ते हुये नारी–संपर्क ने सामाजिक स्तर पर स्वच्छन्द प्रेमी जैसी समस्याओं को जन्म दिया। स्वतंत्रता के बाद विस्थापित लोगों की समस्या और विस्थापित नारी–पुरुष के संबंधों को नयी स्थितियों ने सामाजिक स्तर काफी जटिल कर दिया। इस बदलते सामाजिक परिवेश में प्रेम तथा विवाह के क्षेत्र में स्वातंत्र्य, विवाहोपरान्त स्वतंत्रता और यौन सम्बन्धी नैतिकता को नये मापदंडों से मापा जाने लगा। सामाजिक स्तर पर स्त्री पुरुष दोनों ही प्रचालित वैवाहिक मर्यादाओं का विरोध करने लगे। नारी को पति–वरण की स्वतंत्रता मिल गयी यदि वह चाहे, तो पति को तलाक भी दे सकती थी।

इस बदलते सामाजिक परिवेश ने जागरूक उपन्यासकार नागार्जुन को प्रभावित किया। प्रत्येक सामाजिक घटना की प्रतिक्रिया की गूंज उनके उपन्यासों में व्याप्त है। नागार्जुन अपने 'इमरतियां' उपन्यास में हरिजन वर्ग के साथ पूर्ण सहानुभूति व्यक्त की

है। उनकी दृष्टि से सब समान है। इस उपन्यास का मस्तराम उपन्यासकार के ऐसे ही विचारों की अभिव्यक्ति देता हुआ कहता है– 'इसी तरह मेहतर की सफाई का काम कर चुकने के बाद नहा–धो ले, कपड़े बदल ले, फिर हमारे साथ बैठकर पूजा–पाठ में क्यों नहीं शामिल होगा? आत्मा तो एक ही है, शरीर का चोला अलग–अलग हो सकता है।[5]

'दु:खमोचन' की माया और कपिल का अंतर्जातीय विवाह कराकर उपन्यासकार ने उन्हें सामाजिक स्तर पर प्रतिष्ठा प्रदान की है। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में गौरी का यह कथन, 'जिस समाज में हजारों की तादाद में विधवाएं रहेगीं वहां यही सब तो होगा।'[6]

उपन्यासकार की विधवा–विवाह के प्रति आस्था का सूचक है। 'नई पौध', 'पारो' उपन्यासों में अनमेल–विवाह की समस्या को उठाया गया है। 'नई पौध' उपन्यास के नवयुवक बूढ़े दूल्हा चतुरा चौधरी को बारात सहित वापस भगा देते हैं और बिसेसरी के साथ उसके अनमेल विवाह को रोक देते हैं। इस उपन्यास में नई चेतना सड़ी–गली सामाजिक परंपराओं पर विजय प्राप्त करती है। इस उपन्यास में नारी विक्रम का यथार्थ चित्रण कर उपन्यासकार ने नारी–विक्रय का भी विरोध किया है। नागार्जुन के उपन्यासों का युवा वर्ग अन्याय के विरोध में लड़ रहा है। 'पारो' उपन्यास की पार्वती उपन्यासकार के विचारों को व्यक्त करती है। उसके व्यंग्य वाणों ने वहां के ब्राह्मण समाज को क्षुब्ध कर दिया है और समाज में एक क्रान्ति ला दी है। वह अपने ममेरे भाई बिरजू से कहती है–'हे भगवान! लाख दंड दे मगर फिर औरत बनाकर इस देश में जन्म नहीं दें।'[7] अब बिरजू की अविवाहिता बहन अर्पणा का जिक्र आता है, तो वह कहती है 'उमर थोड़ी अधिक हो जायेगी तो क्या हो जायेगा, झंझट लगे तो जहर ही खिला दीजियेगा।'[8] 'रतिनाथ की चाची' में भी कथाकार ने गोरी से भी ऐसे ही शब्द कहलवाये हैं–'हे भगवान, अगले जन्म भले ही मैं चुहिया होऊँ, भले ही नेवला, मगर चेतनामय इस मानव समाज में फिर कभी न पैदा होऊँ।'[9]

'उग्रतारा' की उगनी शिक्षा के महत्व को स्वीकार करती हुई गीता से कहती है 'तीसरी आंख होती है विद्या, समझी।'[10] इस प्रकार नागार्जुन इस उपन्यास में नारी–शिक्षा की महत्ता को स्वीकार करते हैं और शिक्षा को ही वे समाज को आगे बढ़ाने का साधन मानते हैं।

उपन्यासकार नागार्जुन की इच्छा है कि नारी में आत्मविश्वास जाग्रत हो और वह स्वावलम्बी बने। नागार्जुन ने अपने इस उद्देश्य को 'कुंभी पाक' उपन्यास में राय साहब से पूरा कराया है–'बस, बस यही आत्म–विश्वास मैं स्त्रियों में देखना चाहता हूँ। श्रम, प्रजा, सहयोग, विवेक और सुरुचि भी आवश्यक है–चम्पा। पुरुषों की बपौती नहीं। स्त्रियों का भी साझा है उनमें।'[11]

नागार्जुन का प्रयास है कि जाति–पाँति का भेद–भाव समाज से सदैव के लिये मिट जाये। 'वरुण के बेटे' उपन्यास का मोहन मांझी कहता है–'मैथिली महासभा, राजपूत सभा, दुसाध महासभा आदि जो भी सांप्रदायिक संगठन हैं, सभी का बायकाट होना चाहिये। इन महासभाओं के नेता आम लोगों की एकता में दरार डालने का ही एकमात्र काम करते हैं।'[12]

'रतिनाथ की चाची' में रतिनाथ तथा वागों का 'वरुण के बेटे' में मधुरी और मंगल का विवाह पूर्व प्रेम, प्रेम की प्रचालित सामाजिक मान्यताओं का विरोध करता है। 'उग्रतारा' की उगनी गांव की बाल–विधवा रामेश्वर के प्रेम में गांव छोड़कर भाग जाती है। इस उपन्यास के स्त्री और पुरुष पात्र समाज प्रचलित मर्यादाओं और परंम्पराओं का विरोध करते हैं। 'वरूण के बेटे' उपन्यास की मधुरी अपने पति को छोड़कर घर आ जाती है। उसका अपने पति को तलाक देना, दूसरा विवाह करने अथवा एकांकी रहने का विचार व्यक्त करना विवाह की परम्परागत सामाजिक मान्यताओं में अनास्था प्रकट करता है और नवीन विचारों में उसका विश्वास नागार्जुन के उपन्यासों की नारी के बदलते हुये दृष्टिकोण का परिचायक है।

भारत सदैव धर्मप्राण देश रहा है। यहां समाज का आधार धर्म ही है। धर्म का वास्तविक अर्थ कर्तव्य, सत्यार्थ या गुण से होता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'धर्म' शब्द 'घृ' धातु और मन्' प्रत्यय से बना है, जिसका अर्थ है– धारणा करना।[13] किसी वस्तु या व्यक्ति की यह वृत्ति जो उसमें सदा रहे और उससे कभी पृथक न हो, धर्म कहलाती है। जब हम सामाजिक कार्यों पर धर्म के प्रभाव के सन्दर्भ में धर्म पर विचार करते हैं तो धर्म और नैतिकता में कोई विशेष अन्तर नहीं रह जाता है। नैतिकता भी अपने उच्चतम रूप में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् का ही अनुशीलन है।

'रिलिजन' और 'धर्म' को प्रायः समनार्थक रूप में लिया जाता है, पर वास्तव में दोनों में महान अन्तर है। भारत में 'धारणात् धर्ममातुः' अर्थात् धारण करने के कारण ही किसी वस्तु को 'धर्म' कहा जाता है। सच बात तो यह है कि पश्चिम का रिलीजन भारत के संप्रदाय या पंथ शब्द का पर्यायवाची शब्द है। 'धर्म, शब्द का किसी अन्य भाषा में अनुवाद करना नितान्त कठिन है, क्योंकि 'धर्म' जैसा गूढ़ शब्द संसार की किसी अन्य भाषा में प्राप्त नहीं होता। 'रिलीजन' का शाब्दिक अर्थ 'पवित्रता' से है तथा धर्म से हमारा तात्पर्य अपने कर्तव्यों का ज्ञान है, बोसांके ने धर्म को किसी सर्वोच्च सत्ता के प्रति भक्ति के रूप में परिभाषित किया है। 'जहां हमें धर्म परायणता, अनुरक्ति और भक्ति मिलती है, वहीं धर्म का प्राथमिक रूप प्राप्त हो जाता है।'[14]

धर्म के दो पहलू होते हैं–सार्वभौमिक पहलू और सामाजिक पहलू। धर्म के सार्वभौमिक पहलू का अर्थ है कि धर्म के नैतिक कर्तव्यों का क्षेत्र केवल किसी विशेष समूह जाति या प्रान्त देश या काल तक सीमित नहीं है। धर्म सम्पूर्ण विश्व के प्रति कर्तव्य–पालन का आह्वान करता है। जहां तक धर्म के सामाजिक पहलू का सम्बन्ध है वह व्यक्ति के सामाजिक जीवन के नियमों तथा कर्तव्यों की ओर संकेत करता है। इसमें वर्ण–धर्म, आश्रम धर्म, कुल धर्म, कालगत एवम् देशगत धर्म, राजधर्म, स्वधर्म इत्यादि धर्मों का समावेश पाया जाता है।

कालातर में धर्म में विकृति आ गयी। ईश्वर की कल्पना अनेक रूपों में की जाने लगी और प्रत्येक जाति अपने-अपने ढंग से अपने इस्ट देव की अनुयायी बन गयी। पुरोहित एवम् ब्राह्मण वर्ग मे जन साधारण के इस अंधविश्वास का लाभ उठाया तथा सामाजिक मान्यताओं, विचारों और धार्मिक विषयों का नियन्त्रण किया। उचित धार्मिक चिन्तन न होने के कारण अंधविश्वास तथा कुरीतियों का पालन ही समाज का मुख्य धर्म बन गया था। नागार्जुन ने ग्रामीण जीवन में धर्म के दोनों स्वरूपों का चित्रण किया है। पुरानी पीढ़ी धर्म की परंपराओं की समर्थक है जबकि नयी पीढ़ी धर्म की कुरूतियों को जड़ से उखाड़ने के लिये कटिबद्ध है।

जिस समय नागार्जुन लेखन कार्य में प्रवृत्त हुये, उस काल में वैज्ञानिक प्रभाव के कारण लोगों का कर्म के प्रति दृष्टिकोण बदलता जा रहा था। लेकिन अब भी स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि करने वाली शक्तियां-महन्त, पन्डे, पुजारी पादरी-मुल्ला-मौलवी आदि भाष्यवाद का प्रचार कर सामान्य लोगों को गुमराह कर शोषण कर रहे थे। ये लोग पूंजीवादी शक्तियों के प्रति निष्ठावान थे और प्राचीन शस्त्रों की व्याख्या उन्हीं की सत्ता को मजबूत करने के पक्ष में कर रहे थे, लेकिन परम्परा का भूत अब भी उनके सिर पर सवार था।

नागार्जुन जैसे चेतना सम्पन्न साहित्यकार पर इन सबका प्रभाव पड़ा और उनकी लेखनी आडंबरो, रीति-रिवाजों, सनातन परंपराओ, रूढ़ियों, जात-पात तथा धार्मिक अंधविश्वासों के विरुद्ध जमकर प्रहार करने लगी जिसकी सशकत अभिव्यक्ति उनकी औपन्यासिक कृतियों में उपलब्ध है। 'दु:खमोचन' उपन्यास में टेकनाथ का बैल दुर्घटना में जल जाने पर दु:खमोचन उसे प्रायश्चित के चक्कर में फंसने से बचाता है। दु:खमोचन के इस व्यवहार को देखकर नित्या बाबू कहते हैं-जात-पांत और धर्म-कर्म पर संकट ही संकट बढ़ता चला जा रहा है। कल के छोकरे, हम बूढ़ों की नाक में कोड़ी बांध रहे हैं।"[15]

'बलचनमा' उपन्यास का बालचन्द्र राउत भाग्य और ईश्वर को अन्तिम सत्य मानने को तैयार नहीं है। 'पारो' उपन्यास की पार्वती उर्फ पारो का पति चुल्हाई चौधरी आधी रात के समय उसके साथ राक्षस जैसी हरकतें करता है, तो वह बेहोश होकर आंगन में गिरी हुई अपने ममेरे भाई विरजू को दिखायी देती है। तब चुल्हाई चौधरी गुलाब की कच्ची कली को मसलने वाले धृष्ठ बारहसिंगे के समान विरजू के ध्यान में आता है और विश्वास ईश्वर और सृष्टि पर से उठ जाता है। उपन्यासकार ने धार्मिक अंधविश्वासों एवम् साधुओं के पांखंडों का घोर विरोध किया है। उसका मानना है कि अबोध जनता धार्मिक अंधविश्वासों में फंसकर अपना अहित कर रही है। उनके 'रतिनाथ की चाची', 'बाबा वटेसर नाथ' और 'इमरतिया' में इस तथ्य का यथार्थ चित्रण मिलता है। ब्राह्मणों का धर्म भी दिखावा मात्र है और स्वार्थ सिद्धि का माध्यम है। यह सामाजिक विषमता और विकृतियों का पोषण करता है। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में रतिनाथ अपने मजदूर कुल्ली राउत के साथ जाते समय मार्ग में पड़े तालाब के किनारे बैठ जल्दी–जल्दी संध्या करता है। कुल्ली राउत यह सब देखकर रतिनाथ से कह उठता है–'तुम तो नील माधव के वंशधर हो तुम्हें इतनी जल्दी नहीं करनी चाहिये।'[16]

इसके उत्तर में रतिनाथ जो कुछ कहता है, वह उसकी आडंबर–प्रियता का द्योतक है। 'अरे यहां कौन देखता है? देखना चलकर तरकुलवा में घंटा भर नाक न दबाये रहा, तो जो कहो।[17] राउत ने मुस्करा कर कहा–''लो बाप के गुण सीख न गये।[18]

रतिनाथ की कुल्ली राउत की इस बात में सत्य के दर्शन होते हैं और वह विचार करने लगा है कि उच्च जाति के ब्राह्मण और निम्न जाति के राउत की विषयम आर्थिक स्थिति का कारण वस्तुतः धर्म और जाति के विधि–विधान ही है। इसी उपन्यास में साधु तारा का जयनाथ से यह कहना–'भगवती त्रिपुर सुन्दरी का पंचाक्षर मंत्र है, वह अवांछित गर्भ गिराने में अनुम है।[19] इस तथ्य का उदाहरण है कि धर्म किस सीमा तक पतन के गर्त में जा चुका है। महातीर्थ काशी की यथार्थ स्थिति के बारे में इतना ही कहना प्र्याप्त होगा कि 'रांड–सांड सीढ़ी, सन्यासी इनसे बचे सो सेवे काशी'[20] उपन्यासकार ने

'बाबा वटेसर नाथ' में धार्मिक अंधविश्वासों एवम् सामाजिक कुरीतियों का डटकर विरोध किया है।

उन्होंने मानव रूपी बाबा वटेसर नाथ से अपनी विचारधारा को व्यक्त कराया है–'मनुष्यो की बलि चाहने वाले यक्ष, गंधर्व, देव, देवियों और ब्रह्म अब बाहर नहीं रह गये। मोटी जिल्दों वाले पुराने पोथी की बारीक पंक्तियों के अन्दर आज वे नजरबन्द है।'[21]

नागार्जुन के 'इमरतिया' उपन्यास में भी साधुओं के पाखण्डों की पोल खोली गयी है एवम् धर्म की तुलना ऐसे पेड़ से की है जिस पर हजारों चमगादड़ लटके रहते हैं। इस उपन्यास में वर्णित 'जमनिया का मठ' जघन्य कृत्य एवम् व्यभिचार देश–द्रोह आदि कारनामों का अड्डा बना हुआ है। इस प्रकार के प्रचलित सामाजिक कुथाओं के कारण रूढ़िगत धर्म के पालन को समाज के लिये क्षय रोग के समान घातक मानते हैं। कट्टर पंडित समाज में वैमनस्य फैलाते हैं। पाखण्डी–साधु व ठग महात्मा अंध भक्तों को ठगते हैं समाज के ठेकेदार ब्राह्मण, पुरोहित वंचक महात्मा निर्धनों के श्रम की कमाई का शोषण करते हैं।

समाज को धर्म के ऐसे संक्रामक रोग से यदि बचाना है तो धार्मिक एवम् सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करना होगा।

उपन्यासकार नागार्जुन ने नवीन घटनाक्रम के परिणामस्वरूप जन्मी सामाजिक एवम् धार्मिक चेतना पर अपनी पैनी दृष्टि रखी है। उनकी प्रत्येक औपन्यासिक कृति इस नवीन चेतना का सशक्त वाहक बन गयी है। उनका मानना है कि समाज जब धार्मिक अंधविश्वासों एवम् सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति पा लेगा, तभी जन कल्याणवादी समाज का निर्माण संभव होगा।

आर्थिक परिस्थितियां :

किसी देश का सम्पूर्ण सामाजिक एवम राजनीतिक ढांचा वहां की आर्थिक व्यवस्था पर निर्भर करता है। यह आर्थिक स्थिति 'मनुष्य का भौतिक, सामाजिक परिवेश है और

इसकी मुख्य विशेषता यह है कि यह स्थिति मनुष्य की इच्छा, उसकी चेतना, उसकी अपेक्षाओं और आशाओं आदि के 'प्रेम वर्ग' सेवाहार अपनी स्वतंत्र सत्ता के लिये रहती है।'[22] नागार्जुन के आर्थिक सन्दर्भों को समझने के लिये उनकी युगीन भारतीय आर्थिक परिस्थितियों का विवेचन करना अनिवार्य है।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार गांव था। प्रत्येक गांव में दैनिक आवश्यकताओं की वस्तुओं का उत्पादन होता था और लोगों के बीच वस्तुओं का विनिमय ही मुख्यतः लेन-देन का रूप था। उस समय गांव में कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन भी होता था। यह उत्पादन ग्रामीणों के लिये न होकर नगरों में रहने वाले सामंतों, राजा महाराजाओं तथा धनी व्यक्तियों के लिये होता था और इन्हीं के संरक्षण में भारतीय कलात्मक उद्योग धन्धे जीवित थे। भारत में सूती, रेशमी वस्त्र, शाल दुशाले, सोने-चांदी, हाथी-दांत, लकड़ी और पत्थर की कलात्मक वस्तुओं का निर्यात यूरोप के देशों को होता था। यूरोप भारतीय व्यापार का बाजार था और वहां का बहुत सा सोना चांदी भारत जाता था। उस समय भारत संसार भर में 'सोने की चिड़िया' के नाम से जाना जाता था। उस समय छोटे से छोटे गांव में कृषि की संयुक्त प्रथा प्रचलित थी। धन्य का आपस में बंटवारा होता था। इसके साथ ही प्रत्येक परिवार में कातने-बुनने का काम भी होता था। भूमि गांव की सार्वजनिक सम्पत्ति मानी जाती थी और किसानों का उस पर कोई व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं था। इस प्रकार गांव आत्मनिर्भर होने के साथ आर्थिक इकाई भी थे।

विघटित होती हुई भारतीय अर्थव्यवस्था :-

ईस्ट इंडिया कम्पनी के भारत में आगमन का मूल उद्देश्य अपने व्यापारिक हितों की वृद्धि करना था। भारतीय नरेशों की अदूरदर्शिता पर स्वर कलह एवम् क्षुद्र स्वार्थों ने उन्हें राजनैतिक शक्ति के रूप में स्थापित होने का पूरा अवसर प्रदान किया। सन् 1883 के चार्टर एक्ट द्वारा यूरोपीय लोगों को भारत में बसने एवम् उन्हें भारत में नये उद्योगों में पूंजी लगाने का अधिकार प्राप्त हो गया। भारत में विदेशी पूंजी का आगमन

हुआ। सर्वप्रथम यूरोपीय लोगों ने अपनी पूंजी चाय, रबड़, काफी, नील इत्यादि के बागान में लगायी। इसके बाद उसका प्रसार कलकत्ता की जूट मिलों एवम् खान उद्योगों तक हो गया। भारतीय राजाओं के लिए ब्रिटिश सरकार ने कुछ ऐसे नियम और नीतियां निर्धारित किये जिनसे देशी रियासतों और अंग्रेजों के बीच तनाव और मुठभेड़ की स्थिति उत्पन्न हो गयी। सन् 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम अंग्रेजों को भारत से बाहर करने का प्रथम प्रयास था। यह क्रान्ति समस्त जातियों एवम् वर्गों के लोगों का समर्थन न मिलने के कारण असफल रही लेकिन ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन को समाप्त कर दिया और भारत सीधे ब्रिटिश सरकार के शासन के आधीन हो गया।

ब्रिटेन की उन्नीसवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति ने बड़े–बड़े कारखानों को जन्म दिया। लोहे और कपड़े के उद्योगों पर तो बड़े कारखानों का ही एकाधिकार हो चला। इस प्रकार वहां शिल्प–पद्धति में पूर्ण बदलाव उपस्थित हो गया।

लघु एवं कुटीर उद्योगों का ह्रासः

भारत में ब्रिटिश शासन के साथ ही लघु एवम् कुटीर उद्योगों का पतन आरम्भ हो गया था। इनके पतन के तीन प्रमुख कारण थे। पहला कारण था कि अंग्रेजों ने भारत के लघु एवम् कुटीर उद्योगों से निर्मित माल के निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया। भारतीय उद्योगों में बने माल का बाजार न होने के कारण भारतीय लघु एवम् कुटीर उद्योगों में सामान बनना बन्द हो गया। दूसरे ब्रिटिश शासन के आगमन के साथ ही भारतीय राजाओं, नवाबों एवम् छोटे–छोटे शासकों का जिनके संरक्षण में भारतीय कारीगर काम करते थे पतन हो गया। तीसरे इंग्लैण्ड के निर्मित माल भारत में आकर बिकने लगा। यह माल इंग्लैण्ड की मशीनों पर तैयार होने के कारण भारतीय माल की अपेक्षा सुन्दर और सस्ता था। इस प्रकार मशीन उद्योगों के समक्ष कुटीर उद्योगों की प्रगति धीमी हो गयी। सारांश यह कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय कुटीर उद्योग ह्रासोन्मुख हो गये और देश का आर्थिक सन्तुलन गडबड़ाने लगा।

भारत का औद्योगीकरण :

ब्रिटिश सरकार ने अपने शासन को सुदृढ़ बनाने के लिये उद्योग धन्धों को बढ़ावा दिया और भारत में रेलों का जाल फैलाना आरम्भ कर दिया। सन् 1918 की 'मांटेयू चेम्सफोर्ड' रिपोर्ट का यह अंश इस सदर्भ में उद्धरणीय है 'आर्थिक और सैनिक दोनों ही दृष्टियों से साम्राज्यवादी हितों की यही मांग है कि अब से हिन्दुस्तान के प्राकृतिक साधन और अच्छी तरह से काम लाये जायें। हिन्दुस्तान का औद्योगीकरण होने पर साम्राज्य की ताकत और कितनी बढ़ जायेगी, हम अभी तक इसका हिसाब नहीं लगा सकते।'[23] यह कथन सिद्ध कर रहा है कि भारत के औद्योगिक विकास के पीछे अंग्रेजों का अपने शासन को सुदृढ़ बनाने का निजी स्वार्थ था।

इस समस्त औद्योगिक विकास के पीछे अंग्रेजों की अदम्य शोषण नीति निहित थी। वे नादिर शाह एवम् चंगेज खाँ जैसे आक्रमणकारियों की तरह 'लूट–पाट' करने में विश्वास न कर कानून व अधिकार का सहारा लेकर चलने वाली शोषण नीति का अनुसरण करते थे। वे भारत को पूर्ण रूप से कृषि प्रधान देश बनाना चाहते थे। जिससे कच्चा माल यहां से प्राप्त हो सके और इग्लैण्ड में पक्के माल के रूप में तैयार होकर पुनः भारत में बिक सके। अंग्रेजों की इस आर्थिक नीति से भारतीय नेता सन्तुष्ट नहीं थे। दादा भाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले महादेव रानाडे, रमेश चन्द्र दत्त जैसे नेताओं ने अंग्रेजों की इस शोषण नीति की कड़ी अलोचना की। अंग्रेज स्वतंत्र व्यापार के आर्थिक सिद्धान्त का समर्थन करते थे ताकि अधिक से अधिक लाभ कमा सके। गोविन्द महादेव रानाडे ने उनके इस व्यापार सिद्धान्त की अलोचना की। दादा भाई नौरोजी ने कलकत्ता कांग्रेस अधिवेशन मे सभापति के स्थान से बोलते हुये कहा– 'भारतीय निर्धन बच्चों का तन काटकर प्रतिवर्ष बीस करोड़ रूपया केवल वेतन एव्म पेन्शन के नाम पर इग्लैण्ड भेजा जाता है। ऐसा देश आर्थिक सिद्धान्तों की चर्चा कैसे कर सकता है।'[24] इस सबका प्रभाव यह हुआ कि सन् 1907 में आर्थिक हितों की रक्षा करने के लिये 'बहिष्कार आन्दोलन' तथा 'स्वदेशी आन्दोलन' प्रारम्भ हुये।

शहरों में बड़े-बड़े कारखाने स्थापित होने से लोग गांव को छोड़कर शहरों में जाने लगे और गांवों में कृषि का ह्रास होना आरम्भ हो गया। 'विदेशी मशीनों से बनी वस्तुओं की बहुतायत का प्रभाव यह हुआ कि भारतीय कृषि व्यवस्था धीरे-धीरे नष्ट हो गयी।'[25]

इस युग की एक महत्वपूर्ण घटना थी पाश्चात्य सभ्यता के कारण सम्मिलित परिवार टूटने लगे और व्यक्ति गांव छोड़कर मिलों में काम करने शहर जाने लगा। 'व्यक्तिवाद के आधुनिक विचारों के प्रचार से संयुक्त परिवार टूट चले इसलिये भूमि का विभाजन बहुत अधिक हो गया। फलतः भूमि की उपज कम हो गयी और कृषि का विकास रूक गया।'[26]

सन् 1914 में प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस विश्व युद्ध ने उद्योगपतियों को लाभार्जन का सुनहरा अवसर प्रदान किया। अब किसानों को जीवित रहने के लिये महाजनों की शरण के अलावा कोई अन्य रास्ता नजर नहीं आया। महाजनों के कर्ज न पटने की स्थिति में किसानों का स्वामित्व अपनी भूमि से हटता गया, और महाजन भूमि के मालिक बनते गये। किसानों का शोषण तीन दिशाओं में तीव्र हो चला था। साहूकार वर्ग का कर्ज जमींदार का भारी लगान आवश्यक वस्तुओं पर करों का बढ़ना ।[27]

महाजन किसान के जीवन-नाटक का सूत्रधार है। फसल तैयार होने पर किसान को अनेक लोगों की बाकी चुकानी होती है । उसे अपनी अन्न तत्काल गिरे हुये बाजार भाव पर महाजनों हाथ बेचना पड़ता है । महाजन लोग खरीदे हुये अन्न का कुछ काल बाद अधिक दाम पर बेंचकर लाभ उठाते हैं। किसान की आय कम होती है और देनदारी अधिक। प्रायः दैवी विपत्तियो का शिकार हाने तथा अपनी साधन हीनता के कारण, उसे समय-समय पर महाजन की शरण लेनी पड़ती है। जब सब कुछ होने पर भी वह ऋणग्रस्त रहने को विवश है तो दुराशावश उसने निजी व्यय का सन्तुलन खो दिया है वह अपनी झूठी मर्यादा के मद में रीति रिवाजों में चादर के बाहर पैर फैलाकर रूपये उड़ाता है। महाजन ऐसे आत्मघाती किसान को चक्रवृद्धि ब्याज पर ऋण दे देकर उसे

अधिकाधिक चंगुल में फांसता जाता है । महाजन को किसान से अपना मूल लेने की अधिक चिन्ता नहीं है, वह उस आय श्रोत को यथा स्थान अक्षुण्य बनाये रखना चाहता है किन्तु उसका फल, ब्याज इसे प्राण प्रिय है। महाजनी दलदल मे एक बार पैर रख देने पर किसान उससे छुटकारा नहीं पाता। वह सुरसा की भांति उत्तरोत्तर मुंह फैलाये हुये ब्याज को जब नहीं चुका पाता, तो फिर मूल चुकाने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस प्रकार वह अपना इहलोक और परलोक दोनों का सुख गंवा बैठता है।[28]

किसानों की दयनीय स्थिति के बारे में निम्नलिखित बातें उभरकर सामने आती हैं:–

1. ब्रिटिश सरकार की औद्योगिक नीति,
2. संयुक्त परिवार प्रणाली का विघटन,
3. ब्रिटिश सरकार का जीवन उपयोगी वस्तुओं पर कर,
4. जमींदारों का किसानों पर भारी लगान एकत्र करना एवम् उनक अत्याचार,
5. महाजन वर्ग का शोषण,
6. अकालों का प्रकोप तथा
7. बढ़ती हुई जनसंख्या और ह्रास को प्राप्त हुयी भूमि ।

नागार्जुन सा संवेदनशील कथाकार देश की आर्थिक विपन्नता और निरन्तर शोषण के शिकार किसान व मजदूर की दुर्दशा से सुपरिचित था। अंग्रेज शासकों और जमींदारों के अवाध शोषण व अत्याचारों ने उसे भीतर तक झकझोर दिया। उन्होंने अपने उपन्यासों में इस पीड़ित वर्ग की पीड़ा को सशक्त अभिव्यक्ति दी। साथ ही बिहार के किसान आन्दोलन का नेतृत्व भी किया और इस सम्बन्ध में अनेक बार जेल भी गये। उनके उपनयास 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा' तथा 'बाबा वटेसर नाथ' का रचना काल स्वतंत्रता के बाद का है तथा उन्होने द्वितीय विश्व युद्ध पूर्व के सामाजिक, आर्थिक एवम् राजनीतिक परिवेश को इन उपन्यासों में जीवन्त रूप में अंकित किया हैं। इन उपन्यासों

में किसान और जमींदारों के मध्य घटित संघर्ष एवम् कृषकों में शोषण के विरूद्ध पनपती हुई चेतना उपन्यासकार के समाजवादी चिन्तन का ही परिणाम है।

सन् 1943 में बंगाल में इतिहास प्रसिद्ध भंयकर अकाल पड़ा । अकाल का कारण दैवी कम था लेकिन मानव की स्वार्थ – लिप्सा ने उसे अधिक भयंकर रूप दे दिया । बंगाल में चावल की कमी न होने पर भी उसका भाव सौ रूपये प्रति मन पहुंच गया। अब असहाय जनता के सामने भूख से मरने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प नहीं रहा गया था। सम्पूर्ण महायुद्ध में इतने व्यक्ति नहीं मरे जितने इस भीषण अकाल की चपेट में आये। अकाल के बाद भीषण महामारियां फैली और हजारों लोग मौत के शिकार हुये।

नागार्जुन के उपन्यास 'बाबा वटेसर नाथ' में अकाल की इस हृदय विदारक विभीषिका का रोमांचक और करूण चित्र अंकित किया गया है ।

कांग्रेस के तीस वर्ष के शासन के अन्त में जनवादी दिखायी देने वाली आर्थिक नीतियों ने देश के बड़े–बड़े पूंजीपतियों को अनाप–शनाप मालामाल कर दिया, और जनसामान्य फटे हाल ही रहा। काले धन की समानान्तर चलने वाली अर्थव्यवस्था ने जन–साधारण में क्षोभ और आक्रोश को जन्म दिया। गुजरात से प्रारम्भ होने वाले आन्दोलन ने देश के शासकों की सत्ता को सीधी चुनौती दी और देश जय प्रकाश नारायण के समग्र क्रान्ति के नारे के पीछे हो लिया।

नागार्जुन ने जय प्रकाश नारायण द्वारा प्रेरित 'समग्र क्रान्ति' के आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और वे जेल गये। जेल मुक्त होने क बाद समग्र क्रान्ति के प्रति उनका जो मोह था, वह भंग हुआ। उन्हें अहसास हुआ कि यह क्रान्ति आर्थिक मुद्दों पर आधारित नहीं थी और इस क्रान्ति का गला प्रतिक्रियावादी और पूंजीपतियों ने असमय में घोट दिया था। परिणाम यह हुआ कि 'समग्र कान्ति' 'वोट क्रान्ति' में बदल गयी।

देश में सन् 1977 में चुनाव हुये और 'जनता दल' की नयी शासन व्यवस्था कायम हुई, लेकिन देश की आर्थिक स्थिति में कोई मूलभूत परिर्वतन नहीं हुआ। नागार्जुन ने देश की आर्थिक स्थिति पर अपनी सतर्क दृष्टि रखी है। देश की वर्तमान आर्थिक

व्यवस्था न तो जन साधारण की आशा–आकांक्षाओं के अनुकूल है और न ही उपन्यासकार इससे सन्तुष्ट है। वर्तमान स्थिति के प्रति नागार्जुन का असन्तोष बाबा वटेसर नाथ के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त हुआ है – 'साधारण जनता का स्वर्ण युग तो अभी आगे आने वाला है, बेटा।'[29]

युगीन समाज के विभिन्न वर्ग :

इस शोध की आधारभूत लेखन सामग्री – देश काल में अनेक राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलन का काल है । प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्ध, रूस की जनक्रान्ति, भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति और भारत–विभाजन जैसी महत्वपूर्ण घटनाओं ने देश में न केवल नयी परिस्थितियां ही पैदा की, वरन् यहां की आर्थिक व्यवस्था को दूर तक प्रभावित किया। उपर्युक्त घटनाओं के परिणाम स्वरूप देश की कृषि और औद्योगिक अवस्थाओं में अभूतपूर्व परिवर्तन हुआ। देश में आर्थिक आधार पर तीन नये वर्ग स्पष्ट अस्तित्व में आये – उच्च वर्ग { जमींदार एवम् पूंजीपति }, मध्य वर्ग एवम् निम्न वर्ग { किसान मजदूर } ।

इस शोध का आलोच्य काल देश के साधरण जन की आर्थिक दशा की दृष्टि से विपन्नता, विषमता और संघर्ष का काल है। नागार्जुन की औपन्यासिक कृतियों में देश की इस स्थिति का बड़ा ही सजीव और यथार्थ चित्र अंकित किया गया है। साथ ही कृषकों एवम् मजदूरों में विकसित हाती हुई चेतना का भी रेखांकित किया गया हैं। 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा' एवम् 'वरूण के बेटे' उक्त तथ्यों को भली भातिं अभिव्यक्त करते हैं। ये कृतियां स्वतंत्रता से पूर्व उच्चवर्ग द्वारा जन साधारण के शोषण का उसके सम्पूर्ण रूप में स्पष्ट कर देती हैं । पहले निम्नवर्ग का यह शोषण सीमा रहित था लेकिन धीरे–धीरे यह वर्ग भी अपने अधिकारों के प्रति सचेत होता गया है । 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास मे शुभंकरपुर गांव में पनपती हुई इस चेतना का प्रतीक है। वहां के कृषकों का यह नारा – 'कमाने वाला खायेगा, इसके चलते जो कुछ है।'[30]

'बलचनमा' उपन्यास में भी कथाकार ने घोषणा की है कि भूमि का मालिक वही है जो उस पर खेती करता है। 'जमीन किसकी –जोते–बोयें उसकी।'[31]

'वरूण के बेटे' में मछुआरों में अपनी जागृति अन्य वर्गों से अधिक वास्तविक तथा व्यवहारिक है। वे सब संगठित होकर जमींदारों का मुकाबला करते हैं। गोनड़ के शब्दों में – 'यह पानी सदा हमारा रहा है किसी भी हालत में हम इसे छोड़ नहीं सकते। पानी और माटी न कभी बिके हैं, न कभी बिकेंगे। गरोखर का पानी मामूली पानी नहीं, वह तो हमारे शरीर का लहू है, जिन्दगी का निचोड़ है।'[32] अपने अधिकारों के प्रति उनकी चेतना को ही व्यक्त करते हैं। इसी उपन्यास में सरकार द्वारा चालू की गयी पंच वर्षीय योजनाओं की निस्सारता की कलई भी खोली गयी हैं। बाढ़ और अकाल जैसे दैवी प्रकोप के समय में जन सामान्य को दी जाने वाली सरकारी सहायता को भी 'बलचनमा के नेता' और अफसर मिल बांट कर डकार जाते हैं। यह तथ्य उल्लेखनीय हैं।

नागार्जुन ने 'बाबा वटेसर नाथ' उपन्यास में नील के मालिक अंग्रेजो द्वारा खेतिहरें के मनमाने शोषण, कांग्रेसी नेताओं की अवसरवादिता एवम् स्वार्थपरता, वर्ग संघर्ष, बाढ़–अकाल आदि विपत्तियों का वास्तविक आंकलन किया हैं। अकाल वर्णन में भोजन के लिये ईटों का चूर्ण, पत्तियों, गुठलियों, दूब की जड़ों और पेड़ की छालों का प्रयोग अकाल की भयावहता का गहन संवेदनीय बना देता है।

राजनीतिक परिस्थितियां :-

नागार्जुन जब सन् 1935 में हिन्दी साहित्य जगत में प्रविष्ट हए, तो उस समय भारतीय क्षितिज से राजनीतिक निराशा का कोहरा छंटना आरम्भ हो गया था। गांधी जी का समझौतों का युग बीत चला था। देश में कांग्रेस का प्रभाव बढ़ता जा रहा था, जिसमें दो विचारधाराओं की टकराहट चल रही थी। कांग्रेस के – गर्मदल और नर्मदल बन गये थे। इस गर्म दल वाले तिलक, लाला लाजपत राय और विपिन चन्द्र पाल {बाल, लाल और पाल} थे। नर्म दल वाले गोखले, फिरोज शाह मेहता, सुरेन्द्र बनर्जी,

राजबिहारी घोष, मदन मोहन मालवीय आदि नेता थे। गर्म दल वाले चाहते थे कि देश पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करे। नर्म दल वाले भारत में पार्लियामेंटरी ढंग की उत्तरदायी सरकार का गठन चाहते थे। जवाहर लाल इनदोनों विरोधी विचारधाराओं के बीच मिलन सेतु की सी भूमिका अदा कर रहे थे। कांग्रेस की युवा पीढ़ी जनआन्दोलनों को व्यापक रूप प्रदान कर आजादी लड़ाई लड़ने के पक्ष में थी और कांग्रेस पर देश पूंजीपतियों के बढ़ते प्रभाव से चिंतित एव्म अप्रसन्न थी। विचारधाराओं की इस टकराहट ने देश में एक नवीन जन चेतना को जन्म दिया। अब युवा वर्ग गांधी की अहिंसावादी नीति का विरोध कर सशस्त्र संघर्ष द्वारा भारत का अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने का नारा लगा रहा था। किन्तु कांग्रेस के बुर्जुग नेताओं के आगे युवा वर्ग की बात सिरे न चढ़ सकी। परिणाम स्वरूप सुभाष चन्द्र बोस जैसे युवक नेताओं का कांग्रेस से त्याग–पत्र देकर अलग होना पड़ा । विंचारधाराओं के इस संघर्ष के कारण सुभाष चन्द्र बोस ने विदेशों में रहकर 'आजाद हिन्द फौज' को जन्म दिया तथा सन् 1942 में उग्र जन आन्दोलन खड़ा किया।

सन् 1935–40 के बीच देश में गांधी वादी विचारधारा का प्रवाह क्षीण हो चला था और समाजवादी विचारधारा जड़ पकड़ने लगी थी। सन् 1936 में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ और असमे समाजवादी विचारधारा को बल मिला। अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए जवाहर लाल नेहरू ने कहा – 'चाहे समाजवादी सरकार की स्थापना सुदूर भविष्य की ही बात क्यों न हो और हममें से बहुत से लोग उसे अपने जीवन में भले ही न देख पावें, लेकिन समाजवाद वर्तमान में वह प्रकाश है जो हमारे पथ को अलौकित करता है ।'[33]

देश में समाजवादी विचारधारा के दो स्कूल रहें हैं। प्रथम, कांग्रेस में जवाहर लाल नेहरू तथा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और दूसरी कम्युनिष्ट पार्टी किन्तु दोनों के विचारों को प्रेरित करने वाला दर्शन मार्क्सवाद ही है। दोनों के मूल विचार मार्क्सवादी हैं लेकिन दोनों के दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न हैं। स्वाधिनता पूर्ण युग में व्यावहारिक रूप

से कांग्रेस समाजवादी दल की सम्पूर्ण शक्ति राष्ट्रीय आन्दोलन में लग रही थी तथा साम्यवादी दल पूंजीवाद कि विरूद्ध कार्यक्रमों को आयोजित करने में जुटा रहा। साम्यवादियों का मानना था कि कांग्रेस पूंजीपतियों के हाथ की कठपुतली है, क्योंकि उसका नेतृत्व पूंजीपति वर्ग करता है। इस रूप में स्वाभवतः साम्यवादी दल पूंजीपति वर्ग का विरोध करते हुये कांग्रेस विरोधी रूप धारण करता गया।

तत्कालीन भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों में समाजवादी दर्शन न केवल विदेशी पूंजीवाद या साम्राज्यवाद से लड़ता है अपितु देशी पूंजीवाद से भी टक्कर लेता है। कांग्रेस समाजवादी दल मध्य वर्ग के अंस्तित्व को स्वीकार करता है। इस दल ने इस वर्ग को समाजवादी व्यवस्था के क्रांन्तिकारी अंश के रूप में मान्यता प्रदान की है जबकि साम्यवादी दल इस वर्ग के अस्तित्व को नहीं नकारता है। मार्क्सवादी दृष्टि में मध्य वर्ग एक प्रतिक्रियावादी शक्ति है और यह बिनष्ट होना चाहिये। मार्क्सवाद–शोषक और शोषित इन दो वर्गों को मानता है और उसकी स्थापना है कि दोनों वर्गों के अपने–अपने स्वार्थ हैं। अतः नर्म संघर्ष अनिवार्य है। इस प्रकार साम्यवादी दल वर्ग संघर्ष में क्रान्ति या हिंसा प्रयोग को अनैतिक नहीं मानता। कांग्रेस समाजवादी दल ने राष्ट्रीय आंदोलन के लिये हिंसा को अस्वीकार किया था। दूसरे साम्यवादी दलों ने सशस्त्र क्रांन्ति हिंसा आदि तत्वों को राजनीतिक अस्त्र के रूप में महत्व दिया है। दोनों की राजनीतिक दृष्टि में अन्तर रहा है। किन्तु उनके उद्देश्यों में समानता थी। दोनों ही दल ब्रिटिश सम्राज्यशाही एवम् दशी पूंजीवाद का खात्मा चाहते थे।

सन् 1917 की रूसी क्रान्ति के प्रमुख नेता लेनिन थे। इस क्रान्ति का उद्देश्य पूंजीवाद के विरुद्ध मजदूरों की तानाशाही स्थापित करना था। इसका परिणाम यह हुआ कि किसान मजदूरों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा भारतीय पूंजीवाद के विरुद्ध संगठित होकर अपने हितों की रक्षा करने के लिये अनेक व्यापक आन्दोलन किये।

नागार्जुन देश में चलने वाले इस राजनीतिक चिंतन से कैसे पृथक रह सकते थे? उनके उपन्यासों 'रतिनाथ की चाची', 'वरूण के बेटे' तथा 'बाबा वटेसर नाथ' में कृषक

आन्दोलनों का जीवन्त चित्रण हुआ है। सन् 1937–39 में बिहार में किसानों का सशक्त आन्दोलन चला। नागार्जुन ने इस आन्दोलन का मार्मिक चित्रण 'रतिनाथ की चाची' में किया है। इस उपन्यास का घटना–काल भी 1937 से 1940 के बीच का है।'[34]

'सभा, जुलूस, दफा एक सौ चौव्वालिस, गिरफ्तारी, सजा, जेल, भूख हड़ताल, रिहाई–यह सिलसिला किसानों को ठन्डा नहीं कर सका।[35] अदम्य उत्साह, संगठन–शक्ति, जागरूकता तथा दृढ़ता होने पर भी किसानों का यह आन्दोलन सफल नहीं हुआ, क्योंकि 1937–39 में बिहार में बने कांग्रेस मंत्रिमंडल का समर्थन इन्हें प्राप्त नहीं था। 'मंत्रियों ने अपनी पीठ कर ली थी किसानों की ओर और मुंह कर दिया जमींदारों की ओर। दुनिया भर में बदनामी फैल गयी कि बिहार की कांग्रेस पर जमींदारों का असर है। जवाहर लाल नेहरू ने खुल्लम–खुल्ला यह बात कही थी।'[36]

बिहार का किसान आन्दोलन तथा कांग्रेसी मंत्रीमंडल की जमींदारों के साथ सांठ–गांठ एक ऐतिहासिक एवम् महत्वपूर्ण तथ्य है। यह इस तथ्य को उजागर करता है कि जिनके हाथ राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व है उनके आने वाले स्वराज्य पर कैसा रूप होगा। कांग्रेस पर साम्यवादियों के जो आरोप थे सत्य निकले।

किसानों को यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस उनके हितों की रक्षा करने में असमर्थ है। अतः अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये उन्हें सत्ताधारी कांग्रेस से भी संघर्ष करना होगा। 'सच जानो भैया उस बखत मेरे मन में यह बात बैठ गयी कि जैसे अंग्रेज बहादुर से स्वराज लेने के लिये बाबू भैया एक हो रहे हैं, हल्ला–गुल्ला और झगड़ा–झंझट मचा रहे हैं उसी तरह अब बनिहार, कुली, मजूर और वाहिया खाबास को अपने हक के लिये बाबू भैया से लड़ना होगा।'[37]

उपन्सकार ने 'बलचनमा' में यह स्पष्ट किया है कि कांग्रेस में ज़मींदारों के परिवारों के लोग घुस गये है, जैसे फूल बाबू जो जनता के हितके स्थान पर अपने ही वर्ग के हित साधन का ध्यान रखते हैं। मजदूर और किसान संगठित होकर ही अपनी आजादी प्राप्त कर सकते हैं। किसान की आजादी आसमान से उतरकर नहीं आयेगी, वह

प्रगट होगी नीचे धरती के भुर्र-भुर्रे ढेलों को फोड़कर।[38] बिहार के किसानों की जागरूकता का प्रतीक उनका नारा 'कमाने वाला खायेगा, इसके चलते जो कुछ हो।'[39] यह सिद्ध करता है कि किसान जाग्रत हो चुके हैं और वे अधिकारों के लिये जूझ रहे हैं। जब कांग्रेस ने किसानों के अधिकरों की उपेक्षा की तो उन्होंने कांग्रेसियों के विरुद्ध अपना आन्दोलन संगठित किया। किसानों की इस राजनैतिक चेतना का श्रेय उन्हीं को है। किसी भी पार्टी या प्रभुत्व नेता को नहीं। स्वतंत्रता प्रयास से ही उन्होंने अपना आन्दोलन संगठित किया तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में भी भाग लेते रहे।[40]

नागार्जुन ने स्वयं भी किसानों के आन्दोलन का नेतृत्व किया। साथ ही अपने उपन्यासों में ग्रामीण समाज के प्रति पीड़ित शोषित किसान-मजदूर वर्ग का जीवन्त चित्रण करने के साथ-साथ उनमें आयी राजनैतिक जागृति को भी स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रदान की है।

इस समाजवादी विचारधारा और किसानों में आयी जागृति का यह प्रभाव हुआ कि आगे होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन शहरों की अपेक्षा गांवों में होने लगे।

कांग्रेस का सन् 1937 का अधिवेशन पहली बार फैजपुर गांव में हुआ। नेहरू जी इस अधिवेशन में स्वयं तो उपस्थित नहीं हो सके, उन्होंने समाजवादी सम्मेलन को यह संदेश भेजा-'जैसा कि आपको मालूम है कि मुझे हर समस्या के प्रति समाजवादी दृष्टिकोण में बड़ी भारी दिलचस्वी है इस पद्धति के पीछे जो सिद्धान्त है उसे हमें समझना चाहिये। इससे हमारी दिमागीं उलझन दूर होती है और हमारे काम की कुछ उपयोगिता हो जाती है।'[41]

सन् 1938 में दोबारा भी बाबू सुभाष चन्द्र बोस की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन गुजरात के एक गांव हरिपुरा में हुआ। इस अधिवेशन में सुभाष चन्द्र ने कहा था। 'राष्ट्रीय निर्माण के विषय में हमारी प्रमुख समस्या देश की गरीबी को दूर करना है। इसके लिये यह आवश्यक है कि वर्तमान भूमि व्यवस्था की बुनियादी रद्दो बदल की जाये। निःसन्देह जमींदारी प्रथा का नाश करना भी इसमें शामिल हो। किसानों के सारे

कर्ज बेबाक कर देने होंगे देहाती भाइयों के लिये सस्ते दर पर कर्ज पाने की व्यवस्था करनी होगी। वैज्ञानिक तरीकों से खेती करनी होगी जिससे भूमि की पैदावार बढ़े।'[42] अपने इन कृषक सुधार सम्बन्धी मंतव्यों की पूर्ति के लिये सुभाष चन्द्र बोस ने किसान सभा की आवश्यकता पर बल दिया। फैजपुर और हरिपुरा में आयोजित अधिवेशनों ने जन साधारण को नवीन उत्साह प्रदान किया। किसान और श्रमिक संगठित हुये और सामूहिक हितों के लिये अनेक आन्दोलन किये गये। इस प्रकार किसानों का असन्तोष विभिन्न संस्थाओं और अभियानों किसान मार्च के माध्यम से व्यक्त हुआ।

किसानों की भाँति श्रमिकों के मन में एक स्वतंत्र समाजवादी भारत का स्वप्न पल रहा था। श्री ए. आर. देशाई लिखते हैं।– 'जब तत्कालीन भारतीय समाज के दूसरे वर्ग भारत को स्वतंत्र कराने की कामना कर रहे थे, भारतीय श्रमिक स्वतंन्त्र समाजवादी भारत का स्वप्न देख रहे थे।'[43] सन् 1934 के आस–पास और उसके बाद श्रमिक हड़तालें हुई, श्रमिकों की सभायें हुई।

नागार्जुन भी कृषकों एवम् मजदूरों में आयी समाजवादी चेतना से प्रभावित हुये और उन्होंने अपने उपन्यासों में इसे सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की। इनके सभी उपन्यास समाजवादी चेतना से ओत प्रोत हैं। इस प्रसंग में डा0 सुरेश सिंन्हा का मत उद्धरणीय है।

'उनके उपन्यासों का जीवन दर्शन समाजवादी चेतना के अधिक निकट है। परस्पर समानता स्थापित होना सबको विकास करने का समान अवसर प्राप्त होना शोषण एवम् वर्ग वैषम्य का अन्त होना यही उनके उपन्यासों का मूल स्वर है।'[44]

सन् 1939 में जर्मनी द्वारा दूसरा महायुद्ध छेड़ दिया गया। जर्मनी, इटली और जापान एक ओर थे तथा ब्रिटेन, फ्रान्स, अमेरिका तथा रूस दूसरी ओर। भारत का प्रत्यक्षतः इस युद्ध से कोई सरोकार न था। ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन होने के कारण उसे भी इसमें अनिच्छा से भाग लेना पड़ा। इस समय तक देश में राष्ट्रीय भावना पूर्णतः जागृत हो चुकी थी।

भारतीय नेताओं ने इस युद्ध में भाग लेने का घोर विरोध किया। साथ ही भारतीय जनता में इसकी व्यापक प्रतिक्रिया हुई। भारतीय जनता रूस की विजय में अभिरुचि रखती थी और लाल सेना के प्रति देश के मन में पर्याप्त सहानुभूति तथा आदर का भाव था। मित्र राष्ट्रों की सेना ने इस युद्ध में अप्रतिम शौर्य दिखाया, विशेष 'रूप से रूस की लाल सेना का साहस अभूतपूर्व था।'

उपन्यासकार नागार्जुन इस युद्ध में रूस की विजय से प्रभावित हुये। उनके 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास की गौरी देवी रूस की समाजवादी विचारधारा से प्रभावित है और वह रूस की विजय की कामना करती है। तारा चरण के इस कथन पर भी इस युद्ध में रूस हार जायेगा चाची कहती है– 'मैं पढ़ी लिखी नहीं हूँ। मगर इतना समझती हूँ कि पच्चीस साल में रूस वालों ने अपने यहां जो नया संसार बसाया है उसके अन्दर जाकर राक्षसों की बड़ी से बड़ी फौज भी मात खा जायेगी।'[45]

अब ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध आक्रोश तथा असन्तोष और भी गहरा होता जा रहा था। सन् 1942 को भारतीय नेताओं द्वारा देशी सुरक्षा एवम् स्वतंत्र शासन के लिये 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पारित किया गया जिसके परिणामस्वरूप जो जन आन्दोलन हुआ उसे दबाने के लिये अंग्रेजों ने एड़ी से चोटी तक के प्रयत्न किये परन्तु वे सफल न हो सके। गांधी जी ने स्पष्ट शब्दो में विदेशियों से भारत छोड़ देने को कहा। अगस्त 1942 की यह क्रान्ति भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है।

डा0 ईश्वरी प्रसाद का कथन है–'अगस्त की यह क्रांति आधुनिक भारत के इतिहास में एक नवीन युग प्रारम्भ करती है। यह अत्याचार और शोषण के विरुद्ध एक जन क्रान्ति थी और इसकी तुलना फ्रान्स के इतिहास में वसील के पतन अथवा रूस की अक्टूबर क्रान्ति से की जा सकती है।'[46]

दूसरा विश्व युद्ध सितम्बर 1945 को टोकियो संधि से समाप्त हुआ। रूस की महान विजय ने विश्व के पराधीन और शोषित देशों के हृदय में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से मुक्त होने का एक नया संकल्प पैदा किया। भारत भी पूर्ण स्वतंत्रता की

प्राप्ति के लिये कृत–संकल्प था लेकिन यहां की मुस्लिम लीग ने पृथक पाकिस्तान की मांग को लेकर अपना राजनीतिक दबाव डालना शुरू कर दिया। इसका परिणाम यह निकला कि सन् 1946–47 में सम्प्रदायिक दंगो के कारण देश में गृह युद्ध जैसी स्थति पैदा हो गयी। 13 जून 1947 को पाकिस्तान की मांगपूर्ण रूप से स्वीकार कर ली गयी। ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि मुस्लिम बहुमत वाले भाग पंजाब, बंगाल और इसके अतिरिक्त सीमा प्रान्त सिंध तथा आसाम का कुछ भाग मिलाकर पाकिस्तान नाम का एक स्वतंत्र राष्ट्र होगा और शेष भारत भी स्वतंत्र राष्ट्र कहलायेगा। इस प्रकार 15 अगस्त 1947 को दोनों राष्ट्रों को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान कर दी गयी। देश के प्रत्येक साहित्यकार ने स्वतंत्रता का अभिनन्दन किया। परन्तु इसी के साथ देश में विभाजन पर दु:ख भी प्रकट किया। नागार्जुन 15 अगस्त 1947 के दिन की प्रसन्नता 'बाबा वटेसर नाथ' उपन्यास के पात्र जीवनाथ ने अपने घर के सामने लम्बे बांस की ध्वजा गाड़ी थी और तिरंगा झंडा फहराया था। लोगों में दो सेर बतासे बांटे थे। परसादीपुर के किन्हीं बाबू के यहां से हरमोनियम लाया और तबला–डुग्गी मांगकर लाया था और दिन भर आजादी का त्यौहार मनाया था। रात को दीप जलाये थे, सेर भर तेल खर्च किया था।[47]

30 जनवरी 1948 को गांधी जी की हत्या कर दी गयी। नियति का क्रूर व्यंग्य देखिये जो महापुरुष साम्प्रदायिकता के विरुद्ध आजीवन लड़ता रहा वही साम्प्रदयिकता का शिकार हो गया। पूरे देश ने इस पैशाचिक कांड की भर्त्सना की। नागार्जुन ने भी अपने काव्य संग्रह 'युगधारा' की 'शपथ' कविता में गांधी को श्रद्धांजलि अर्पित की।

सन् 1952 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पहला आम चुनाव हुआ, जिसमें कांग्रेस को भारी बहुमत मिला और उसने देश का शासन सूत्र संभाला। उसने सामुदायिक विकास योजनायें चलायी जिनका लक्ष्य गांवों की दशा में सुधार करना था। नागार्जुन का उपन्यास 'दु:खमोचन' ग्राम सुधार की भावना से ओत–प्रोत उपन्यास है। डा0 वेचन के अनुसार– 'इस उपन्यास की रचना संभवत: आज सरकार की ओर से हो रहे निर्माण सम्बधी प्रचार कार्यों के लिये की गयी है।'[48]

सन् 1962 में चीन ने और सन् 1965 और 1967 में पाकिस्तान ने हमारे देश पर आक्रमण किया। चीनी आक्रमण के बाद लिखे गये उनके 'उग्र तारा' उपन्यास में व्यक्त ये विचार 'देश की दौलत को नुकसान पहुंचाने वाला हमारा वैसा ही दुश्मन है, जैसा कि हमारी सीमाओं के अन्दर घुसपैठ करने वाला, हम न उसको छोड़ेगें न इसको छोड़ेगें।'[49]

इससे स्पष्ट है कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर घटित होने वाली प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना से नागार्जुन का उपन्यासकार प्रभावित हुआ है यदि कांग्रेस की साम्राज्यवादी नीति ने देश को उपनिवेशवाद के विरुद्ध खड़ा किया तो रूसी क्रान्ति ने समाजवादी विचारधारा के निकट ला दिया। इस प्रकार नागार्जुन के औपन्यासिक लेखन में जन चेतना के विभिन्न आयामों के साथ सजीव हो उठे।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि युग विशेष का सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवम् आर्थिक जीवन परस्पर घनिठ रूप से सम्बद्ध रहता है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में समसामयिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, परिस्थितियों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया है। उनके उपन्यासों का स्वर जहां समाज की अनेक समस्याओं को लेकर अतिशय मुखर रहा है, वहीं उनमे युगीन इतिहास की समग्रता के साथ रूपायित हुआ है। उनके उपन्यास एक साथ ही सामाजिक तथा राजनीतिक भित्ति पर प्रतिष्ठित है। उनके उपन्यासों का विषय क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। भारतीय जीवन की अधिकांश समस्यायें उनकी लेखनी का विषय रही हैं। वर्ण भेद, दासता, पूंजीवाद, अन्तर्राष्ट्री संघर्ष आदि विश्वव्यापी समस्याओं को भी उनके उपन्यासों में यथेष्ठ स्थान मिला है। उपन्यासकार की धर्म भावना वाह्याडंबरों और अंधविश्वासों से मुक्त होकर मानवतावाद की परिधि का स्पर्श करती है। उन्होंने गत्यावरोधक रूढ़ियों का प्रबल विरोध किया है। अर्थ के आधार पर विभक्त समाज के तीनों वर्गों, उच्च, मध्य और निम्न वर्ग का अंकन करते हुये समाजवादी समाज की स्थापना करना ही उनका ध्येय रहा है। इस प्रकार वे समाज के विभिन्न पार्श्वों को अभिव्यक्ति प्रदान कर अपने युग

का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं। अतः इस अध्याय में युगानुरूप परिवर्तित होती हुई उनकी साहित्यिक चेतना का युग की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक पृष्ठ भूमि के सन्दर्भ में ही देखने का प्रयत्न किया गया है।

नागार्जुन के उपन्यासों में आंचलिक तत्व :

उपन्यास का एक पूरा संसार होता है उसके इस प्रकार की संरचना और पूर्णता में उसके एक-एक शब्द का योगदान रहता है। यह योगदान उसकी अखंडित इकाई का सूचक भी है। यह कई दिशाओं में विभक्त होकर उसका शरीर वैज्ञानिक विश्लेषण भी करता है। ये सब अलग-अलग अपना महत्व रखते हैं, किन्तु इनके महत्व की सार्थकता इनके समष्टि रूप में है, जो रचना अपना संसार बनाते हैं।

(क) कथा भूमिः

कथा भूमि उपन्यास का मुख्य तत्व है इसे प्रायः सभी आलोचकों ने प्रमुखता प्रदान की है और किसी न किसी रूप में इसकी अनिवार्यता को भी स्वीकार किया है। यह दूसरी बात है कि कोई उपन्यासकार उसको किस सीमा तक ग्रहण करे। यह निर्विवाद है कि कथानक ही वह वस्तु होती है, जिस पर उपन्यास का सारा रूप न्यास होता है। अतः इसे उपन्यास का ढांचा भी कहा जाता है। यह जीवन का एक सुसम्बद्ध एवम संश्लिष्ट चित्र है।

आंचलिक उपन्यास का कथा-क्षेत्र गांव भी हो सकता है शहर भी, छोटा अंचल भी, बड़ा अंचल भी कथानक और पात्र क्योंकि विशिष्ट अंचल के होते है। अतः उसमें भी वही विशिष्टता रहती है। कथानक अंचल केन्द्रित होता है। इसलिये उस अंचल विशेष के जन उनके क्रिया कलाप, स्थितियां, घटनाएं आदि उसी के रंग में रंगी होती है और उसकी परम्परा प्रगति विश्वास (अन्धविश्वास भी) स्वार्थ, निरीहता, भोलापन कथानक के अविभाज्य अंग बन जाते है। ये सब कथा-कलेवर में गुंथकर नया रूप धारण कर लेते

हैं। इस प्रकार विविध जीवन रंगों के ताने–बाने से बुना कथानक अधिक सुन्दर और संवेदना को विस्तार देने वाला बन जाता है।

अंचल के इंसान इकाई नहीं, वर्ग बनकर आते हैं और अनेक खण्ड चित्रों की तरह अंचल का एक सम्पूर्णचित्र बनाते है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये आंचलिक उपन्यास में कथानक की सम्बद्धता पर ध्यान नहीं रखा जा सकता। अनेक मनुष्यों के जीवन–वृत्त, भोगा हुआ यथार्थ–अनुभव और संघर्षरत रखती हुई अनेकानेक समस्याएं सब मिलाकर अंचल कथ्य बनते हैं। 'परती परिकथा' इसका उत्तम उदाहरण है। अंचल के जीवन में अपनी एकाधिक समस्यायें हैं इसलिये उपन्यासकार प्रायः किसी न कसी समस्या का चित्रण करता है पर आंचलिक उपन्यास मे समस्याओं के चित्रण की 'एप्रोच' समस्यामूलक उपन्यासों या सामाजिक उपन्यासों की 'समस्या एप्रोच' से भिन्न है।

आंचलिक उपन्यास में समस्यायें जीवन की अनिवार्य परिणति की द्योतक है। इनसे संघर्ष उसके जीवन में गतिशीलता भरता है और उसका रूख आधुनिक जीवन की ओर मोड़ता है। यह नव जागृति आंचलिक पात्र में स्वयं उद्भूत होती है, जैसे 'जंगल के फूल' में सुलाए या वरूण के बेटे में मोहन मांझी और माधुरी के माध्यम से प्रवेश कर रही है।

नागार्जुन, रेणु अवस्थी, भट्ट प्रभृति सभी उपन्यासकारो को औपन्यासिक कृतियों में देश के विभिन्न अंचलों की जीवन–विविधता का दर्शन मिलता है। इन तत्वों का ग्रहण उपन्यास को स्वाभाविक, सहज–सरस तथा प्रमाणिक बनाता है। इस प्रकार के चित्रण की सफलता इस पर निर्भर करती है कि लेखक का उस अंचल के जीवन से गहरा और आत्मीय सम्बन्ध है। आंचलिक उपन्यास की कथावस्तु में प्राचीन एवं नवीन का संघर्ष मुख्य रूप से दिखाई देता है। अनेक छोटी–बड़ी संघर्षयुक्त घटनाओं मे स्थानीयता के रंग भरकर कथावस्तु का निर्माण होता है। प्रायः यह संघर्ष अंचल की संस्कृति में बाहरी सभ्यता के संक्रमण के रूप में होती है। जहां तक नागार्जुन की उपन्यासों की कथाभूमि का प्रश्न है, उनके उपन्यासों की कथाभूमि बिहार रही है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) उपन्यास, मिथिला भूमि के जन–जीवन की कथा चित्रित करता है। गोरी विधवा ब्राह्मणी जो कि रतिनाथ की चाची है उसकी यातनाओं और दुखद अन्त का जीवन्त चित्रण है। नागार्जुन का यह पहला आंचलिक उपन्यास है।

'बलचनमा' (1952) नागार्जुन का दूसरा आंचलिक उपन्यास है। इसें एक गरीब किसान पुत्र बलचनमा के दुःख–दर्द की कहानी चित्रित है। वर्ग विषमताओं एवम शोषण मनोवृत्ति पर प्रहार किया गया है। बाल्यकाल से ही बलचनमा को अमानुषिक यातनाओं का शिकार बनना पड़ा। जमींदारों के अत्याचारों को भी सहन करता हुआ वह उनका विरोध करने के लिये संघर्ष करता है ।

नागार्जुन के 'नयी पौध' (1953) में 'नई पौध' (पीढ़ी) के विरोध की कहानी है। मिथिला के सोरठ के मेले में पितृहीना विसेसरी के लिये उसके नाना जी साठ वर्षीय वृद्ध वर चुनते है। इस पर गांव का तरुण वर्ग का विरोध नई पीढ़ी द्वारा कराके प्रगतिशीलता का परिचय दिया। जन–जीवन को चित्रित करने वाला यह विशुद्ध आंचलिक उपन्यास है। 'बाबा बटेसर नाथ' (1954) नागार्जुन का विशिष्ट उपन्यास है, जिसमें वृद्ध वट वृक्ष 'रूपउली' गांव के उत्थान–पतन राजनीतिक सामाजिक स्थितियों की कहानी कहता है। यह कहानी ग्रामीण जीवन के क्रमिक विकास की कहानी है। 'नागार्जुन का लघुकाय बाबा बटेसर नाथ बड़ी सफलता से आंचलिक जीवन एवम् सांस्कृतिक के विकास को लक्ष्य कर उसकी प्रतिक्रिया वादी तथा प्रगतिशील शक्तियों की पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया पर प्रकाश डालता है।'[50]

दुःखमोचन (1957) नागार्जुन का सामान्य उपन्यास है, इसका मुख्य पात्र दुःखमोचन है जो ग्रामोत्कर्ष में तल्लीन है। वह रमका कोहली गांव के गरीबों की हर समस्या को हल करना चाहता है, यह जन–जीवन को चित्रित करने वाला विशुद्ध आंचलिक उपन्यास है। आकाशवाणी के लखनऊ प्रयाग केन्द्रों से प्रसारित नागार्जुन के इस उपन्यास में भारत के विपन्न ग्रामों की नवोदित चेतना को अभिव्यक्ति मिलीहै।[51]

वरूण के बेटे (1957) के आदिवासी जाति के जीवन संघर्ष और नवोदित चेतना की कहानी है जिसमें मिथिला के मछुओं के जीवन को उजागर किया गया है। उग्रतारा (1963) लघुकाय उपन्यास है जिसमें 'आंचलिक संज्ञा से मण्डित किया गया है परन्तु 'उग्रतारा' जेल जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। परन्तु जेल का वातावरण आंचलिक नहीं माना जा सकता।[52]

पात्र :

कथावस्तु को आकर्षण विश्वसनीय एवम् रोचक बनाने के लिये पात्रों का सनियोजन उपन्यासकार की भारी क्षमता का द्योतक है। पात्र या चरित्र चित्रण उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है। 'उपन्यास का उपजीव्य मानव है, जो अपनी नाना भावनाओं विविध कामनाओं और विभिन्न भंगिमाओं एवम मान्यताओं के साथ चित्रित होकर उपन्यास–शिल्प को गति देता है।'[53]

उपन्यास में पात्रों की अनिवार्य महत्ता सर्वमान्य है। एक श्रेष्ठ उपन्यासकार मनुष्य के व्यक्तित्व के अेकानेक रूपों गुणों व विशेषताओं को देखने–परखने का प्रयत्न करता है।[54]

अब पात्र वास्तविक हो या काल्पनिक, अस्थिर–चित्त और जटिल प्रकृति के हों या स्थिर–चित्त एवम् सरल प्रकृति, उपयोगी हो या अनुपयोगी, कम हों या अधिक, रस सम्बन्ध में मत–वैभिन्न हो सकता है किन्तु उसकी उपन्यास में अनिवार्य उपस्थिति निर्विवाद है। साथ ही यह कहना भी उपयुक्त है कि उपन्यास की सहज संवेद्यता इसी पर निर्भर करती है कि उसके पात्र कितने जीवन्त हैं। उनका काल्पनिक अस्तित्व सदा संदिग्ध रहेगा। पात्र संयोजन कौशल इसमें है कि संख्या में आवश्यकता से अधिक पात्र न हों ताकि उपन्यास के प्रभाव की एकात्मकता अक्षुण्ण रहे। चरित्र स्वयं विकसित न करके, तटस्थता रखे। घटनाओं की योजना करते समय पात्र की सामर्थ्य की सीमा तथा घटनाओं के अनुसार चरित्र गुणों में समन्वय रखा जाना उचित होगा।

यह आवश्यक नहीं कि पात्र केवल मानवीय नहीं हो। आंचलिक उपन्यासों में कथानक की पृष्ठभूमि का अंचल ही चरित्र बन जाता है। इस रूप में अन्य उपन्यासों में जो आंचलिक उपन्यासों में जीवन चरित्र होता है, यही ताजगी उपन्यास साहित्य में एक नयी विधा को जन्म देती है।

नागार्जुन के पात्र स्वयं बोलते हैं:

नारी पात्र :-

नागार्जुन सामाजिक स्तर पर अपनी औपन्यासिक कृतियों में नारी को रूढ़ियों से मुक्त कराकर पुरुष के समकक्ष सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने के प्रबल पक्षधर हैं। उनकी आस्था है कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये नारी की वर्तमान स्थितियों में पर्याप्त बदलाव नारी शिक्षा, नारी समानता, नारी-स्वातंत्र्य राजनीति में नारी की सक्रिय एवम् रचनात्मक भूमिका तथा नारी को स्वतंत्र आर्थिक आधार मिलने पर ही घटित हो सकता। उपन्यासकार ने भारतीय नारी के विषय में जो दृष्टिकोण अपनी कृतियों के माध्यम से व्यक्त किया है वह आज की परिस्थितियों में यथार्थपरक प्रासंगिक एवम् वांछनीय है।

आधुनिक समाज में नारी के सर्वांगीण विकास के लिये नारी-शिक्षा का महत्व अपरिमेय है। नागार्जुन ने नारी के उत्थान के सन्दर्भ में नारी शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया।

नागार्जुन के उपन्यासों का अधिकांशतः प्रतिपाद्य मिथिला जनपद का ग्रामीण अंचल है और वहां नारी के लिये शिक्षा अभी अत्यन्त सुलभ भी नहीं है। इनके उपन्यासों में सुशिक्षित नारियों का चित्रण कम ही हुआ है। उनके सभी चरित्र अनपढ़ होने पर भी नारी-शिक्षा के प्रति सचेत हैं एवम् नारी शिक्षा की उपादेयता को भली प्रकार समझते हैं। नागार्जुन की इस धारणा को 'बलचनमा' का नायक बलचनमा इस प्रकार व्यक्त करता है -'जब लड़कियां भी लड़कों की तरह पढ़ी लिखी होने लगेंगी तभी इस मुल्क का उद्धार होगा।'[55]

'वरूण के बेटे' की माधुरी राहत कार्य के सिलसिले में बाढ़–कार्य से समस्त मलाही गोढ़िहारी गाँव में होने वाले कार्यों में पढ़ी–लिखी लड़कियों के सम्पर्क में आती है और वह अपनी समझ और सोंच को समृद्ध करती है। उग्रतारा में नर्मदेश्वर की भाभी भी एक शिक्षित नारी के रूप में चित्रित की गयी है और वह वैधव्य के कष्ट से संतृप्त उगनी के मन को कामेश्वर की ओर उन्मुख करती है ताकि वह पुनः एक सम्माननीय जीवन व्यतीत कर सके। यह सब नारी के सुशिक्षित होने का परिणाम है।

नागार्जुन का विचार है कि शिक्षित नारी ही राजनीति के महत्व को समझ सकती है एवम् उसमें सक्रिय भाग ले सकती है। इस विचारधारा के समर्थन में वे 'पारो' उपन्यास में देश की शिक्षित महिला रत्नो सरोजिनी नायडू, विजय लक्ष्मी पंडित और कमता चट्टोपाध्याय का उदाहरण देते हैं। उनका मत है कि स्त्री कहलाने की अधिकारिणी वही नारी है जो शिक्षित हो और जो पढ़ी–लिखी नहीं है वह स्त्री कहलाने योग्य नहीं है।'[55]

'उग्रतारा' में नर्मदेश्वर की भाभी नये युग की एक ऐसी शिक्षित युवती हैं जो ग्रामीण स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करने के साथ–साथ युवक वर्ग को भी शिक्षा के प्रति प्रोत्साहित करती है।

नागार्जुन के नारी पात्र बहुत अधिक पढ़े लिखे नहीं फिर भी वे नारी शिक्षा के प्रति सचेत हैं। नारी को सुशिक्षित देखना ही उपन्यासकार का काम्य है।

नागार्जुन का उपन्यास 'कुंभी पाक' नारी की इस युगीन चेतना का उद्घोषक बनकर हमारे सामने आता है। चम्पा द्वारा भुवन को कहे गये ये शब्द–'घबड़ाकर शादी न कर लेना भुवन न किसी आश्रम में भर्ती होना। मुझे लगता है कि तुम इस सडांध से....... इस कुंभीपाक नरक से निकलकर दुनियां के समझदार लोगों के बीच पहुंच गयी हो..... वहां जहाँ नर–नारी मिल–जुलकर आगे बढ़ते हैं, जहां कोई किसी की बेबसी का फायदा नहीं उठाता कोई किसी को चकमा नहीं देता जहां पुरुष बल होगा तो स्त्री बुद्धि होगी। स्त्री शक्ति होगी तो पुरुष ज्ञान, भुवन तुम निश्चय ही इस संसार में पहुंच गयी हो।'[57]

'नई पौध' में बिसेसरी के सम्बन्ध में वाचस्पति से दिगम्बर का यह कथन–'विसेसरी बड़ी समझदार और बहादुर लड़की है। बोझा बनकर तुम्हारी गर्दन नहीं तोड़ेगी वह साथ रखोगे और माकूल ट्रेनिंग दोगे तो अच्छी से अच्छी साथिन बनेगी।"[58] स्पष्ट उदाहरण है कि पुरुष वर्ग ने बदली हुई परिस्थितियों में नारी समता का मुक्त समर्थन किया है। पारो उन्यास की नायिका यद्यपि विवश होकर दम घोटू वातावरण में दम तोड़ती है, लेकिन वह मौन रहती भी नारी समानता के लिये भावी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त कर जाती हैं। 'रतिनाथ की चाची' की गौरी और तरकलुवा में उसकी मां विषम–विषम परिस्थितियों से जूझते हुए उन्हें अपने अनुकूल बनाकर इस बात का परिचय देती हैं कि नागार्जुन की औपन्यासिक कृतियों में नारी समानता के महत्व को अनेक सन्दर्भों में रेखांकित किया गया है।

नागार्जुन की अधिकांश नारियों के स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बनने की छटपटाहट विद्यमान है इसलिये वे सामाजिक रूढ़ियों एवम् परम्पराओं से जूझते हुये भी आत्मविश्वास का परिचय देती हैं।

'कुंभी पाक' उपन्यास में युवा वेश्या का नरकीय जीवन व्यतीत करने के बाद राय साहब के सहयोग से टाइप करना सीखकर टाइप राइटर खरीद लेती है साथ ही गृह शिल्प कुटीर नामक दुकान खोलकर अचार, पापड़ और बीड़ियां बेचकर वह श्रम का उचित मूल्य प्राप्त कर स्वर्जित रोटी खाती है।[59]

नागार्जुन के सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में कही भी कोई ऐसा स्थान नहीं जहां नारी के प्रति उपन्यासकार की दृष्टि में कहीं भी छिछलापन व्यक्त हुआ हो। नारी के प्रति अपनी इसी घनीभूत आत्मीयता की दृष्टि के कारण वे प्रगतिशील उपन्यासों में उल्लेखनीय हैं।

पुरुष पात्र :–

नागार्जुन अपने पुरुष पात्रों के चित्रण में भी पूर्ण सतर्क हैं। आंचलिक उपन्यास के पात्र के चित्रण की प्रणाली व्यक्तिपरक न होकर वर्ग परक या जातिपरक होती है। पात्र अपना प्रतिनिधि नहीं होता, वह वर्ग या जाति के संस्कारों का प्रतिनिधित्व करता है, अतः उसकी निश्चित क्रिया–प्रतिक्रिया होती है तथा वह एक निश्चित दायित्व का वहन करता है। वह समान्य चरित्र में जीता है। अंचल के जन–जीवन के विभिन्न पहलुओं का प्रतिनिधित्व करता हुआ यह उपन्यास का 'अनुसन्धानिक माध्यम' होता है। इसलिये इन उपन्यासो के पात्रों का चुनाव दयित्वपूर्ण समस्या होती है और पात्र बहुलता का कारण भी अपने वैविध्य और समग्रता के साथ अंचल क्येंकि नायक होता है इसलिये वही एक जीवन्त पात्र बनकर खड़ा हो जाता है। शेष पात्र इसी पात्र के अंग बनकर आते हैं। सब उससे प्रभावित रहते है। यह नायक भी चरित्र चित्रण की दृष्टि से व्यक्ति नहीं होता अतः अन्य उपन्यासों का सा नायक भी नहीं होता। अन्य चरित्र भी विशिष्ट नहीं हो सकते। रेणु के उपन्यास इसका सुन्दर उदाहरण है।

जैसे विभिन्न मिट्टी के प्रकारों में लगाये गये पौधों में भिन्न–भिन्न सौन्दर्य और सुगन्ध होती है वैसे ही नये और आकर्षक पात्र हमें आंचलिक उपन्यासों ने दिये।''[60] आंचलिक उपन्यासों की गति चारों दिशा में होती है, अंचल की विविधता में समग्रता को चित्रित करने के लिये अनेक प्रकार के पात्रों का उपयोग करता है। अच्छे–बुरे ऊंचे नीचे सशक्त चरित्र, दुर्बल मानवीय चरित्र, प्रबुद्ध पिछड़े पढ़े लिखे अपढ़ आदि सभी प्रकार के पात्र तो उसको चाहिये। समानन के अलग–अलग वर्ग की आदतें संस्कार महत्वाकांक्षा आदि की व्यंजना के वे माध्यम होते है। इसके साथ ही वे गतिशील और जीवन्त चरित्र होते हैं। उनका व्यक्तित्व कुछ विराट हो जाता है। मैला आंचल और परती परिकथा में कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो अपनी व्यक्तिगत विशिष्टताओं के लिये पहचाने जाते हैं। इस प्रकार के पात्र वर्गीय कम और वैयक्तिक विशेषताओं से युक्त अधिक हैं। परन्तु इस प्रकार से स्थिर पात्रों का चित्रण आंचलिक उपन्यासों का लक्ष्य नहीं होता। यों

सभी आंचलिक उपन्यासकारों ने अपने पात्रों में सामाजिक संघर्ष के अस्तित्व के लड़ने की भावना को अधिक मुखरित किया है।

'बलचनमा' के माध्यम से नागार्जुन ने सर्वप्रथम ग्रामीण जीवन और भूमि व्यवस्था के साथ बनते बिगड़ते सम्बन्धों को उद्‌घाटित किया है। इस उपन्यास में सामन्तवादी शोषण और खेतिहर मजदूर की दयनीय अवस्था का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है, जो मर्म को छू लेता है। उपन्यास में बन्धुआ मजदूर ललुआ की निर्मम पिटाई की तस्वीर भी प्रस्तुत की गयी है। जोकि सामन्ती नृशंसकता कूरता एवम् अत्याचारों की ओर संकेत करती है ।उपन्यास का नायक बलचनमा इसी अभागे बाप का अभागा बेटा है जो सामन्ती शोषण की चक्की में पिसने के लिये ही पैदा हुआ है। वह अपनी आंखों के सामने जमींदारों के अत्याचारों के कारण पिता को दम तोड़ते देखा है। बलचनमा दुहाई सरकार कहती और गिड़गिड़ाती पैर पकड़ती दादी को भी देखता है, फफकती हुयी मां और बांस की टहनियों से पीटे जाने पर अपने बाप की उधड़ी हुई खाल और करुणापूर्ण सूरत को भी देखता है।

जीवन के कटु यथार्थ ने बलचनमा को क्रान्तिकारी बना दिया। यह बलचनमा का विद्रोह नहीं पुरानी पीढ़ी के समर्थक की यातनाओं को देखकर युवा पीढी का संघर्ष है। बलचनमा प्रेमचन्द्र का 'होरी' नहीं जो प्रत्येक परिस्थिति से समझौता करता है। सब कुछ सहते–सहते निराश हो जाता है और निराश जीवन में अपनी काया को शव की भांति ढोता फिरता है। उसमें हौसला है, मर्दानगी है वर्ग संगठन की समझ है जूझकर उत्सर्ग करने की चेतना है पर झूठे मूल्यों और बन्धनो को झेलने की भीरूता नहीं । बलचनमा प्रेमचन्द्र के होरी का उद्धार करता है या ललुआ का, क्योंकि ललुआ स्वयं भी होरी की भंति अत्याचार के समक्ष समर्पित है। प्रेमचन्द्र की पुरानी पीढ़ी (होरी) की संतान अब गोबर से भी तीखा संघर्ष करते हैं वह अपने पुरखों की भांति आस्थावादी नहीं है। वह तो स्पष्ट कहता है– भूख के मारे दादी और मां आम की गुठलियों का गूदा–चूर–चूर कर फांकती हैं, यह भी भगवान ठीक करते हैं और सरकार आप कनकजीर और

तुलसीफूल से खुशबूदार भात, अरहर की दाल, परबल की तरकारी, घी, दही, चटनी खाते हैं, सो भी भगवानक की ही लीला है।'[61]

1. 'युग धारा', प्रकाशकीय वक्तव्य, यात्री प्रकाशन, इलाहाबाद 1953
2. राल्फ फॉक्स, द नावल द पीपल, पृ.–67
3. हंस, अप्रैल 1932, पृ. 40
4. डा0 प्रभाकर माचवे, आज के लोकप्रिय कवि नागार्जुन, पृ.–6
5. नागार्जुन, इमरतिया, पृ.–35
6. नागार्जुन 'रतिनाथ की चाची' अभिनव प्रकाशन, पृ–30
7. नागार्जुन, पारो, कुलानन्द मिश्र द्वारा हिन्दी रूपान्तर, प्रथम संस्करण 1975, पृ–50
8. नागार्जुन, पारो, कुलान्द मिश्र द्वारा हिन्दी रूपान्तर, प्रथम संस्करण 1975, पृ.–35
9. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, पृ.–147
10. नागार्जुन, उग्रतारा, पृ.–55
11. नागार्जुन, कुंभीपाक, पृ–130
12. नागार्जुन, वरूण के बेटे, 1975, पृ.–36–37
13. चतुर्वेदी, द्वारका प्रसाद वर्मा (सम्पादक) संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ.–564
14. वोसाके वैल्यू एंड डेस्टिनी आफ द इनीविजु अज, पृ.–25
15. नागार्जुन, दु:खमोचन, पांचवी आवृत्ति, 1972, पृ.–94
16. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव प्रकाशन, 1973, पृ.–55
17. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव प्रकाशन, 1977, पृ.–55
18. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव प्रकाशन, 1977, पृ.–55
19. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव प्रकाशन, 1977, पृ.–44
20. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव प्रकाशन, 1977, पृ.–80–81
21. नागार्जुन, बाबा वटेसर नाथ, द्वितीय संस्करण 1971, पृ.–71–72
22. आनन्द प्रकाश मार्क्सवादी सैन्दर्य शास्त्र, पृ.–88
23. रजनीपामदत्त, इंडिया टूडे, पृ.–144
24. डा0 हेमेन्द्र कुमार पानेरी, सवातन्त्रोत्तर हिन्दी उपन्यास मूल संस्करण, पृ. – 83

25. फ्रेंक मोरेस इंडिया टूडे, पृ.–49

26. ओंकार नाथ श्रीवास्तव, हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष, पृ. – 113

27. डा0 चंडी प्रसाद जोशी, हिन्दी उपन्यास समाज शास्त्रीय विवेचन, पृ. – 320

28. डा0 शशि भूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां, पृ. – 34

29. नागार्जुन, बाबा वटेसर नाथ 1971, पृ. – 72

30. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव प्रकाशन, पृ.– 92

31. नागार्जुन, बलचनमा, द्वितीय संस्करण, पृ.– 178

32. नागार्जुन, वरूण के बेटे दूसरी आवृत्ति, पृ.–31

33. जवाहर लाल नेहरू, एटीन मंथस इन इंडिया, पृ–41

34. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव प्रकाशन संस्करण 1977, पृ–5

35. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव संस्करण 1977, पृ.–93

36. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव संस्करण 1977, पृ.–92

37. नागार्जुन, बलचरमा, द्वितीय संस्करण 1956, पृ.–99

38. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव संस्करण 1977, पृ.–200

39. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव संस्करण 1977, पृ.–92

40. डा0 चंडी प्रसाद जोशी, हिन्दी उपन्यास, समाजशास्त्री विवेचन, पृ.–388

41. डा0 पट्टाभि सीता रमैया, कांग्रेस का इतिहास (भाग–2), पृ.–16

42. डा0 पट्टाभि सीता रमैया, कांग्रेस का इतिहास (भाग–2), पृ.–73

43. ए0 आर0 देसाई सोशल बैंक ग्राउन्ड आफ इन्डियन नेशनलिज्म, पृ.–183

44. डा0 सुरेश सिन्हा, उपन्यास का उद्भव और विकास, पृ.–510

45. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, अभिनव संस्करण 1977, पृ.–157

46. डा0 ईश्वरी प्रसाद, मार्डन हिस्ट्री आफ इन्डिया, पृ.–458–59

47. नागार्जुन, बाबा वटेसर नाथ, द्वितीय संस्करण 1972, पृ.–120

48. डा0 बेचन नया पथ, अप्रैल द्वितीय संस्करण 1972, पृ.–120

49. नागार्जुन, उग्रतारा, तीसरा संस्करण, पृ.–85

50. डा0 शशि भूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां पृ.–131

51. वही

52. डा0 आदर्श सक्सेना, हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों और उनकी शिल्प, पृ.–101

53. डा0 प्रेमाटनागर–हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य, पृ.–20

54. प्रेमचन्द्र, कुछ विचार पृ. –30

55. नागार्जुन, बलचनमा, पृ.–132

56. नागार्जुन, पारो, पृ.–62

57. नागार्जुन, कुम्भीपाक, पृ.–112

58. नागार्जुन, नई पौध, पृ.–117

59. नागार्जुन, कुंभीपाक, पृ.–134

60. श्री महेन्द्र, हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और विवेचन, पृ.–140

61. नागार्जुन, बलचनमा, पृ.–46

अध्याय-5

नागार्जुन की काव्य यात्रा

कवित्तव :

नागार्जुन की प्रतिभा साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में मिलती है। उपन्यास, कविता निबन्ध आलोचना तथा बाल साहित्य में भी उन्होनें जमकर लिखा है। मैथिली हिन्दी और संस्कृत भाषाओं में उन्होने कालजयी रचनाएं लिखी है। 'दीपक' 'विश्व बन्धु' और 'कोमी आवाज' जैसी पत्रिकाओं के यशस्वी सम्पादक रह चुके हैं।

मैथिली और हिन्दी साहित्य पर समान अधिकार रखने वाले बाबा नागर्जुन मूलतः कवि हैं। उन्होने अपना साहित्यिक जीवन एक कवि के रूप में ही प्रारम्भ किया था। 'वेदेह' उपनाम से नागार्जुन ने मैथिली में सबसे पहले कवितायें लिखीं थीं। उनके काव्य का प्रारम्भ सन् 1930 से माना जाता है । भ्रमण करना उनका मुख्य उद्देश्य था। इसीलिए मैथिली में 'यात्री' नाम से उन्होने कवितायें लिखी हैं।

उनका लेखन अनगिनत दीपकों की एक प्रकाश पंक्ति और अंधेरे के लिए ज्योति पुंज के समान है। उनका सम्पूर्ण कृतित्व इसी कालितशायी मानव तत्व की अर्न्तनिहित अल्लासित तरंगों की खोज यात्रा है। वह डा0 नगेन्द्र, डा0 रामविलास शर्मा, डा0 नामवर सिंह की श्रेणी के समीक्षक फणीश्वरनाथ 'रेणु', प्रेमचन्द्र, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा की श्रेणी के कवि हैं।

नन्द किशोर के शब्दो में :

'नागार्जुन की हिन्दी और मैथिली कवितायें शिल्प की दृष्टि से आश्यर्चजनक रूप से समृद्ध हैं। आधुनिक हिन्दी कविता में निराला शिल्पगत वैविध्य की दृष्टि से निर्विवाद रूप में विलक्षण कवि हैं। उनके बाद यह वेविध्य किसी कवि में मिलता है तो नागार्जुन में।'

नागार्जुन की प्रगतिशीलता चूंकि समाजिक इतिहास से सीख और प्रेरणा लेकर विकसित हुई है। इसलिए उसमें जबरदस्त क्रांतिकारी कूद के बदले एक कमिक वैचारिक विकास दिखाई देता है। खरगोसी प्रवृत्ति के वे सर्दव विरोधी रहे । उन्होनें लोगों का ध्यान उन सिद्धान्तों की ओर खीचनें का प्रयास किया जो भारतीय जनवाद के प्रारम्भिक

सोपान हैं। वे किसी बनावटी प्रगतिवादी के साझें में न आकर बल्कि सारे लेखन को परिवर्तन के मंच के तौर पर प्रयोग में लाते हैं। जिन्होने कबीर को वाणी को डिक्टेटर कहा वे जानते हैं कि बधें–बंधाये दायरे में शब्द प्रयोग की सुविधा अधिक है और इसमें खतरे भी नहीं है। कबीर ने यह खतरा जान–बूझकर मोल लिया था। अपने समय में बर्ड्स बर्थ जैसे कवियों ने जब साधारण जन भाषा का प्रयाग करना चाहा था, जब इन्हें भी इस खतरे को चुनौती देनी पड़ी थी। उस समय भी यथास्थितिवादियों को कष्ट हुआ था पर स्वतंत्र रचनाकार इन चीजों की भला कब परवाह करता है। जिस नागार्जुनी व्यक्तित्व ने अपना पूरा जीवन उस जनता के चरणों में अपिर्तत कर दिया है, जो प्रथमतः जन संघर्षों से जुड़ा हुआ है, जिसका अलग से अपना कोई सुख–दुख नहीं है, जिसकी अलग अपनी कोई जाति नहीं जिसे पिता, पत्नी, पद के मोह अपने पास में कभी बांध नहीं पाये, वह ऐसे ही आदर्श कवि, कथाकार वामपंथ को उन्होनें जन संघर्षों के जूझने का साधन बनाया।

वह तुलसी से लोकान्मुखी कवि, प्रेमचन्द्र से यथार्थोन्मुखी आदर्शवादी और पाब्लोनेरूदा काजी नजरूल इस्लाम और सुब्रह्मण्यम् भारती सदृश्य आग उगलने वाले क्रांन्तिदर्शी जनकवि हैं। जनोन्मुखी इस रचनाकार के बारे में केदार सिंह की यह टिप्पणी कितनी सार्थक लगती है। मेरी धारणा यह है कि हमारे यहां भी जितना सचेत और जागरूक संवेदनशील वह रचनाकार होता है, जो जनता से आया है इतना कोई और नहीं। जैसे बाबा नागार्जुन का उदाहरण है। उनकी कविताओं में वही बातें मिलती है जो जन आन्दोलन में उभरती हैं।' नागार्जुन की काव्य परम्परा लोक और शास्त्र की संश्लिष्ट सहकारिता का परिणाम है।

उनकी कविता का वास्तविक पटल वस्तुतः सर्वहारा का संसार कहा जा सकता है। बचपन से ही संघर्ष करने वाले अभावों और असुविधाओं की जिन्दगी जीने वाले इस जनकवि की सहानुभूति ग्रामीण परिवेश की सरलता तथा ग्रामवासियों के प्रति अधिक परिलक्षित होती है और अनुभवन प्रबलता के आधार पर उनकी रचनाओं में बाल्मीकीय

कोच सम्बेदना का स्वर श्रोत फूटा है। अपने मित्र मुरलीधर शर्मा की लड़की के गूंगेपन के विषय में उनकी भावाभिव्यक्ति दर्शनीय है:-

'वह बोल नही सकती, लेकिन उसकी भी अपनी भाषा है। काफी है सूझ-बूझ इसमें सुख है, दु:ख है अभिलाषा है।'

उनकी कविताओं के दायरे में खेतिहर मजदूर, किसान, बोझा ढोने वाले श्रमिक, रिक्शा चालक, कुली, चटकल मजदूर, ड्राइवर, भिखारी, मूक वाणी वाली नारी, नंग धंड़ग लड़के, फसल रोपती और काटती किशोरियां, मछली मारते बच्चे, असहाय वृद्ध विधवा, वैश्या, परित्यक्ता, ऋणगस्त कृषक, सैनिक देशभक्त, नि:श्चल प्रेमी, रूढ़ियां तोड़ते युवक -युवतियां सभी आते हैं। नागार्जुन सर्वहारा की संस्कृति को जानते हैं और उनकी आधारभूत विशेषता है सामाजिक जीवन शैली, कुण्ठाहीन जीवन और पारस्परिक हित लाभ। सवार्थपरक पूंजीवादी शैली जहां शोषण और दमन पर आधारित है वहीं सर्वहारा की सामाजिकता का अर्थ है उसकी श्रम परायणता । अपनी प्रखर धर्मिता और लोक निष्ठा के कारण वह अपनी रचनाओं में कला और कलागत सौन्दर्य को भी भूल जाते हैं।

प्रगतिशील लेखक के इस रंग कर्मी और रंगधर्मी की प्रतिबद्धता 'बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय' है। 'वह किसी भी विचारधारा से अपने को बांधकर रखने वाले निर्द्वन्द्व, मस्त और स्वतंत्र स्वभवपरक इन्सान है।' नक्सलियों के प्रति सद्भाव रखते हुए वह आशवादी भाव प्रकट करते हैं:-

'इनका मुक्ति पर्व कब होगा, कब होगी इनकी दीवाली।
चमकेगी इनके ललाट पर, भईया कब कुम-कुम की लाली।।'

उनकी व्यंग्योक्तिपूर्ण रचनायें व्यंग्य साहित्य में 'क्लासिक' कही जा सकती है। उनका पैनोपन ज्यादातर सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर होता है।

नागार्जुन जन कवि के रूप में भी महत्वपूर्ण तो है ही, एक बड़े कवि के रूप में भी महत्वपूर्ण हैं जिसके लिए कविता का संगठन उपेक्षणी नहीं होता। कभी अत्यनत साधारण और कभी अराजक दिखने वाली नागार्जुन की कविता में भी जीवन का आवेग

इतना प्रकट होता हैं, वह वहीं कवि कर्म को सार्थक बना देता है। भारतीय वाचिक कविता की परम्परा को नया जीवन देने वाले नागार्जुन कविता में चाक्षुष संवेदना को भी सम्यक प्रमाणित कर सके। विम्ब उनके यहां कविता का सीमित अलंकरण नहीं है, वह उनकी कविता को नाटक में बदलने का गुणात्मक काव्य धर्म है।

जनता के पक्ष में कवितायें लिखने वाले और भी है। पर जनता को अपने के आत्मसात पर कविता लिखने वाले नागार्जुन अपने ढंग के अकेले कवि है। जनता के जीवन में हर दिन, हर क्षण घटने वाला यथार्थ नागार्जुन की कविता का यथार्थ हैं, पर यह तात्कालिक प्रतिकिया को कविता में प्रत्यक्ष करने वाली कवि–दृष्टि ऐतिहासिक यथार्थ के गहरे बोध या विवेक का परिणाम हैं।

कृतित्व :

उपन्यासकार नागार्जुन बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति हैं उन्होंने उपन्यास काव्य आलोचना निबन्ध अनुवाद बाल साहित्यिक विधाओं को अपनी लेखनीय का विषय बनाया है हिन्दी मैथिली और संस्कृत तीनों ही भाषाओं में उन्होंने साहित्य की रचना की सम्पादक के रूप में वे अपना स्थान बना चुके हैं।

उपन्यासेत्तर साहित्य :

साहित्य सदन अनोहर (पंजाब) से निकलने वाली मासिक पत्रिका दीपक का उन्होंने सन् 1935 से सफलता पूर्वक सम्पादन किया इसके अतिरिक्त लाहौर (पाकिस्तान) से निकलने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'विश्व बन्धु' हैदराबाद (सिन्ध) से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'कोमी आवाज' का भी उन्होंने सन् 1942–43 में सम्पादन किया उनका उपन्यासेत्तर साहित्य इस प्रकार है।

हिन्दी काव्य संग्रह :

युगधारा सतरंगी पंखो वाली, प्यासी पथराई आंखे, विप्लव देखा हमने, तुमने कहा था, हजार–हजार बाहों वाली, पुरानी जुतियों का कोरस, रत्नगर्भा, भस्मासुर हिन्दी खण्ड काव्य। मैथिली में काव्य संग्रह किया पत्रहीन नान गाछ।

समीक्षात्मक जीवनी : एक व्यक्ति एक युग निराला।

स्फुट निबन्ध संग्रह : अन्य हीनम् क्रिया हीनम्।

कहानी संग्रह : आसमान चन्दा तारे।

बाल साहित्य : सयानीकोयल, तीन अहदी, प्रेमचन्द्र, अयोध्या का राजा वीर विक्रम।

अनुवाद : गीत गोविन्द, मेघदूत, विद्यापति के गीत, विद्यापति की कहानियां।

नागार्जुन आधुनिक युग की नव चेतना के कवि हैं। उन्होनें एक ओर तो वर्ग संघर्ष से समस्त मानवों के प्रति गहन संवेदना व्यक्त करते हुए इसके लिए उत्तरदायी व्यवस्था के विरूद्ध तीव्र आक्रोश प्रकट किया और दूसरी और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी बहुसंख्यक जनता को अभावों, कष्टों एंव पीड़ाओं में लीन देखकर स्वदेशी शासकों के अनुचित कार्यों के प्रति प्रखर एवं प्रकृष्ट व्यंग्य वाणों की बौछारें की हैं।

राहुल जी से प्रेरित होकर जहां नागार्जुन ने राजनीतिक क्षेत्र में पदार्पण किया, वहीं निराला जी से प्रेरित होकर अपने साहित्यिक क्षेत्र में कलम संभाली। इसी कारण राजनीतिक दृष्टि से जहां नागार्जुन पूर्णतया साम्यवादी विचारधारा की ओर उन्मुख हुए, वहीं साहित्यिक दृष्टि से वे काव्य की उस जनवादी विचारधारा को लेकर चले, जिसमें यर्थाथ के सुदृढ़ धरातल पर मानव- जीवन के चित्र अंकित किये गये । इसी कारण नागार्जुन की कविताओं में निराला का सा आक्रोश हैं, निराला का सा क्षोभ है, निराला की सी अक्खड़ता है, निराला का सा तीक्ष्ण व्यंग है, निराला की सी तड़पन है तथा हलचल है, निराला का सा क्रान्ति का स्वर है और विद्रोह की भावना तथा फटकार है, निराला की सी ललकार है तथा कहीं निराला की सी हुंकार भी है। निसंदेह निराला ने जिस प्रकार आधुनिक युग में अपने साहित्यिक माध्यम से नयी चेतना जागृत की थी, नयी क्रान्ति को प्रेरणा दी थी, साम्राज्यवाद का घोर विरोध किया, मानव-प्रेम का प्रसार किया था। जन जीवन को उन्नत एवं उत्कृष्ट बनाने के लिए प्रोत्साहन दिया था, प्राचीन रूढ़ियों को समाप्त करने के लिए अभियान चलाया था, परम्पराओं का उच्छेदन किया था, भेद-भाव मिटाने का प्रयत्न किया था और 'नव गति, नव लय, ताल, छंद, नव धरती

जनता और श्रम के गीत गाये थे, उसी प्रकार नागार्जुन ने पीड़ित जनता के कष्टों को स्वर प्रदान किया है, अभावग्रस्त निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट की, अभावों में लालित–पालित तथा कष्टों से जूझने वालो के प्रति संवेदना व्यक्त की है, समाज की यंत्रणाओं और पीड़ाओं से संत्रस्त मानवों के उत्थान के लिए क्रान्ति का आह्वान किया है, उच्च समाज के शोषण–कार्यों का विरोध किया है और वीरता के साथ संघर्षरत सर्वहारा वर्ग का स्तवन किया है।'[1]

कविवर नागार्जुन के हृदय में भारतीय जन–जीवन के लिए अटूट स्नेह भरा हुआ है, और भारत भूमि के अणु–अणु एवं कण–कण के प्रति अगाध श्रद्धा भक्ति भरी हुई है। इसीलिए इस विद्रोही कवि ने जन–जीवन को यातना एवं प्रताड़ना से बचाने के लिए क्रान्ति का आह्वान किया, जन जीवन को शोषण एवं दासता की बेड़ियों से मुक्त करने के लिए शंखनाद किया है, जन जीवन को सुख–सुविधायें प्रदन करने के लिए अन्याय एवं अत्याचार का विराधे किया है, जन जीवन को शान्ति एवं समृद्ध प्राप्ति कराने के लिए ही आकमण का डटकर मुकाबला कराने के लिए प्रेरित किया, जन जीवन को समुन्नत बनाने के लिए ही मांओ के 'खुनी दांत' उखाड़ने के लिए प्रोत्साहन दिया है। जन–जीवन को वैभवशाली बनाने के लिए ही अयूब के 'हिटलरी गुमान' को झाड़ने के लिए प्रेरित किया है। इस तरह कवि ने जन–जीवन को अपनी कविता का माध्यम बनाया है और इसीलिए नागार्जुन सर्वहारा कविता की धारा को तीव्र कर देते हैं। उनमें मजदूर वर्ग की संघर्षशील चेनता समुन्नत रूप में प्रकट हुई है। पूंजीवादी चट्टानों से टकराती, भंयकर संघर्षों में तपती, मजदूर –वर्ग की हिमायत करती हुई नागार्जुन की काव्यधारा जनवादी परम्पराओं के आगे बढी है।'[2]

कवि नागार्जुन कम्युनिष्ट पार्टी के सदस्य थे वे अपने विवेक का शत्रु कभी नहीं बने, न ही अपना 'दिल दिमाग रेहन' रखा। उन्होंनें संर्वहारा को भी पूर्ण योगदान दिया, चाहे राजनीति हो या साहित्य। इसी कारण सिद्धानतवादिता और मानवीयता के बहस से अलग हैं। उन्हें केवल उत्कृष्ट मानवता की तलाश है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए समय एवं परिस्थिति अनुकूल मानवीय संवेदनाओं एवं भावनाओं से घिरकर,

पार्टी के सीमित दायरे तोड़कर, कवि अलग खड़ा हो जाता है। चीन द्वारा भारत पर आक्रमण से कवि क्षुब्ध हो उठा और चीन के विरूद्ध उसकी लेखनी मुखर हो उठी। ऐसे अनेक स्थल है जहां कवि अपने अनुभव को ठोस एवं मूर्त रूप दे दिया है। कुछ लोगों ने इसे चि.न्तन का भटकाव या अपरिपक्व दर्शन मान लिया है।

विनोदी स्वभाव, फक्काड़ाना अन्दाज, एकहरा बदन सस्ता खादी का कुर्ता–पजामा, सामान्य कद, ऑखों पर चशमा, पैरों में चप्पल, जोशीली मुख मुद्रावलि, कबीर की भांती मस्तमौला, पीड़ितजनों के कष्टों से व्यथित, मैथिल औघड़ स्वतः के प्रति लापरवाह किन्तु समाज के लिए जागरूक शोषित, असहाय जंनता के प्रति संवेदनशील, ऐसे व्यक्ति का नाम है– नागार्जुन।

'उनके पास अनुभव और विचार की वह स्वर्जित भूमि है, जहां से वे प्रहार करते हैं और हर बार जब वे प्रहार करते हैं तो कुछ न कुछ बहुत मूल्यवान दांव पर लगा होता है जिसे वे हर कीमत पर बचा लेना चाहते हैं। अक्सर जो दॉव पर लगा होता है वह देश का सबसे पीड़ित जन।'[3]

कवि नागार्जुन में न ब्राहमण की हठधर्मिता है, न बौद्ध भिक्षुओं की निरीहता, न अन्य वामपंथी साहित्यकारों की भांति लिजलिजी कान्ति–चेतना, वरन् प्रचण्ड ज्ञान से दूसरों की आवाज बन्द कर देने की शक्ति है और कबीर की भांती डांट–फटकार कर सबको सुनाने का साहस। कवि नागार्जुन में रहनुमा या मशीहा बनने की ललक नहीं है, न किसी प्रकार दर्प।

हिन्दी– काव्य साहित्य में नागार्जुन का प्रवेश एक कान्तिकारी कवि के रूप में होता है। वे सच्चे अर्थो में सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते दिखायी देते हैं उनका सम्पूर्ण प्रगतिवादी काव्य जीवन के यथार्थ पर आधारित है। उन्होंने अपने काव्य में सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्षों एंव स्तरों को उनके यथार्थ रूप से चित्रित किया हैं, उनकी दृष्टि व्यापक और भावनाएं उदात्त है। जहां उनका अपनी मातृभूमि 'मिथिला' के प्रति अटूट प्रेम है, वहाँ उनकी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय लोक कल्याणकारी भावनाएं भी

उनके काव्य में स्थान–स्थान पर देखी जा सकती हैं। तीखा व्यंग्य ही नहीं, पर सामाजिक रूढ़ियों के प्रति किये गये व्यंग्य भी बड़े तीखें और हृदयस्पर्शी है। युगधारा में उनके काव्य की ये समस्त विशेषताएं सहज ही देखी जा सकती हैं। नागार्जुन हिन्दी के प्रगतिवादी कवियों में अग्रणी हैं। उन्होनें जीवन के तुच्छ से तुच्छ अंशों और अनुभवों को कविता में बदला और कविता की भाषा को बोल–चाल की भाषा के करीब लाया। जैसे धूप में लेटी हुयी मोटी तगड़ी मादा सुअर अपने बच्चों को दूध पिलाते हुए भव्य और गरिमामय दृश्य में बदल जाती है। दो छोटे पदों में नागार्जुन अकाल और उसके बाद की स्थिति को पूरी तीव्रता से व्यक्त करते हैं।

नागार्जुन में भाषा के अनेक स्तर हैं। उनकी कविताएं भाषा का अपूर्व महोत्सव है। जीवन के जितने प्रसंग हैं, भाषा की उतनी ही भंगिमाएं भी। नागार्जुन ने छन्दों और लयों का भी मनोवांछित उपयोग किया है।

नागार्जुन ने राजनीतिक विषयों पर अनेक कविताएं लिखी है। देश–विदेश की समसामयिक घटनाओं पर संभवता सबसे ज्यादा कविताएं उन्होने ही लिखी हैं। नागार्जुन जन–मन के सजग चितेरे हैं। शोषकों और अत्याचारियों के लिए उनके यहां प्रतिहिंसा का स्थायी भाव है।

नागार्जुन की रचनाएं :

हिन्दी में नागार्जुन की पहली रचना 'राम के प्रति' सन् 1935 में लाहौर से निकलने वाली पत्रिका विश्व–बन्धु में प्रकाशित हुयी थी। पुस्तक के रूप में 'विधवा विवाह' तथा 'बूढ़ा दूल्हा' जो कि रेल की गाड़ी में बेंची गयी, प्रकाशित हुई । आज नागार्जुन के जो काव्य संग्रह उपलब्ध हैं, निम्नलिखित हैं–

(1) युगधारा,

(2) सतरंगे पखों वाली

(3) प्यासी पथराई आखें

(4) तुमने कहा था

(5) खिचड़ी विप्लव देखा हमने

(6) हजार हजार बांहों वाली

(7) रत्नगर्भा और

(8) भस्मांकुर (खण्डकाव्य)

मैथिली काव्य–

(1) चित्रा और

(2) पत्रहीन नग्न गाछ (यह कृति हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा पुरष्कृत है)

इस प्रकार कुल मिलाकर बैधनाथ मिश्र, ठक्कन, बैदेह, यात्री और नागार्जुन नामों की यात्रा करते हुए आज के बाबा का निर्माण हुआ है जो रीझ गये तो शिव की भांति एवमस्तु रूठ गये तो दुर्वासा की तरह।

नागार्जुन की काव्य यात्रा के कई पड़ाव हैं, अनेक धरातल एवं अनगिनत मोड़ हैं। नागार्जुन की कविताएं वैसे तो सन् 1934 के आस–पास आनी शुरू हो गयी थी किन्तु पुस्तक रूप में इनका पहला संकलन 'युगधारा' सन् 1953 में प्रकाशित हुआ। यह कविताएं समतल–असमतल, गुहा गह्वरों को फंलागती हुयी सतत् गतिशील रहीं हैं। अनेक चरमोत्कर्ष एवं ह्रासमान प्रवृत्तियों से भी गुजरती है।

आगे हम उनकी काव्य कृतियों का संक्षिप्त विवरण जनवादी चेतना के सन्दर्भ में जोड़ते हुए, प्रस्तुत करेंगे।

युगधारा :

'युगधारा' काव्य संग्रह में कवि का जनवादी रूप निखर कर सामने आया है। प्रगतिशीलता के धरातल पर कवि सर्वहारा के साथ जुड़ा है साथ ही तिजारती सभ्यता के पोषक एवं सामान्यजन के शोषकों के प्रति अति कटू हो उठा है। इस संग्रह की कुल 38 कविताओं में 'विजयी के वशंधर', 'पक्षधर', 'जनकवि', 'प्रेत का बयान', 'भूस का पुतला', 'छोटे बापू' एवं 'जयति कोरिया देश' इस बात के प्रमाण हैं। 'विजयी के वंशधर' कविता में भद्र लोक के नुमाइन्दों, जमींदारों की खोखली शान–शौकत, आत्म–प्रदर्शन एवं

जनता का शोषण वर्णित हैं । 'नयी पौध' में सामाजिक असामानता का स्पष्ट चित्र हैं जो समाज का यर्थाथ प्रस्तुत करता है । 'पक्षधर' और 'जनकवि' में कवि पक्षधरता की स्पष्ट घोषणा करता है। इस संग्रह की पहली कविता में ही कवि जन-वन्दना करता है, जो उसके लिए सर्वोपरि है। 'प्रेत का बयान' , 'भूस का पूतला' एवं 'स्वदेशी शासन' कविता में भारत की दुर्दशा एवं उसके लिए उत्तरदायी व्यक्तियों की सटीक पहचान करायी गयी है। 'तुम जगी संसार जाये जाग' एवं 'जया' शीर्षक कविताएं उदात्त दाम्पत्य एवं वात्साल्य भावों की सफल अभिव्यक्ति है। प्रकृति के दृष्य 'बरस पड़ी है', 'जयति जयति बरसात', बादल को घिरते देखा है एवं 'रजनीगंधा' कविताओं में अनुपम है। इस संग्रह की कविताओं में 'प्रेत का बयान', भूस का पुतला', विजयी के वशंधर' जो महारत हांसिल कर सकी है उसकी तुलना में 'संत बिनोबा', 'कवि कोकिला' जैसी कविताएं बहुत हल्की पड़ती हैं। कुल मिलाकर 'युगधारा' में नागार्जुन प्रगतिशीलता के धरातल पर सर्वहारा के साथ जिस सोच को लेकर खड़े हैं, वे निराला की यादों को ताजा कर रहे हैं।

सतरंगे पखों वालीः

नागार्जुन का दूसरा काव्य संग्रह 'सतरंगे पंखों वाली' सन् 1956 में प्रकाशित हुआ। इस काव्य-संग्रह के द्वारा नागार्जुन को एक नयी पहचान मिली। सामान्य जनता की भूमि से जुड़कर 'यह कैसे होगा', 'देखना ओ गंगा मैया', 'खुरदरे पैर', ऐसा क्या फिर-फिर होगा' 'जो जन-मन सजग चितरे' जैसी कविताओं की रचना करते हैं, इस काव्य संग्रह का महत्व अन्य काव्य-संग्रहों से कुछ अलग कवि की दाम्पत्य प्रेम की कविताओं के कारण है। 'तन गयी रीढ़', 'वह तुम थी', 'क्या अजीब नेचर पाया है', 'सिन्दूर तिलकित भाल' अपने ढंग की अनूठी कविताएं हैं। हिन्दी काव्य – साहित्य में ऐसी रचनाएं अन्यत्र नहीं है। 'जयति नख रंजनी' , 'सौन्दर्य प्रतियोगिता' और 'तू चक्कर लगा आया तमाम मन' आदि कविताओं में पुरानी चुटकी काटने वाली पद्धति है। 'कैसा

लगेगा तुम्हे', 'तन मन के सजग चितेरे' तथा 'तुम किशोर, तुम तरूण' कविताएं कवि की सहृदयता की परिचायक है।

> "ओ जन–मन के सजग चितेरे–
> जन सस्कृति का प्राण केन्द्र पुस्तकागार वह
> के़न नदी का जल–पोखर नवाब का
> ...वहीं पास में भिखमंगों का चिर अधिवेसन।"[4]

इसी प्रकार–

> 'कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास
> कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
> कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
> कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
> दाने आये घर के अन्दर कई दिनों के बाद।
> X X X X X
> कौए ने खुजलाई पॉखें कई दिनों के बाद।"[5]

प्यासी पथराई आँखें :

नागार्जुन का तीसरा काव्य संग्रह 'प्यासी पथराई आँखें' सन् 1962 में प्रकाशित हुआ। यह काव्य संग्रह नागार्जुन की सोच और दृष्टि जो 'युगधारा' और 'सतरंगे पंखों वाली' में बनी थी, को विकसित करता है। यहां कवि की दृष्टि यर्थाथ के धरातल पर और अधिक पुष्ट हुई है। इस संग्रह की कवितायें सशक्त मानी जाती हैं 'तालाब की मछलियाँ', 'काली माई', 'भारती सिर पीट रही है', 'धिन तो नही आती' अपने आप में बेचोड़ कवितायें हैं।

भारतीय पुरूष प्रधान समाज में शोषितों का एक अंग नारी भी है। 'तालाब की मछलियां' शीर्षक कविता में इसी नारी शोषण की विरदावली है। जय जमींदारी प्रथा की बुराईयों को उधेड़ने के साथ ही साथ पुरूषों के स्वार्थपरक विलासी भावों को बेनकाब

करती है। नारी जो समाज का अनिवार्य किन्तु उपेक्षित अंग है, नागार्जुन जैसे सजग व्यक्ति की दृष्टि से कैसे बच सकती है। 'कालीमाई' ,'घिन्न तो नहीं आती' कवितायें नागार्जुन को सर्वहारा से जोड़ती है। ट्राम के धक्के में पसीने से बदबू करता हुआ शरीर, दूध से स्वच्छ धुले लिबास वालो से सटता है तो व्यंग्य वाण चलाकर वे भद्रवर्ग को तिलमिला देते हैं। यह काव्य संग्रह नागार्जुन के काव्य उत्कर्ष का चरम बिन्दु रहा है।

'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' एवं 'तुमने कहा था':

सन् 1980 में नागार्जुन के ये दोनों काव्य संग्रह एक साथ प्रकाशित हुए। समाज की जो पकड़ एवं सोच पूर्व वर्णित काव्य संग्रहों में रही है वह यहां नहीं पाई जाती। इन काव्य संग्रहों की अधिकांश कविताएं राजनीति एवं राजनीतिज्ञों से जुड़ी है। खासकर इंदिरा गांधी पर कवि विशेष कटु हो उठा है। इसलिए कुछ कविताएं नारेबाजी सी लगती हैं। इसका प्रमाण 'इन्दुजी क्या हुआ आपको' 'जी हां यह सबकी चहेती है' जो जय प्रकाश की समग्र कांति के दौरान पटना की सड़को पर जुलूस में गायी जाती थी। नागार्जुन ने इन्दिरा के शासन में बहुत कष्ट झेला था, शायद इसी कारण वे इतने कटु हो उठे थे। गांधी , नेहरू, जयप्रकाश, बिनोवा, मोरार जी आदि के व्यक्तिगत चरित्रों पर भी कटाक्ष हुआ है। इन तत्कालिक घटनाओं को लक्षित करके लिखी जाने वाली कविताओं मैं कवि का लेखन प्रश्नांकित अवश्य हुआ है। क्या नागार्जुन का सुरूचि सम्पन्न पाठक ऐसी हल्की व्यंग भरी कविताओं को पढ़कर संतुष्ठ होगा? ये कविताएं इतिहास से जुड़ी होने के कारण भले ही महत्व रखती हों किन्तु सामाजिक चेतना की जो मांग हम नागार्जुन जैसे कवि से करते हैं, वह यहां नही मिलती। इन काव्य संग्रहों की कविताएं, 'युगधारा', 'सतरंगे पखों वाली' एवं 'प्यासी पथराई आँखें' की तुलना में कहीं भी खड़ी नहीं होती । इसे नागार्जुन की चेतना की ह्रास तो नहीं कहा जा सकता, परिस्थिति जन्यतावश ऐसी कविताएं लिखी गई है।

ऐसा भी नहीं है कि दोनों काव्य – संग्रह का महत्व नहीं है वरन् इनमें भी कुछ कविताएं ऐसी हैं जो नागार्जुन की पहचान कायम रखती हैं। 'सूरज सहम कर उगेगा', 'सिके हुए भूट्टे' 'नेवला', 'प्रतिबद्ध हूँ', 'वेतन भोगी', 'टहलुआ नहीं', 'हुकूमत की नर्सरी', 'पुलिस आगे बढ़ी', 'हरिजन गाथा', 'शासन की बन्दूक', 'आये दिन बहार के', 'अब तो बन्द करो हे देवि यह चुनाव का प्रहसन' तथा 'घर के बाहर निकलोगी कैसे लाजवंती' आदि कविताओं में नागार्जुन अपनी शानी नहीं रखते। 'सूरज सहम कर उगेगा' राजनीतिक होते हुए भी बीहड़ कविता है।

हजार –हजार बांहो वाली :

नागार्जुन का काव्य संग्रह 'हजार–हजार बांहो वाली' सन् 1981 में प्रकाशित हुआ जिसमें शताधिक कविताएं हैं। इन कविताओं में कुछ पूर्व प्रकाशित संग्रहों से भी ली गयी है। यह काव्य–संग्रह बाबा की छवि को प्रतिष्ठापित करने में पूर्णतः सक्षम है। इसमें अलग–अलग मूड की कविताएं हैं । सामान्य जन के साथ प्रतिबद्ध 'कवि मन करता है', वणिक्य पुत्र, 'मैं हूं सबके साथ', 'मैं कैसे अमृत बरसाऊँ', 'तीस हजारी कार', 'ऐक्शन में आ गये लाख–लाख', 'सुलग रहा वियतनाम', 'मास्टर', 'नथुने फुला–फुला के' एवं 'हम भी समझदार थे' आदि कविता लिखते हैं, जो वास्तव में उन्हें सामान्य जनता का मसीहा सिद्ध करने वाली रचनाएं हैं। 'उजली हंसी के छोर' एवं 'बलाका' जैसी कविताओं की रचना में कवि पूर्ण सफल रहा है। उनका चिरपरिचित कलात्मक व्यंग्य एवं चुटकी लेनी वाली शैली दोनों ही यहां विशेष रूप से देखें जा सकते हैं। इस काव्य–संग्रह में नागार्जुन की कविता का एक धरातल और भी विकसित हुआ है, वह है कवि का वामपंथी स्वर।

'कुल मिलाकर नागार्जुन ने समय की धार में बहने वाली कविताएं नहीं लिखीं है। इसका प्रमाण यह है कि आज अर्धशती से अधिक का अन्तराल उनकी प्रखरता को क्षीड़ नहीं कर सका है। इनमें जीवन के अनुभव संजोये गये है। जिससे कविता आत्मा की पूकार बनकर फूट पड़ी है। इन कविताओं में लाचारी या बेचारगी नहीं वरन् संघर्ष के

साथ-साथ आशाओं, आकाक्षाओं का स्वर है जो सर्वहारा के प्रति सहानुभूति का परिचायक है।'[6] कवि किसी भी व्यवस्था का विचारधारा के तहत करूणतम् भ्रष्टाचार की परख कर ही लेता है। इसी से इनकी कवितायें गांधी वादी, सुभाषवादी, समाजवादी, साम्यवादी और जय प्रकाशवादी सबके साथ नाता जोड़ती है और इन सबसे अलग भी है। यदि इन्होंने कभी किसी की नीतियों का समर्थन किया है तो परिस्थिति अनुकूल उनकी खुलकर आलोचना भी की है।

डॉ0 हरिनारायण मिश्र के अनुसार 'नागार्जुन की व्यंग्य रचना में कबीर की तल्खी भारतेन्दु का करूणा और निराला की विनोद-वकता का विलक्षण सामजस्य है।'[7] नागार्जुन ऐसे साहित्यकार हैं जो अभावों में ही जन्मे हैं पीड़ित वर्ग के कष्टों को इन्होनें स्वयं झेला है। 'निःसंदेह ऐसा ही व्यक्ति भारत की निम्न वर्गीय जनता का सच्चा सास्कृतिक प्रतिनिधित्व कर सकता है। देश की स्वतंत्रता और खुशहाली के लिए उच्च स्वर से आह्वान उनके काव्य में मिलता है।'[8]

वस्तुतः नागार्जुन की कविताओं से गुजरना बीहड़ एवं बियावान जंगल से गुजरने के सामन है। .... अपनी काव्य यात्रा में नागार्जुन जब तेजी से दौड़ते हैं तो कवितायें हल्की अवश्य हुयी हैं किन्तु यह भी महत्वपूर्ण योगदान माना जाएगा क्योंकि भारत के 50 वर्षों का सच्चा इतिहास ये कविताएं हैं। .... किसी खिताब या पुरस्कार के प्रलोभन में पड़कर उन्होनें शासन का प्रशस्तिगान नहीं किया है और न ही विदेश जाकर पालन या सहारा हवाई अड्डे पर मुस्कराते हुए उतरने का शौक उन्हें है। उन्हें बस मानवता की तलास है कुल मिलाकर नागार्जुन की कविता अपने सपूर्णता में अतीत के पचास वर्षों के भारतीय जीवन के उथल-पुथल का अमिट चित्र है।'[9]

भाषा शिल्प :

शिल्प विधान द्वारा ही रचनाकार आत्मानुभूतियों की प्रखर अभिव्यक्ति करता है। यह गद्यात्मक या पद्यात्मक किसी रूप में हो सकती है किन्तु शिल्प को प्रधानता देने पर

काव्य को खतरा बढ़ने लगता है। नागार्जुन जैसा प्रगतिशील चेता इस तथ्य से बखूबी अवगत रहा है इसीलिये शिल्प की प्रधानता इनकी कविताओं की विशेषता नहीं रही। अपने काव्य विषय के अनुसार उन्हें शिल्प की तलाश रही है। कवि का काव्य संसार जन सामान्य से सम्बद्ध रहा है इसीलिये शिल्प भी उन्हीं के अनुसार मिलता है। कहीं छंद बद्धता का रूप आया है तो कहीं कवितायें छन्द मुक्त हो गयी हैं। गेय पदों के साथ अगेयता, बोलियें एवं ग्राम भाषाओं के साथ संस्कृत निष्ठ भाषा, नाटक, नौटंकी, लोकगीत, लोक धुन, संस्कृत के श्लोक, तुकान्त, अतुकांत जैसी प्राचीन भारतीय वर्णन प्रणाली आदि का भरपूर प्रयोग इनकी कविताओं में हुआ है। शिल्प के स्तर पर नागार्जुन नई कविता और सठोत्तरी कविता के रचनाकारों से अलग, विशिष्ट पहचान इसी कारण बना सके। रूप के स्तर पर नागार्जुन अनेक प्रयोग करते हैं एवं विषय प्रस्तुतिकरण के समय व्योरेवार सभी शिल्पों का अपनाते हैं। 'प्रयोगवादियों ने प्रयोग का नारा दिया था, वस्तुतः अकेले नागार्जुन ने कविता के रूप विधनों में जितने प्रयोग किये हैं, सारे प्रयोगवादी मिलाकर भी उसका दशमांश दिखाने में असमर्थ सिद्ध हुये।'[10]

नागार्जुन के पास भाषा का विराट संसार है। कवि ने भाव के अनुसार ही भाषा को अपनाया है। इसी कारण भाषा संसार इतना विषम हो गया है कि साधारण वर्णन में भी सावधानी न बरतने वाले पाठक को धोखा हो सकता है। हिन्दी प्रदेशों की सर्वहारा जनता, किसान मजदूर एवं निम्न मध्यवर्गीय लोग जिस प्रकार की भाषा को समझते एवं उपयोग करते हैं, उनका परिष्कृत रूप इनकी कविताओं में मिलता है। जब सर्वहारा से कवि जुड़ता है तो उसे ऐसे ही साहित्य की रचना करनी होती है जो देश की स्थितियों से उन्हें परिचित कराते हुए उनके अधिकारों के प्रति उन्हें सचेत कराकर उनके ज्ञान को बढ़ा सके। नागार्जुन के काव्य की आत्मा गांव की भाषा ही है। इस संदर्भ में हम डॉ0 राम विलास शर्मा के कथन को देख सकते हैं-

'वह गांव का है, वहीं की जनता में पैदा हुआ है, पढ़ लिख गया है लेकिन इससे उनके संस्कार विकृत नहीं हुए हैं, परिष्कृत हुए हैं। वह संस्कृत का पंडित है लेकिन

अपनी भाषा का सादा जातीय रूप खूब पहचानता है। 'अभी कल तक पथराई हुई थी धननर खेतों की माटी' वह भाषा वैसी ही ठेठ हिन्दी है जैसे धनहर खेतों की माटी ठेठ भारतीय धरती है. यहां लोक संस्कृति की सहज आत्मीयता है।'[11]

गांव की चमर टोली में जब कवि की दृष्टि जाती है तब उनके द्वारा प्रयुक्त बोली हम हरिजन गाथा में देख सकते हैं–

'पैदा हुआ दस रोज पहले अपनी बिरादरी में
क्या करेगा भला आगे चलकर?
रामजी के आसरें जी गया अगर
कौऩ सी माटी गोड़ेगा ?
कौन सा ढ़ेला फोड़ेगा ?'[12]

'इनकी झोंक मारती बोलियों का जीवन्त खाका– भभाकर हंसना, मुलुर–मुलुर देखना, पीनिक, टुकुर–टुकुर ताकना,. बटुर–बटुर आयेगी दुनिंया...........बुक्का फाड़कर रोना, बिड़बिड़ा बोलना, बहुत जोहा बाट........

पतईयों का कोड़ा तापना, कनरवी मारना, भीत, पोर–पोर आदि बहुतायत से मिलता है।'[13]

नागार्जुन की भाषा जन भाषा होने के कारण स्थिति को मजबूती ये पकड़ती है। कवि ने अपने नवीन जीवन दृष्टि के अनुसार पुरातन मिथक के माध्यम से यह भी ध्वनित करना चाहा है कि पुरातन की भस्म पर उगने वाले नवांकुरों में जीवन और समाज को नयी दिशा प्रदान करने की क्षमा है। नागार्जुन की बहुत सी काव्य रचनाएं प्रतीकात्मक रूप में लिखी गई हैं। प्रमुख रूप से राजनीतिज्ञों की कुटिलता को व्यक्त करने में ऐसी कवितायें पूर्ण रूपेण सफल रही हैं।, क्योंकि प्रतीक अपने अर्थ की ओर संकेत करता हैं। 'भूस का पुतला' नेहरू का प्रतीक है तो 'जाने तुम कैसी डायन हो' इन्दिरा को प्रतीक बनाकर लिखी गयी कविता है। 'देखा सबने चिड़िया खाना' कविता में चिड़िया

खाना भारतीय संसद का प्रतीक है, जहां संसद सदस्य एवं मंत्री रूपी पशु विचरण करते हैं। इनकी 'बाधिन' शीर्षक कविता में इंदिरा गांधी को प्रतीक माना गया है।

नागार्जुन के उपमान भी हमारे जाने पहचाने हैं क्योंकि वे हमारे बीच की जिनदगी से चुने गये हैं, जिसे हम रोज देखते और अनुभव करते हैं। 'चन्दू मैनें सपना देखा' कविता में कवि 'उछल रहे तुम ज्यो हिरनौटा' कहता है, तब पाठक का मन भी उसी हिरनौटे की भातिं उछलने लगता हैं। कवि जब 'दरिद्रता कटहल के छिलके जैसी जीभ से मेरा लहू चाटती है' कहता है तो कटहल के छिलके से। हर व्यक्ति खास कर गांव का व्यक्ति अवश्य ही परिचित होगा और दरिद्रता की भयावहता का अहसास कर पायेगा। जीभ को कटहल के छिलके के समान बताना किसानी संस्कार की अनूठी कल्पना है।

नागार्जुन जब व्यंग्यबाण चलाते हैं तो महान संयत और साहसी व्यक्ति भी दहल जाता है। उनके व्यंग्यों की धार इतनी पैनी है कि मर्मस्थल विध जाता है किन्तु विधा हुआ आह कहने की स्थिति में नही रह पाता। इन व्यंग्य वाणों के लक्ष्य व्यक्ति, समाज संस्थायें, सामंती एवं पूजींवादी व्यवस्था, वर्तमान भ्रष्ट शासकीय व्यवस्था, सड़ी-गली जर्जरित रूढ़ियां, आधुनिक फैशन परस्ती, छद्म प्रगतिशील साहित्यकार सभी हैं। ये व्यंग्य इनके मुखौटों का हटाकर उनका असली चेहरा सामने कर देते हैं, जिन्हें हम भली भांति देख लें पहचान लें, और उनसे सावधान हो जायें। इनके व्यंग्यों से तिजारती सभ्यता के पोषक तिलमिला तो अवश्य ही उठते है फिर कवि उनकी परवाह किये बिना वाणों की वर्षा करता ही जा रहा है। '

'नागार्जुन का प्रदेय इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है, उनके व्यंग्यों से बहुतों को चिढ़ है परन्तु वैसी ही जैसी रोगी को दवा से होती है। कसूर दवा का नहीं।'[14]

नागार्जुन दार्शनिक कवि नही हैं, उनमें अमूर्त चिन्तन की ऊँचाई नहीं है, लेकिन उनमें सहज प्रज्ञा के साथ-साथ सजग विचारधारा का भी अस्तित्व है। अगर अर्मूतता का अर्थ संवेदनात्म जटिलता और सूक्ष्मता है तो नागार्जुन ने अपने कतिवाओं के उदाहरण से यह सिद्ध किया है कि जटिलता और सूक्ष्मतर संवेदना को कला में मूर्त बनाकर कैसे

पेश किया जाता है। नागार्जुन अपनी कला की चुनौती इसी बात को मानते हैं कि अनुभूतियां कितनी ही जटिल और सूक्ष्म क्यों न हों कविता में रूपांतरित होने पर वे साधारण पाठक के लिए ग्राह्य बन जाएं। नागार्जुन के मूर्ति–विधान में जो नाना वर्णी बहुलता है, वह उनकी जटिल और सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का निमित्त भर है। मूर्तिविधन की बहुलता और अनेक रूपता उन्हें जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त होती है, आत्म केन्द्रीत चिन्तन और सागर मुद्रा से नहीं।

इस प्रकार 'नागार्जुन की विशेषता यह है कि उन्होने अपने यर्थाथवादी को निरंतर ऊँचे धरातल पर पहुंचाया है। उनके राजनैतिज्ञ व्यंग्य कितने पैने हुए हैं, उनमें जीवन के अर्न्तविरोध की समझ दृढ़ हुयी है, उनका भौतिकवादी रूझान अविचल रहा है, इसे हम सभी जानते है। 'हरिजन गाथा' और 'छोटी मछली.......... बड़ी मछली.......' जैसी कविताओं की रचना करके नागार्जुन ने न केवल अपने आपको, वरन् प्रगतिशील कविता को, हिन्दी साहित्य को मूल्यवान अवदान दिया है। उत्तरोत्तर अपने प्रखर यथार्थवादी और दृढ़ भौतिकवादी उन्मेख के कारण
नागार्जुन हिन्दी साहित्य में निराला के बाद सबसे महत्वपूर्ण पद के हकदार हुए हैं।''[15]

1. डा0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना– हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि, पृ.– 454

2. प्रो0 रामचरण महेन्द्र – नागार्जुन के सम्बन्ध में, पृ.–445

3. श्री केदार नाथ सिंह – नागार्जुन की काव्य यात्रा, पृ.– 4

4. नागार्जुन, 'जन–मन के सजग चितेरे', सतरंगे पखों वाली।

5. नागार्जुन, 'अकाल और उसके बाद', सतरंगे पखों वाली।

6. ऊषा पाण्डेय, 'नागार्जुन के काव्य में जनवादी चेतना', पृ.– 81

7. डा0 हरि नारायण मिश्र, 'हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि, कवि' पृ.– 456.

8. डा0 प्रकाश चन्द्र भट्ट, 'हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि, कवि' पृ.– 446

9. डा0 रतन,'नागार्जुन की काव्य यात्रा', पृ.– 16–20

10. अरूणा कमल, 'आलोचना', जनवरी, जून 1981 पृ.–28

11. डॉ0 रामविलास शर्मा, 'नई कविता और अस्तित्ववाद', पृ.– 46.

12. नगार्जुन , 'हरिजन गाथा'।

13. डॉ0 रतन कुमार पाण्डेय, 'नागार्जुन की काव्य यात्रा' पृ.– 108.

14. डॉ. शिव कुमार मिश्रा, 'नागार्जुन के व्यंग्यों के गुण धर्म के संदर्भ', पृ.–119

15. अजय तिवारी, 'नागार्जुन की कविता', पृ.– 198.

अध्याय-6

नागार्जुन के काव्य में लोक जीवन

जब हम लोक जीवन के बारे में बाते करते हैं तो हमारे मनः मस्तिष्क में अनेक कवियों के नाम उभरते हैं जिनमें बाबा नागार्जुन का नाम ऐसा है जो तत्काल हमें प्रभावित होने के लिए विवश कर देता हैं। बाबा नागार्जुन की कविताओं में लोक जीवन के अनेक रूपों का दर्शन होता है, जिनमें से कुछ रूप प्रमुखतः इस प्रकार है –

मनवीय लगाव और जीवनासक्तिः

बाबा नागार्जुन की कविता किसी भी क्षेत्र में अनुभव प्रस्तुत करे, किसी भी वस्तु का चित्र खीचें, सब जगह सबके मूल में मानवता के भविष्य की चिन्ता है, मनुष्य की मुक्ति की बेचैनी है और हर चिन्ता में, हर बेचैनी में मनुष्य की सामूहिक शक्ति तथा उसकी विजय के प्रति अटूट एवं अदम्य विश्वास है।

नागार्जुन की चिन्ता की एक महान ऐतिहासिक परम्परा है। भारतेन्दु, भगत सिंह, प्रेमचन्द्र, तेलंगाना के वीर शहीद साथी गणपति, नागभूषण पटनायक आदि इस चिन्तन परम्परा के महान हस्ताक्षर है और इसी परम्परा को उजागर करती है, 'महा मानव लेनिन' और छेदी जगन जैसी हस्तियाँ, नागार्जुन इन सबको अपनी काव्य यात्रा में याद करते है, इन सबके प्रति अपना प्रेम और आदर अर्पित करते है। स्वाधीनता संग्राम में अभिव्यक्त जन–भावना और शहीदों के सपनो को स्वतंत्र देश के शासकों ने बुरी तरह भुला दिया, इस पर नागार्जुन तीव्र क्रोध व्यक्त करते हुए 'अच्छा किया तुमने' शीर्षक कविता में भगत सिंह से कहते हैं :–

भगत सिंह, दर–असल, हम बड़े पाजी है,
तुम्हारी यादों के एक–एक निशान
हम तानाशाहों के हाथ बेचने को राजी हैं।

(पुरानी जूतियों का कोरस पृष्ठ–18)

इन पंक्तियों के गहरे व्यंग्य देश की जनता के जीवन और जनतंत्र के प्रति गहरा ममत्व व्यक्त हो रहा है। लेनिन को महामानव कहकर वे इसलिये याद करते हैं कि उनके नेतृत्व में जो सर्वहारा क्रान्ति हुई।, उसने समाजवाद का निर्माण किया, जिसमें

मेहनतकश लोग– 'करते हैं काम! लेते हैं विश्राम! मथते हैं सागर! अमृत निकाल कर! पीते हैं ढ़ाल–ढाल कर।'

श्रमिकों के जीवन का अमृत छीनने वालों से नागार्जुन को आन्तरिक नफरत है। यह नफरत उनकी कविताओं में उसी मात्रा मे है, जिस मात्रा में उन्हें मनुष्य से प्रेम है। 'साथी गणपति' शीर्षक कविता में एक स्थल पर देखिये –

साथी गणपति

हम न तुम्हारे हत्यारों को क्षमा करेगें

बन्धु, तुम्हारा लहू मिला है जिस पानी में

वह प्रशान्त सागर गीधों के सर्द खून से

काला होगा, काला होगा,

बन्धु, तुम्हारा रक्त गिरा है जिस धरती पर

मुक्ति फौज की गुरू–गम्भीर दृढ़ चरण चाप से

उसका आँचल भूरा हेगा, भूरा होगा।

(पुरानी जूतियो का कोरस पृ. 23)

गणपति के प्रति प्रेम उस मानव–समुदाय के प्रति प्रेम का सूचक है, जिसके लिए वह शहीद हुआ और उसी प्रेम से प्रेरित है, हत्यारों के प्रति नफरत और गुस्सा, जिसकी अभिव्यक्ति 'प्रशान्त सागर गीधों के सर्द खून से काला होगा' में हुई है। जो लोग कविता में इस नरफत की भावना से एतराज करते हैं और 'शुद्ध प्रेम' की बातें करते हैं, उन्हे याद करना चाहियें कि आदि कवि बाल्मीकि ने भी अपने प्रथम छन्द में एक तरफ क्रोच पक्षी के प्रति करुणा व्यक्त की है, तो दूसरी तरफ व्याध के प्रति तीव्र क्रोध एव घृणा। उन्होने व्याध को शाप दिया कि तुम्हें जीवन भर प्रतिष्ठा न मिले। जो लोग भारतीय परम्परा के नाम पर साहित्य में घृणा भाव का विरोध करते हैं, वास्तव में रूढ़िवादी है, साहित्य की मानवतावादी परम्परा के विरोधी है। प्रगतिशील कवि इस

परम्परा का विकास कर रहे हैं और नागार्जुन उनमें अग्रणी है। उनके मानवतावाद का स्वरूप विस्तार 'छेदी जगन' शीर्षक कविता में देखियें –

विषमता के प्रति घृणा का अनोखा उपहार लो।
विश्व मानव के लिए मनुहार लो।

(पुरानी जूतियों का कोरस, पृष्ठ–30)

मुक्ति–संघर्ष के सेनानी को नागार्जुन जो उपहार दे रहे हैं वह एक तरफ अन्तर–राष्ट्रीय स्तर पर उनकी राजनीतिक पक्षधरता बताता है, तो दूसरी तरफ नये मनुष्य के लिए, शोषणमुक्त मनुष्य के लिए, दुनिया भर में सभी मनुष्यों से प्रेम करने वाले विश्व–मानव के लिए उनका आन्तरिक आह्लाद और प्रेम भी व्यक्त करता है। सचमुच यह अनोखा उपहार है, जो हिन्दी में प्रगतिशील कवियों के सिवा और कौन दे सकता है?

बाबा नागार्जुन की कविता में क़िसी भी और कवि की तुलना में बाहर की दुनिया की विविधता है तो मतलब यह है कि अगर केवल समाज के सन्दर्भ में थोड़ी देर रुक कर देखें तो हिन्दी में अकेले कवि है – नागार्जुन जिन्होंने आदिवासियों पर सार्थक कविताएं लिखी है। हमारा देश हिदुस्तान–इसके नक्शे में बिहार से शुरू होकर उड़ीसा, बंगाल, मध्य–प्रदेश, महाराष्ट्र और आन्ध्र की ओर जाने पर ज्ञात होता है कि आदिवासियों का क्षेत्र असल में भारत के नक्शे के हृदय प्रदेश से होकर गुजर रहा है। बीच वाले हिस्से से। प्रकृति ने आदिवासियों को भारत के हृदय में जगह दे रखी है, लेकिन हिन्दी भाषी क्षेत्र के लोगों के हृदय में आदिवासियों के लिए कितनी जगह है, यह उनके साहित्य से ज्ञात होता है। हिन्दी के बाहर आदिवासियों पर सार्थक साहित्य लिखा गया है। उड़ीसा में आप फकीर मोहन सेनापति से लेकर गोपीनाथ महन्ती तक के उपन्यासों को देखने पर या बंगला में तारा शंकर से लेकर महाश्वेता देवी तक। इसी तरह केरल और आन्ध्र में दिखायी देगा, लेकिन हिन्दी में उपन्यास के नाम पर जो लिखा गया है, उसको किसी तरह उपन्यास भी नही कहा जा सकता। आदिवासियों के

प्रति एक विचित्र प्रकार का दृष्टिकोण है हिन्दी के साहित्यकारों में। लगभग यही दृष्टिकोण जो छब्बीस जनवरी के अवसर पर तमाशबीनों का होता है।

पहली बार कवि नागार्जुन ने क्रम से आठ कविताएं उनकी ऐसी है–जिनमें आदिवासियों के जीवन और संघर्ष को गहराई से या गहरी सहानुभूति के साथ देखा और चित्रित किया गया है। 'खिचड़ी विप्लव' कविता संग्रह में ऐसी दो कविताएं हैं या फिर दूसरे संकलनों में मिल सकती है। उसी क्रम में हरिजनों के बारे में खोज हिन्दी में करने चलिये तो बहुत मुश्किल से कविताएं मिलेंगी। केवल बाबा नागार्जुन ने 'हरिजन गाथा' जैसी लम्बी और महत्वपूर्ण कविता लिखकर भारतीय समाज के एक बड़े समुदय की जो दुर्गति दुर्दश और यातना है, उसकी अभिव्यक्ति का काम किया है। नागार्जुन की ऐसी कविताएं उन लोगों को पसन्द नहीं आती जो इन सारे प्रसंगों से जुड़े निहितार्थों को भी पसन्द नही करते।

नागार्जुन ने मनुष्य और समाज के अन्तः सम्बन्ध को समझने के लिये मार्क्सवाद की वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग किया है। इस पद्धति से प्राप्त दृष्टि और समझ नें नागार्जुन के काव्य को अनोखी शक्ति और सामर्थ्य प्रदान की है। नीचे की कविता में यही सच्चाई प्रमाणित होती है–

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनो तक कानी कुतिया, सोई उनके पास
कई दिनो तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनो तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आयें घर के अन्दर कई दिनों के बाद
धुँआ उठा आँगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर–भर की आँखे कई दिनों के बाद
कौए न खुजलाई पाखे कई दिनों के बाद।

इन पंक्तियों के रचयिता बाबा नागार्जुन ने मनुष्य के वास्तविक संकट को सामाजिक स्तर पर आत्मीयता से महसूस किया है। चमत्कार यह है कि पूरी कविता में मनुष्य का उल्लेख नहीं है, हालांकि कविता का व्यंग्य है मनुष्य की पीड़ा। इस कविता का मनुष्य और परिवार भारत का विशिष्ट मनुष्य और परिवार नहीं बल्कि एकदम साधारण है। इसके मनुष्य का संकट आत्मगत नहीं हैं। वह स्वप्न या महत्वाकांक्षा से उत्पन्न नहीं है। उसका संकट जीवन जीने के साधन के अभाव से उत्पन्न हुआ है। संकट इतना धनीभूत है कि चूल्हा–चक्की के पास कई दिनों तक कानी कुतिया निर्विघ्न सोयी रहती है। कई दिनों तक घर में रोशनी हीं जलने के कारण छिपकलियों को भी निराहार रहना पड़ा। चूहों की भी हालत खराब रही। इसी से मनुष्य का भयावह और दर्दनाक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। बाद की चार पंक्तियों में घर में दाना आने के बाद की प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है।

नागार्जुन ने कविता की 'भूमि' के साथ–साथ कविता की 'भूमिका' का भी विस्तार किया है। जन आन्दोलनों की एक बड़ी भूमिका यह होती है कि वे सांस्कृतिक भूमिका का विस्तार करते हैं। हिन्दुस्तान में कविता को अधिक सामाजिक बनाने का काम स्वाधीनता आन्दोलन ने किया। हिन्दी में कविता को तथा–कथित बुद्धिमानों के बीच से निकालकर आम जनता के बीच में भी ले जाने का काम नागार्जुन ने किया। इस अर्थ में उन्होंने कविता की भूमिका का विस्तार किया। ऐसे कवि आपको और मिल जायेगें। तेलगु में श्री–श्री और बंगला के सुकान्त जैसे कवियों ने भी यह कार्य किया है।

बाबा नागार्जुन ने कविता को आम–आदमी से जोड़ा। इसके साथ ही मनुष्य की मनुष्यता को जगाने का काम किया। आम आदमी को कविता दवा की तरह नहीं जीवन शक्ति की तरह चाहिये। नागार्जुन ने आम आदमी के लिये कविता को जरूरी और उपयोगी बनाया।

अनुभव प्रत्यक्ष का विस्तार :

बाबा नागार्जुन जनकवि है। इस दश की जनता से यहाँ के लोगों से उनका आत्मिक लगाव है। दूसरों के दुखों को वे अपना दुख समझते हैं, उनके दुखों को महसूस करते हैं। जन–जन से उनका गहरा जुड़ाव है। कवि–नागार्जुन के मन में युग व्याप्त विषमताओं, विसंगतियों के प्रति पीड़ा और आक्रोश दोनों ही व्याप्त है। उन्होंने सामाजिक, कुरीतियों, विकारों, विसंगतियों को अपनी आँखों से देखा है और ग्राम्य जीवन की पीड़ा को भोगा है। अभावों में पल रही जिन्दगियों की पीड़ा को वे सहन नही कर सके हैं। चाहे वह पीड़ा कृषक की हो या मजदूर की। इसीलिये वे कहते हैं :–

कही बाढ़ भूचाल, कहीं पर कही अकाल कही बीमारी
मंहगाई की क्या नजीर दूँ मानो द्रुपद सुता की सारी
भूखों मरो चबाओ पत्ती, मगर अन्न का नाम न लेना
कहीं न तुम भी पकड़े जाओ, कही सफाई पड़े न देना।

कवि नागार्जुन की कवितांए कवि और पाठक के तथा कवि के अंतः संसार और उसकी अभिव्यंजना के द्वन्द्वात्मक रिश्ते को बखूबी प्रकट करती है। मजे की बात यह है कि अपनी 'गम्भीर' और 'तात्कालिक' हर तरह की रचना में नागार्जुन समान रूप से अन्तर्व्याप्त रहते हैं। उदाहरण के लिए उनकी एक तातकालिक कही जा सकने लायक कविता है, 'बीते तेरह साल' इसकी कुछं पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

लाखं–लाख श्रमिकों की गर्दन कौन रहा है रेत
छीन चुका है कौन करोड़ों खेतिहरों के खेत
किसके बल पर कूद रहे हैं सत्ताधारी प्रेत
बलिहारी कागजी ख़ुशी की क्यों न बजाये बीन
फटे बाँध से बालू बोले हम भी है स्वाधीन
अश्वमेध का घोड़ा निकला चित है चारो नाल
कौन कहेगा आजादी के बीते तेरह साल?

(हजार–हजार बाँहो वाली)

आजादी के तेरह साल के विकास में श्रमिकों पर अत्याचार बढ़ा है। किसानों की जमीने छिनी है, जमींदारों की शक्ति में इजाफा हुआ है, यह सत्ताधारी वर्गों का चरित्र है। इन वर्गों के नेताओं ने स्वतंत्र भारत के विकास का यह नक्शा नहीं पेश किया था। जनता को कागजी खुशी से बढ़कर कुछ नहीं मिला, विकास परियोजनायें व्यर्थ सिद्ध हुई, जनता ने स्वतंत्र विकास की यह कल्पना नहीं की थी। यह सब देखकर कौन कह सकता है कि आजादी के तेरह साल बीत चुके हैं ? कागजी, खुशी से जनता को भुलावा देना सम्भव नहीं है, इसलिये साथ-साथ अश्वमेध का घोड़ा भी छूटा है। इस तरह की नीतियों से काम लेने वाले मनुष्य नहीं हो सकते, वे प्रेत है और ये 'प्रेत' कूद रहे हैं। 'कूद' के साथ बच्चों का संदर्भ लाकर नागार्जुन ने उनकी पैशाचिक उमंग को और भी उभार दिया है। परिणाम स्वरूप यह कविता स्वतंत्र भारत के विकास के अंतर्विरोध उसकी दिशा और निरर्थकता पर करारा व्यंग्य बन जाती है।

नागार्जुन की कलात्मक शक्ति का एक पहलू यह भी है कि वे अपनी व्यंग्य-रचनाओ में आवश्यकतानुसार चित्रकला, नाटकीयता, कथन भंगिमा, छन्द संगीत, अतिरंजना मार्मिकता (करुणा) और लोकशिल्प के तत्वों का उपयोग करते हैं। एमरजेंसी लागू होने पर विनोबा भावे ने मौनव्रत धारण किया और केवल सूत कातने का विचार बनाया। उनके इस कार्य से जनवादी शक्तियों को लाभ पहुँचने वाला न था। नागार्जुन ने 'तकली मेरे साथ रहेगी' कविता में उनके प्रयास की अव्यवहारिकता पर टिप्पणी करते हुए दिखाया कि –

'सर्वोदय का जादू अब के बोलेगा शासन के सिर पर'

इस शासन की नेमते क्या हैं, इसके बारे में उहोंने लिखा–

'सत्य रहेगा अन्दर, ऊपर से सोने का ढक्कन होगा,
चाँदी की तकली होगी तो मुँह में असली मक्खन होगा,
करनी में गड़बड़िया होगी, कथनी में अनुशासन होगा,
हाथों में बन्दूकें होगी, कंधों पर सिंहासन होगा।'

(खिचड़ी विप्लव देखा हमने)

बन्दूक की ताकत से सिंहासन की रक्षा करने वाले अगर विनोबा की करनी से 'अनुशासन पर्व' मनाते रहे तो यह स्वाभाविक था। नागार्जुन यह आशंका शुरू में ही व्यक्त कर चुके हैं। उनकी चित्रकला की विशेषता यह है कि विभिन्न तत्व एक गतिशील सम्बन्ध में दिखाई देते हैं असंबद्ध और जड़ नहीं।

इसी तरह 15–15 मात्राओं के चरण वाले छन्द से वे जो प्रभाव उत्पन्न करते हैं वह दर्शनीय है–

यहाँ नही लज्जा का योग
भीख माँगने का है रोग
पेट बेचते हैं हम लोग
लोगे मोल ?
लोगे मोल?

(हजार–हजार बाँहो वाली)

देश के आन्तरिक संसाधनों का विकास करने के बदले भीख माँग कर संकट हल करने की नीति राष्ट्रीय गौरव के प्रतिकूल है। जनता के सम्मान पर आघात करने वाली नीति के दिवालियेपन पर नागार्जुन का व्यंग्य बेहद पैना है। इसे उभारने के लिए जिस लघु छन्द का माध्यम अपनाते हैं उसमें निहित लय की उछाल का बखूबी इस्तेमाल करते हैं।

श्री प्रभाकर माचवे ने ठीक ही कहा है –

चक्षुष प्रत्यक्ष कबीर, निराला, नागार्जुन की कविता की ठोस यथार्थवादी जमीन है।
लेकिन चाक्षुष ही क्यों समग्र एन्द्रिय बोध इन तीनो कवियों की कविता को वह यथार्थवादी आधार देता है कि इनके साहित्य की भाषा कहते हुए निर्मल बीर की तरह प्रवाहशील हो उठी है। ऐसी भाषा कोरी या किताबी शब्द–साधना से हासिल नहीं होती, उसे पाने के लिए जिन्दगी के समुन्दर में (भवसागर में) कूदना ही पड़ता है। उधार लिये गये अनुभव, विचारों और संदेशों की पूँजी यहाँ छूछी पड़ जाती है। जीवन समर से

कतरा कर साहित्य का समर नहीं लड़ा जा सकता। साहित्य में अभिव्यक्त होने वाला अनुभव और (उस अनुभव की) भाषा जिसमें कि वह सना होता है, एक व्यक्ति द्वारा गढ़ी नही होती, एक व्यक्ति के लिए नहीं होती; वह तो उस समाज की आकांक्षाओं, इच्छाओं, जरूरतों और तकाजों तथा संघर्षों व सौन्दर्य की सामाजिक अभिव्यक्तियों का सशक्त और सर्जनात्मक माध्यम होती है, जिससे रचनाकार जुड़ा है। (यानि, उसका एक हिस्सा है) इसीलिये हर व्यक्तिगत अनुभव भी सामाजिक अनुभव का ही एक अंग है।

इस अंग-अंगी सम्बन्ध को नजर अन्दाज करने दर किनार करने के अपने खतरे है। कबीर, निराला और नागार्जुन के साहित्य की श्रोत सामग्री यही सामाजिक अनुभवों की सम्पदा है। व्यक्तिगत अनुभव इन्हीं का एक हिस्सा है। व्यक्तिगत अनुभव और सामाजिक अनुभव को एक दूसरे से काउंटर पोज करना ऐसा ही है जैसे व्यक्ति को समाज के (अथवा समाज को व्यक्ति के) विरुद्ध खड़ा करके कोई जायजा लेना।

अनुभव संघर्ष से हासिल होते हैं और सौदर्य की प्रतीति कराते हैं। अनुभव का श्रोत संघर्ष है और सौन्दर्य की प्रतीति का श्रोत अनुभव है। अतः संघर्षों से कतराकर सच्चे सौन्दर्य का साक्षात्कार न तो स्वयं किया जा सकता है और न ही दूसरों को कराया जा सकता है –

'खड़ी हो गयी चाँप कर कंकालों की हूक,
नभ में विपुल विराट सी शासन की बन्दूक
जली ठूँठ पर बैठकर गयी कोकिला कूक,
बाल न बाँका कर सकी, शासन की बन्दूक।'

'कंकालों की हूक' से भुखमरी के लिए किये गये संत्रास का बिम्ब उभरता है, शासन की बन्दूक, से आतंक का। संत्रास और आतंक एक ही हिस्से के दो पहलू है। सिक्का खोटा है, झूठ पर आधारित सत्ता के दमन चक्र सा। कविता का सौन्दर्य संघर्ष की इसी तस्वीर में से प्रस्फुटित होता है। यह है नागार्जुन की कविता-अपनी बनावट में बिल्कुल बेलौस और अपने अनुभवों में एकदम खाटी जीवन का जितना विविध बोध इनके

यहाँ है, परिदृष्य के जितने रंग यथार्थ की विड़म्बना के जितने धूसर चित्र इनके यहाँ मिलते हैं कि समकालीन जीवन अपनी पूरी सच्चाइयों के साथ सामने आता है। उनके अनुभव की आवाज दूर तक जाती है और जहाँ तक जाती है अलख जगाती जाती है।

यथार्थ दर्शन की विविधता :

लोक कवि नागार्जुन ने स्वयं जो भोगा, अपने आस-पास जो देखा अपनी आँखों से और अपने हृदय से जो महसूस किया उसे ही अपने काव्य का विषय भी बनाया है। उन्होंने हमे सपनीली दुनियाँ की सैर नहीं करवायी बल्कि यथार्थ से हमारा परिचय करवाया है। उन्होंने अपने जीवन में भिन-भिन्न प्रकार से यथार्थ के दर्शन किये है और उसे अपने काव्य में स्थान दिया है।

1965 में नागार्जुन ने कवि की हैसियत से अपनी भूमिका पर विचार किया था –

जनता मुझसे पूँछ रही है क्या बतलाऊँ ?
जनकवि हूँ मैं साफ कहूँगा क्यों हकलाऊँ?

आगे चलकर उनकी यथार्थवादी चेतना का जैसे-जैसे और अधिक निखार हुआ, उन्होंने हिन्दी प्रदेश की जनता की वस्तु-स्थिति समझकर अपनी कला को भी नये दायित्व बोध से जोड़ा। अपनी कविताओं में इस चुनौती को व्यवहारिक रूप में ढालते हुए उन्होंने 1979 में कहा :-

प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का
जन-जन में जो ऊर्जा भर दे, मैं उद्‌गाता हूँ उस रवि का।

स्वभावतः उनकी प्रतिहिंसा भी उनकी क्रातिकारी चेतना का सकारात्मक पक्ष है। नागार्जुन की वाणी में हकलाहट कभी नहीं थी। अन्तर केवल यह आया है कि उन्होंने अपने रोष और जनता की स्थिति को संगत ढंग से समझा है। इसीलिए वे अपने रोष को काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करके जन-जन में ऊर्जा भर देने के लिए उद्यत हुए हैं। वे अपने इस प्रयास में सफल भी हुए हैं। 'हरिजन गाथा' उनकी इस सफलता का उत्कर्ष है। वे अपने इस हरिजन दहन की पाशविक पृष्ठ-भूमि में एक 'श्याम सलोने' शिशु का

जन्म होता है, जब वह गर्भ में था तब उसके जनक की हत्या हो गयी थी। माताओं के भ्रूण तक इस जुल्म से इतने बेचैन हो उठे कि भीतर ही भीतर चक्कर लगाने लगे। बाहरी दुनिया में इन अत्याचारों का वाजिब प्रतिरोध है, नागार्जुन दिखाते हैं कि इन भ्रूणों ने सूक्ष्म में यह विपदा झेली है, इसलिए नवजात तक अपनी हथेलियों में बरछा, भाला, बम वगैरह के निशान लेकर पैदा हुये हैं। इस बच्चे का भविष्य बाँचने के लिए संत गरीबदास का रूप धरण करके खुद नागार्जुन पहुँच जाते हैं :-

अरे भगाओ इस बालक को
होगा यह भारी उत्पाती
जुलुममिटाएंगे धरती से
इसके साथी और संघाती।

आड़ी-तिरछी रेखाओं में हथियारों के जो निशान है वे दमन की पीड़ा और भविष्य की संभावना को एक बिन्दु पर जोड़ते हैं। यह बालक दमन के पाशविक वतावरण में पैदा हुआ है और-

खान खोदने वाले सौ-सौ मजदूरों के बीच पलेगा,
युग की आँचों में फौलादी सांचे-सा यह वही ढ़लेगा।

कवि नागार्जुन की यथार्थवादी चेतना जनता के साथ किस घनिष्ठ सक्रियता से आबद्ध है इसे 'हरिजन गाथा' में भली भाँति देखा जा सकता है। जुल्म के समकालीन वातावरण में भविष्य का स्वप्न अंकित करके नागार्जुन केवल नारे बाजी वाले अतिरिक्त जोश से हीं बचे हैं। वरन् उन्होंने जिस कलात्मक संयम का परिचय दिया है, उससे उनकी यथार्थवादी चेतना के काव्यात्मक उत्कर्ष की सूचना मिलती है।

'जगत तारिणी' प्रकट हुई है नेहरू के परिवार में, वह नागार्जुन के व्यंग्य का सर्वाधिक शिकार बनी है। उसने ढहते हुए कांग्रेसी शासन को नया जीवन दिया है। सन् 1967 में जो कांग्रेस आठ राज्यों में 'अपोजीशन' में आ गयी थी, उसकी स्थिति बूढ़े शेर

जैसी हो गयी थी। 1971 आते-आते इस 'जगत तारिणी' के छल-बल कौशल से हाल यह हो गया कि :-

संविधान की रूई रूपहली भद्रलोक धुनते हैं,

देवि, तुम्हारे स्टेनगनो से तरूण मुंड भुनते हैं।

डायन के गुर सीखकर आँत चबाने वाली इस 'जगततारिणी' के फरेब पर नागार्जुन कहते हैं :-

मंहगाई की सूपनखा को कैसे पाल रही हो

सत्ता का गोबर जनता के मत्थे डाल रही हो

पग-पग पर तुम लगा रही हो परिवर्तन के नारे

जन-युग की सतरंगी छलना, तुम जीती हम हारे।

यह देवी कंकालो से अपने नव सामंतो और महाजों की रखवाली करने में ऐसी व्यस्त है कि कवि पुराने अनुभवों के आधार पर आगाह करता है-

अपनी गर्दन आप काट लो, करो प्रणंति साष्टांग,

द्रवित न होगें किंचित भी तुम पर पिशाच गैरांग।

नागार्जुन ने सुअर पर कविता लिखी है। यह जानने पर की बहुत लोगों के मन में विचलन पैदा होने लगेगी कि क्या सुअर पर भी कविता लिखी जा सकती है। बाबा नागार्जुन की कविता 'पैने दाँतों वाली' बहुस्तरीय है। कविता का अंत होते-होते उसमें एक वाक्य आता है 'कि यह भी मादरे हिन्द की बेटी है।' बारह थनों वाली अपने बच्चों को दूध पिलाती हुई इस वाक्य के आते ही पूरी कविता का अर्थ बदलने लगता है। वह कविता सुअर पर होते हुए भी केवल सुअर पर कविता नहीं है यह बड़ी कविता है।

जब 'हरिजन-गाथा' सर्वप्रथम प्रकाशित हुई थी, तब बेलही और नारायणुर में हरिजन-दहन सचमुच घट चुके थे। 'लूट धर्मा' पूंजी के बहशियाना रूपो का वधू-दहन, हरिजन दहन तथा साम्प्रदायिक हिंसा काण्डों में चौधना हमारे 'ऐशिया-टिक मोड' की ऐसी विलक्षणता है जहाँ सामाजिक परिवर्तन को कुचलने के लिए अर्ध सामंतीय नारी

शूद्र–विद्वेषी ग्रामीण सामाजिक नियंत्रण थोपा जाता है। इस प्रतिकर्म में वर्गीय शोषण और वर्ग संघर्ष धार्मिक जड़त्व वाद तथा जातीय युद्ध के रूपाभासों में घुल मिल रहे हैं। पैशाचिक नर संहार को झेलने वाली हरिजन बस्ती में सुखिया चमारिन ने हाल में ही एक नवजात (क) को जन्म दिया इससे बिरादरी के दो बुजुर्ग–खदेरन और बुद्धू भी चकित हैं।

कवि पर्यवेक्षक के विपरीत बिरादरी के वे दोनों बुजुर्ग ऐसे नवजात (क) से चकित हैं 'न तो देखा था न सुना ही था, आज तक इस कलुए बच्चे का नख–शिख' एक नये सौन्दर्य बोध वाला है लंबे कान छोटी पर तेज आँखे जिनसे तेज रोशनी फूट रही है, उसकी हथेलियों के निशान भी विचित्र हैं। अर्थात इसकी किस्मत भूमिहीन बंधुआ मजदूरों से भिन्न हो सकती है।

अतः 'तेरहवें दिन' (जन्म के दस तथा तीन दिन) बाद रैदासी कुटिया के गुरू महाराज उर्फ अधेड़ संत गरीबदास चमरटोली में आते हैं। उनका भी 'विद्रूप सौन्दर्य' है–बकरी वाली गंगा–जमनी दाढ़ी, नाटा कद, साँवली सूरत कपाट पर बाई ओर घोड़े के खुर का निशान, धुच्ची आँखे, कठमस्तबदन, गोल मटोल चेहरा (इन्हें बाद में बाबा कहकर भी सम्बोधित किया गया है) उक्त दोनों 'सौन्दर्य बोधात्मक बिम्बो' में लघु तथा श्याम को सुन्दर की नाई स्वतः वरण करने की अभिजात्य सौन्दर्य दृष्टि से प्रयाण करने की तथा शोषितों दलितों की अनुभव प्रक्रिया के विप्लव को परिलक्षित करने की आवश्यक संवेदन शीलता विद्यमान है।

श्यामल शिशु की हथेलियों के 'निशान' वस्तुतः सांस्कृतिक चिन्ह है जिन्हें बाबा अवकूटित (डि–कोड) कर लेते हैं–यह बच्चा सचमुच अवतारी बराह हैं तथा सारी धरती इसकी लीलाओं का चरागाह है ––––,

यह बालक निम्न वर्ग का नायक, नई ऋचाओ का निर्माता (दार्शनिक) तथा नये वेद का गायक (ऋषि) होगा....

इसकी दांई हथेली की आड़ी-तिरछी रेखाओं में हथियारों के निशान हैं-खुखरी, बम, असि गड़ासा -भाला। ये इस अवतारी बराह शिशु के चार आयुध हैं जो तेरह हरिजनों के नर संहार के फलस्वरूप तेरह दिनों बाद प्रकट हुए हैं।

इस समस्त सीमियोटिक्स में सारी पृथ्वी का उद्धार करने वाले महाबराह के अवतार की धर्म दार्शनिक मिथक तथा सारे विश्व का उद्धार करने वाले निम्न वर्गों के नायक द्वारा सशक्त वर्ग-संघर्ष का मार्क्सवादी समाज दर्शन का प्रक्षेपण है। सुदीर्घ सांस्कृतिक परम्परा से समकालीन सामाजिक प्रकर्म को फंतासी के स्तर से ऊँचे उठाकर ऐतिहासिक भविष्य कथनों के प्रभामंडल में आसीन कर देता है। मिथक और इतिहास, आदिमता और आधुकिता के ध्रुवांतों का यह ऐसा विरुद्धक है मानो सामंजस्य-व संघर्ष द्वारा एकता की रणनीति का एक घोषणा पत्र है। यहाँ उद्धार भी अंततः 'मनुपुत्रें' अर्थात समूची मानव जाति का है।

अतएव इस 'श्याम सलोने अछूत शिशु' की 'किस्मत' भारतीय समाज का प्रारम्भ तथा सामाजिक न्याय के नेतृत्व का सारतत्व है। अतः इस भावी रक्षक को तुरन्त सुरक्षित बनाना आवश्यक है ताकि मनुष्य की समग्रता प्रकारान्तर से समग्र मानवता का प्रदर्शन हो सके।

बाबा नागार्जुन की विशेषता यह है कि उन्होंने अपने यथार्थवाद को निरन्तर ऊँचे धरातल पर पहुँचाया है। उनके राजनीतिक व्यंग्य कितने पैने हुए हैं, उनमें जीवन के अंर्तविरोधों की समझ दृढ़ हुई है।

उनका भौतिकवादी रूझान अविचल रहा है, इसे हम सभी जानते हैं। 'हरिजन गाथा' और 'छोटी मछली-बड़ी मछली' जैसी कविताओं की रचना करके नागार्जुन ने न केवल अपने आपको वरन् प्रगतिशील कविता एवं हिन्दी साहित्य को मूल्यवान अवदान दिया है। उत्तरोत्तर अपने प्रखर यथार्थवादी और दृढ़ भौतिकवादी उनमेष के कारण नागार्जुन हिन्दी साहित्य में निराला के पश्चात सबसे महत्वपूर्ण पद के हकदार हुए हैं।

ऐन्द्रिक अहसास की रामधर्मी संवेदना :

नागार्जुन के काव्य में संघर्ष की अभिव्यक्ति की चर्चा प्रायः की जाती है, जो समुचित और स्वाभाविक ही है तथापि उनके काव्य में सैन्दर्य की अभिव्यक्ति की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया है। निराला की ही तरह नागार्जुन सौन्दर्य और संघर्ष के महत्वपूर्ण कवि हैं। नागार्जुन के भीतर एक कालिदास प्रेमी मन है, जो बार-बार उनकी कविताओं में झलक जाता है।

नागार्जुन के काव्य-गांडीव से निकलने वाली टंकार को तो सभी सुन लेते है, उसकी ओर तो बहुतों का ध्यान गया है लेकिन उनके सौन्दर्य प्रेमी हृदय की वीणा से जो झंकार निकलती है उसकी ओर बहुत कम लोगों का ध्यान गया है। नागार्जुन का सौन्दर्य-प्रेमी मन ही उनसे यह लिखा सकता था कि-

कालीदास सच-सच बतलाना
अज रोया या तुम रोये थे?

'बसन्त की अगवानी', 'बादल को धिरते देखा है', 'चातक', 'जया', 'कालिदास', 'यह दंतुरित मुस्कान', 'सिन्दूर तिलकित भाल' जैसी कविताओं में 'धन धिन धा धमक-धमक मेघ बाजे' 'शशि से शरमाना सीख गए शिशु धन कुरंग' मन कहता है छू ले कदंब' तथा 'अतुल अमित अंकुरित घर पावस तुम्हें प्रणाम', जैसे गीतों मे उनका सौन्दर्य प्रेमी मन सहज स्वाभाविक और नैसर्गिक भावाभिव्यक्तियों का कारण रहा है।

एक अरसे बाद परदेश से स्वदेश लौटने वाले व्यक्ति के मन में अपने घर और गाँव के लिए जो प्रेम और सौन्दर्य की भावनाएं घुमड़-घुमड़ कर उमड़ती है, उनकी अभिव्यक्ति कविता का एक मार्मिक विषय रहा है। कवि नागार्जुन ने इसी मार्मिक विषय पर एक महत्वपूर्ण कविता लिखी है- 'बहुत दिनों के बाद' प्रेम और सौन्दर्य की जैसी कलात्मक अभिव्यंजना इस कविता में हुई है वैसी समकालीन कविता में अन्यत्र दुर्लभ है। कला अपनी सादगी में कितनी श्रेष्ठ होती है, इसका यह एक उदाहरण है-

बहुत दिनों के बाद

अब की मैने जी भर देखी

पकी सुनहली

फसलों की मुस्कान

बहुत दिनो के बाद

X X X

बहुत दिनों के बाद

अब की मै ज़ी भर सुन पाया

धान कूटती किशोरियों की

कोकिलकंठी तान

बहुत दिनों के बाद

X X X

बहुत दिनों के बाद

अब की मैने जी भर सूँघे

मोलसिरी के ताजे–टटके फूल

बहुत दिनों के बाद

X X X

बहुत दिनों के बाद

अबकी मैं जी भर छू पाया

अपनी गंवई पग डण्डी की

चन्दन वर्णी धूल

बहुत दिनों के बाद

X X X

बहुत दिनों के बाद

अबकी मैने जी भर

तालमखाना खाया

गन्ने चूसे जी भर

बहुत दिनों के बाद।''

सौन्दर्य और प्रेम की भावनाओं को 'अबकी बार' कवि ने समग्रता के साथ जिया हैं, लेकिन ऐसा 'बहुत दिनों के बाद' सम्भव हो सका है। 'बहुत दिनों के बाद' इसलिए चूँकि ऐसे अवसर बार-बार नसीब नहीं होते, क्योंकि जीवन-संघर्षों से भरा है। 'बहुत दिनों के बाद' पंक्ति में पूरे जीवन-संघर्ष को अलक्ष्य क्रम ध्वनि के द्वारा ध्वनित कर दिया गया है। अभिधेयार्थ और धवन्यार्थ के बीच की यात्रा इतनी तेजी से तय हो जाती है कि सहृदय पाठक इस क्रम को संलक्षित नहीं कर पाता, इसलिये अलक्ष्य क्रम ध्वनि भी कहा गया है। प्रेमानुभूति और जीवन सौन्दर्य के (समग्रता के साथ) उपभोग की इस कविता में जीवन-संघर्ष भी अपनी समग्रता के साथ ध्वनित होता है। इसलिये बहुत दिनों के बाद पक्ति की प्रत्येक छंद के प्रारम्भ और अंत में आवृत्ति की गयी है। यानि प्रेम और सौन्दर्य के उपभोग की सम्भावनाएं दोनों ओर से घिरी हैं, आदि से भी संघर्ष है और अंत में भी शान्तिपूर्ण उपयोग की सम्भावनाएं कहाँ हैं? जीवन में कभी-कभार ही ऐसे अवसर मिलते हैं।

'बहुत दिनों के बाद' पक्ति की आवृत्तियों का यही आशय है। प्रेम और सौन्दर्य का यह उपभोग अबकी बार समग्रता के साथ सम्भव हो सका है, तभी तो उस सौन्दर्य को कानो ने, आँखों ने, हाथों ने, जिह्वा ने, होठों से भोगा है-

'अबकी मै जी भर सुनपाया'

'अबकी मैने जी भर देखी'

'अबकी मैं जी भर छू पाया'

'अबकी मैने जी भर तालमखाना खाया'

'गन्ने चूसे जी भर'

उस सौन्दर्य को जी भर देखा, जी भर सूँघा, जी भर छुआ, जी भर चूसा। यानि सौन्दर्य को समग्र ऐन्द्रिय संवेदनों के साथ, सारी इन्द्रियों के द्वारा भोगा। रूप, रंग, स्पर्श, गन्ध सभी के सुख लिए। सौन्दर्य के ऐसे समग्र उपभोग को रचना में चरितार्थ करने वाली कोई दूसरी कविता समकालीन काव्य के अन्तर्गत नहीं। सौन्दर्य का ऐसा समग्र उपभोग तो कामायनी और निराला की कविताओं में भी शायद ही मिले। कवि नागार्जुन की यह कविता प्रमाणित कर देती है कि वे संघर्ष के ही नहीं सौन्दर्य के भी अद्वितीय रचनाकार हैं। 'बहुत दिनों के बाद' और 'अबकी' जैसे पदों की आवृत्ति प्रेम और सौन्दर्य की अनुभूति को और गहरा एवं तीव्र बना देती है, क्योंकि इन आवृत्तियों के कारण पृष्ठभूमि में संघर्ष की ध्वनि उतनी ही बार गूंजती है। 'जी भर' पद की आवृत्तियाॅ इस बात को शिद्दत के साथ रेखांकित करती रहती हैं कि ऐसा अवसर अबकी बार ही मिला कि जी भर कर प्रेम और सौन्दर्य को भोगा। इसके पूर्व जब कभी अवसर मिला तो जी भर कर उपयोग न हो सका। हर बार अतृप्त होकर ही लौटना पड़ा कि कही न कहीं कोई न कोई संघर्ष छिड़ गया और कवि को तो वहाॅ जाकर उस संघर्ष में शामिल होना ही था।

नागार्जुन अपने गाँव से, देश से दूर पड़े हुए लंकावास के दिनों में जब अपनी पत्नी का 'सिन्दूर तिलकित भाल' याद करते हैं, तब काम पीड़ा का उत्साह उतना नहीं प्रदर्शित करते जितना उस गाॅव से, उस देश से अपनी ममता व्यक्त करते हैं। आत्मगत अनुभूति को वस्तुगत सर्वजनीन–धरातल पर पहुँचाने के अपने सफल संघर्ष में जब उन्हें पत्नी का 'सिन्दूर तिलकित भाल' याद आता है, तब साथ–साथ–

याद आते स्वजन
जिनकी स्नेह से भीगी अमृतमय आँख
स्मृति विहंगम की कभी थकने न देती पांख
याद आता मुझे अपना वह 'तरउनी' ग्राम
याद आता लीचियाँ वे आम

याद आते मुझे मिथिला के रुचिर-भू-भाग

याद आते धान

याद आते कमल, कुमुदिनी और तालमखान

याद आते शस्य-श्यामल जनपदों के नाम-गुण अनुसार ही रक्खे गये वे नाग

याद आते वेणुबन के नीलिमा के निलय अति अभिराम।

जाहिर है कि पत्नी का प्रेम इस सम्पूर्ण परिवेश में जोड़ने वाला है। मिथिला की प्रकृति, वहाँ के लोग, पत्नी की याद आते ही कवि के लिए फालतू और निरर्थक नहीं बन जाते। प्रेम इन सबसे संपृक्ति और ससक्ति का निमित्त बन जाता है। इस तरह पत्नी वहाँ की प्रकृति और मानव-समाज के बीच से उभरने वाला प्रतीक बन जाती है। परकीया-प्रेम वाले भाव-बोध से तुलना कीजिये-नागार्जुन की व्यक्तिगत अनुभूति का उदत्त स्तर प्रकट हो जायेगा। यह उनके स्वस्थ सौन्दर्य बोध का लक्षण है। यह स्वस्थ और उदात्त चेतना ही उन्हें इस ऊहापोह में डाल देती है कि-

यहाँ भी तो हूँ न मैं असहाय

यहाँ भी है व्यक्ति 'औ' समुदाय

किन्तु जीवन भर रहूँ फिर भी प्रवासी ही कहेगें हाय।

कवि नागार्जुन के काव्य-विवेक का क्रातिकारी पहलू यह है कि वे प्रेम और देश-प्रेम को आजकल के कुछ क्रातिकारियों की तरह केला खाकर सड़क पर फेंक दिया छिलका नहीं मानते, (जिसकी उपयोगिता) दूसरों को गिराने से बढ़कर कुछ नहीं है। अपने देश और जनपद की प्रकृति से उनका प्रेम उनके पारिवारिक प्रेम और देश-प्रेम को एक समग्र रागात्मकता में बाँधने वाला अंतः सूत्र है। इसीलिए नागार्जुन अपनी तमाम यायावरी के बावजूद आवारागंर्द नहीं बनते बल्कि गहरे दायित्व बोध से सम्पन्न भावना से परिचालित होते हैं।

प्रतिबद्ध जीवन आस्था और नैतिक-विवेक :

नागार्जुन का काव्य प्रयोजन उनके समता, बन्धुत्व, अशोषण, आत्मीयता आनन्द और सहयोगी – समाज के मूल्यों से निर्मित है। नागार्जुन के इन मूल्यों का विषय व्यक्ति और समाज की संगति हैं। वर्तमान असंगतियों को देखकर ही मानवतावादी मूल्यों की कल्पना होती हैं। अतः नागार्जुन के मूल्य व्यक्तिवादी नहीं, समाजवादी हैं। वे मुक्ति की कल्पना को समता और बन्धुत्व से विच्छिन्न करके नहीं देखते जैसा कि व्यक्तिवादी करते हैं मूल्यों के कई भेद होते हैं। उक्त सामाजिक मूल्यों के सिवा अन्तः प्रवृत्ति परक आर्थिक, सौन्दर्यात्मक, मनोवैज्ञानिक आदि मूल्यों के अनेक भेद होते हैं।

नागार्जून जिस भूख (हंगर) को इतना महत्व देते हैं, वह अंतः प्रवृत्ति करण मूल्य है और जिसकी पूर्ति बिना जीव का अस्तित्व नहीं कर सकता। शिशु, माता, स्त्री–पुरूष तथा प्रकृति के प्रति आकर्षण आदि मूल्य अन्तः प्रवृत्ति परक मूल्यों को वाणी दी है और ऐसे स्थलों में सामाजिकता का दबाव कम हो गया है। नागार्जुन के लिए सामाजिक चेतना सबसे बड़ा मूल्य है। अन्तः प्रवृत्तिपरक प्रसंगों में भी इस सामाजिक चेतना की सदैव प्रज्जवलित अग्नि को नहीं भूलते। नागार्जुन में इस सामाजिक चिन्ता की परिणति क्रान्तिकारी लक्ष्यों के चयन में हुई है, किन्तु इन लक्ष्यों का विचारकों की तरह कोई विशद आयोजना या प्रबन्ध नहीं है, केवल संकेत है। वह सामाजिक मुक्ति के लिए अपने आस–पास समाज और राजनीति के विरोध में खड़ा हो जाता है और यही उसकी वैयक्तिकता बन जाती है।

नागार्जुन में षष्ठ दशक के कवियों जैसा मूल्य द्वन्द्व नहीं है, न कर्तव्या–कर्तव्य के विषय में अनिश्यजन्म अवसाद या पीड़ा है। व्यवस्था के साथ द्वन्द्व में अन्तर्द्वन्द के स्थान पर लड़ाकूपन अधिक उभरा है। अतः लड़ाई को कवि अन्तर्द्वन्द और संशयग्रस्तता से अधिक मूल्य देता है। नागार्जुन के व्यक्तित्व और कृतित्व का जो एक निश्चित चरित्र मिलता है उसका कारण अन्तर्द्वन्द्वात्मकता से द्वन्द्वात्मकता की ओर संक्रमण है।

नागार्जुन भीड़ के नहीं समाज के समर्थक है, अतः कवि भीड़वादी मूल्यों का उपहास करता है। नागार्जुन भीड़वादी नहीं, समाजवादी है। नागार्जुन के व्यंग्य, हास–परिहास और विद्रुप से भी मूल्यांकन हो सकता है। हास्य, मूल्यांकन की सामाजिक भंगिमा को व्यक्त करने वाला होता है।

संस्थागत मूल्यों में नागार्जुन सर्वाधिक महत्व, समाज की विकृतियों के विरूद्ध संगठित संघर्ष को देते हैं। वह बार–बार बदलाव का आह्वान करते हैं, और भारत के बिगड़े हुए भोले भारतीयों को भी समझाने की प्रेरणा देते हैं। वह जन घृणावादी (व्यक्तिवादी) नहीं, जनप्रेमी समाजवादी हैं, अतः जगह–जगह संगठन के मूल्यों को स्थापित किया गया है । यह संगठन हर बात पर सहमति व्यक्त कर बना सकते हैं। सच्चे मतभेद रखने और उनका आदर करने वालो के संगठन बना सकते हैं।

नागार्जुन का कवि आक्रोश का कवि होने के बावजूद अराजकतावादी मूल्यों का विरोधी है। वह संगठित सुसम्बद्ध सामाजिक क्रान्ति का समर्थक है, उत्तरदायित्वहीन हिंसा का न वह स्वतः स्फूर्त क्रान्ति या साहसिकता को मूल्य देता है। नागार्जुन बिना विवरण में गये हुए भी एक दूरदर्शी, जिम्मेदार, समाजदृष्टा हैं। कवि जो नहीं कहता, इस दृष्टि से देखें तो नागार्जुन की कविता में दार्शनिकता, तात्विक्ता, कोमल वृत्तियों की निमग्नता और प्रत्यक्षीकरण की अनेकरूपता नहीं है। वह केन्द्रीय अन्तर्विरोध पूंजीवादी जनतंत्र की असफलता पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है और इसे ही कविता में रूपायित करने को सर्वाधिक महत्व देता है। अतः उसके कथ्य में तीव्रता तो है पर अनेक पार्श्वता नही है। वह एक कालखण्ड की विशिष्ट स्थिति में जीवन, समाज और अपने को देखकर वह किसी सामान्य जीवन दशा की खोज नहीं करता। अतः विशिष्टता पार्टीक्युलिरिटी का अतिक्रमण कर सामान्य (जनरल) जीवनावस्थाओं या व्यक्तिनियतियों की ओर उन्मुखता नागार्जुन में नहीं है।

नागार्जुन के लिए वह अच्छा है जिसमें मनुष्य अपना अस्तित्व रख सके, विकास कर सके और मनुष्य की तरह रह सके। क्योंकि अधिकांशतः लोग ऐसा नही कर पा रहे

हैं । अतः दोष व्यक्ति का नहीं, व्यवस्था का हैं। अतएव नागार्जुन के लिए वही व्यक्तित्व और कृतित्व मूल्यवान है जो इस आधार भूत चुनौती का सामना करे और इसके लिए छिड़ी जंग में साथ दे। इससे बढ़कर अन्य किसी गति और गन्तव्य को नागार्जुन मुल्य नहीं देते । नागार्जुन मूल अन्तर्विरोध के निराकरण को ही सर्वोच्च नैतिकता मानते हैं। अतः उनका आक्रोश दुष्ट व्यवस्था के प्रति एक नैतिक प्रतिकिया है। वह किसी दृष्टिहीन, मनमौजी, कवि का अन्धा आवेश नहीं है, वह क्रान्तिकारी आवेश है, जो एक सामाजिक शस्त्र के रूप में प्रयुक्त हुआ है, अतः वह मूल्यवान है।

मानव मूल्य वस्तु और मानस की एकता से उत्पन्न होती है। सैमुअल अलेक्जेंडर मूल्य को गुण नहीं, वास्तविकता का नया चरित्र बतलाता है? प्रश्न यह है कि यदि मूल्य मानस सृजन है तो क्या वे भ्रम है? नागार्जुन के सन्दर्भ में यह प्रश्न इस प्रकार होगा कि जनतान्त्रिक व्यवस्था की असंगतियों के कारण इस अमूल परिवर्तन की कल्पना और इसके स्थान पर सर्वस्था संगत समाज के संरचना के विचार, छाया भास तो नहीं हैं? नार्थोप फे मार्क्सवादी चिन्तन को 'चिन्ता का मिथक', (मिथ ऑफ केन्सर्न) कहता है। यह इसलिए भी कहा जा सकता है कि देश में, कुछ लघु अंचलों (नक्सलवाड़ी, परवतीपुरम, तराई के कतिपय क्षेत्र आदि) को छोड़कर सशस्त्र क्रान्ति का कोई विस्तृत जनाधार या केन्द्र नही बन सका है। इन्दिरा सरकार तथा तत्पश्चात जनता–शासन में इन सामाजिक–क्रान्तिकारियों के दमन से यह युवा क्रान्ति फैल नहीं पायी, संकुचित हो रही है। इस स्थिति में यह संदेश उपजता है कि नागार्जुन जिस दृष्टि और मनोराज्य को महत्व देते हैं वह कहीं सुखद भ्रम तो नहीं है।

क्योंकि कोई भी मानसिक रचना पूर्णतः मानसिक नहीं होती , उसमें वाह्य यर्थाथ स्वतः ही प्रतिबिम्बित होता है, अतः किसी भ्रम को जो एक मानसिक रचना को सर्वथा अस्वाभाविक नहीं कह सकते इस तात्विक आधार पर नागार्जुन की उड़ानों को शुद्ध भ्रम नहीं कह सकते। दूसरे नागार्जुन ने सचेत होकर देखा था कि इस औपचारिक जनतंत्र मे इतने अन्तर्विरोध हैं कि वह जनसाधारण को अभावों और अपमानों से मुक्त नहीं कर

सकता। अतः वास्तविकता के प्रत्यक्षीकरण पर आधारित होने से नागार्जुन के मूल्य सामाजिक शक्तियों की विकास संभावना पर आधारित है, ना–समझी पर नही।

नागार्जुन में मताग्रह है, मतान्धता नहीं है। वह राजनैतिक जनपक्षधर हिंसा का समर्थक है, हिंसा मात्र का नहीं। दूसरे नागार्जुन की धारणा, कलकत्ता के अनुभवों पर आधारित है, अतः उसे मिथक नहीं माना जा सकता। नार्थोप फ्रे से अधिक विवेक संगत दृष्टिकोण सैमुअल अलैक्जैंडर का है। वह मूल्य को सर्वथा एक व्यक्तिगत या मानसिक नहीं मानता। उसके अनुसार मूल्य, वास्तविकता का ही एक चरित्र है जो वस्तुगत स्थितियों और हकीकतों के संदर्भ में विकसित होता है। जब हम किन्हीं इकाईयों , वस्तुओं, कृतियों आदि को पसन्द या नापसन्द करते हैं, तो उस प्रक्रिया में मूल्य उत्पन्न होते हैं। वे मानवीय सृष्टियाँ हैं पर उनका जन्म उनके सृष्टा के बाहर स्थित यर्थाथ (जीवन+समाज) से होता है।

वस्तुतः मूल्यों को अवास्तविकता के कारण ही भ्रम कहा जा सकता है, यथा स्वर्णपक्षी प्रणय आदि के अनुभवों में भ्रम बोध होता है, किन्तु जो मूल्य वास्तविकता से सम्बद्ध है उन्हें भ्रम नहीं कहा जा सकता है। और नागार्जुन के मूल्य वास्तविकता के परिवर्तन से सम्बन्धित हैं। नागार्जुन ने सामाजिक, राजनैतिक शक्तियों की गति देखकर क्रान्ति का मूल्य स्वीकार किया है, सनक में नहीं।

भोक्ता और दृश्य का संबंध अनुभव कहलाता है। अतएव भोक्ता को उस भोग्य स्थिति या दृश्य में मूल्य महसूस होता है, जबकि दृष्टा को विषय–विषयी में प्रियता–अप्रियता, समर्थन–विरोध आदि मस्तिष्कों के परस्पर सम्बन्धों संघर्षों से सम्बन्धित होते हैं अतः निर्णय मानव समूह में ही होते हैं। दूसरों के अस्तित्व के कारण ही भूलों और मूल्यों का ज्ञान होता है, तभी नागार्जुन बाबा कहते हैं कि अकेला कवि कटघरा होता है। दूसरों के पर्यवेक्षण में जिस सत्य या संवेदना का हम अन्वेषण करते हैं उसी को हम अपने भीतर पढ़ते हैं यही स्थिति बाबा नागार्जुन की है,। नागार्जुन का कथ्य, दूसरों के अध्ययन तथा स्वानुभव के पश्चात अपने भीतर के दृश्यावलोकन से

सम्बन्धित है। वह वास्तविकता से अपनी चेतना का अतिक्रमण कर, अध्यात्मवादियों के सदृश अमूर्तता की टटोल नही है।

कवि नागार्जुन का कथ्य, मनुष्य को पशु बनाने वाले अभाव के विरूद्ध 'धर्मयुद्ध' है। लेकिन नागार्जुन के द्वारा प्रतिपादित क्रान्ति में लड़ाई मात्र वर्ग शत्रु से नहीं अपने पक्ष और दल के लागों की अपरिवर्तनशीलता अथवा अप्रगतिशीलता के विरूद्ध भी होती है। अतः बाबा नागार्जुन प्यार-और मकान की तलाश का गहरा सम्बन्ध दिखाते हैं। वह अनुभव जानते हैं कि प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना मनुष्य पशु-मानव का समाज होगा, मानव-समाज नहीं।

ठेठ जातीय रूप की अभिव्यक्ति :

व्यक्ति जिस राष्ट्र में रहता है उसकी राष्ट्रीय चेतना से वह अनुप्राणित होता है। राजनैतिक परिस्थितियाँ उसके अंतः करण में जाने-अनजाने अपना प्रवेश कर जाती हैं। कवि उनसे प्रेरित होकर अपनी भावनाओं को अभि-व्यक्ति प्रदान करता है। बाबा नागार्जुन के काव्य का विस्तृत पक्ष राष्ट्र प्रेम से परिपूरित है। उनकी इन राष्ट्रीय कविताओं में सच्चे राष्ट्र सेवक का स्वरूप विद्यमान है। इन राष्ट्रीय कविताओं में लोक मंगल की कामना व्यक्त की गयी है। इन राष्ट्रीय कविताओं में मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया गया है।

'युगधारा' की 'तर्पण' शीर्षक कविता गाँधी जी से सम्बन्धित है। इसमें कवि ने उनकी मृत्यु पर क्षोभ व्यक्त किया है, कवि ने आशा व्यक्त की है कि बापू के मरने के बाद भी उनके स्वप्न भावी भारत में साकार होंगें और भारत माता का अभिनव श्रंगार करेगें। कतिपय पंक्तियाँ उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती हैं। जिसमें क्षोभ की गहरी व्यथा मुखरित हो उठी हैं-

'जिस बर्बर ने
कल तुम्हारा खून किया
वह नहीं मराठा हिन्दू है,

वह प्रहरी है स्थिर स्वार्थों का

वह मानवता का महाशत्रु

हम समझ गये।'

कहने को भारत स्वतंत्र हो गया लेकिन देश में परिव्याप्त स्वार्थ साधना ने देश को जर्जर कर दिया। उसकी भावी योजनाएं कागज पर काले अक्षरों में सिमट कर रह गई। भ्रष्टाचार का ताण्डव होने लगा। स्वार्थ लिप्सा में लिप्त जन-नायक, जन-शोषक का रूप धारण कर सामने आने लगे, कवि ने इन पर गहरी चोट की है। वह चाहता है कि प्रत्येक प्राणी सच्चाई और ईमानदारी से कार्यरत हो। देश की दुदर्शा पर कवि चित्त खिन्न दिखाई देता है। भारतेन्दु ने भी देश की दुर्दशा का रूप-

'हा-हा भारत दुर्दशा न देखी जाई।'

वर्णित किया है। परन्तु नागार्जुन काव्य में ऐसे वर्णन के साथ परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रेरणा भी देते चलते हैं :-

'भारत माता के गालो पर कसकर पड़ा तमाचा है,

रामराज्य में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है।'

'प्यासी पथराई आँखें' संग्रह में भी कतिपय रचनायें देश प्रेम पर आधारित है। इन रचनाओं में कवि ने प्रान्तीयता के संकीर्ण घेरे से ऊपर उठकर अखण्ड राष्ट्रीयता के प्रति मोह व्यक्ति किया है। जब तक ऐसी स्थिति नहीं आयेगी तब तक देश का कल्याण सम्भव नहीं। प्रान्तीयता के विष का दमन करना ही पड़ेगा और राष्ट्रीयता की संजीवनी देकर राष्ट्र को अमरता प्रदान करनी पड़ेगी। ऐसा न होने पर देश का भविष्य अन्धकार के गर्त में गिर कर नष्ट हो जाएगा-

स्थापित नहीं होगी क्या

लाला लाजपतराय की प्रतिमा मद्रास में ?

दिखाई नहीं पड़ेगें लखनऊ में सत्यमूर्ति ?

सुभाष एवं जे0 एम0 सेन गुप्ता क्या सीमित रहेगें,

भवानीपुर और शाम बाजार की दुकानों तक ?

तिलक नहीं निकलेगें पूना के बाहर ?

इन कविताओं में कवि का हृदय उमड़कर सामने आया है। जिन आदर्शों के द्वारा भारत का भविष्य निर्मित होगा उनके प्रति गहरा ममत्व प्रदर्शित किया है। साम्राज्यवाद और पूंजीवाद पर कवि ने तीखा प्रहार कतिपय रचनाओं में किया है।

कतिपय रचनाओं में कवि की साम्यवादी भावना का भी परिचय मिलता है। वह सामन्तवादी भावनाओं का विरोधी है, श्रमजीवियों एवं शोषितों के प्रति कवि के हृदय में सहानुभूति है। पारिवारिक विपन्नता नें कवि को जहां एक ओर संघर्षशील प्रवृत्ति की दृढ़ता दी है वहीं पूँजीवाद के प्रति उसके मन में आक्रोस भी दिया है।

विचार से साम्यवादी होते हुए भी चीनी बर्बर आक्रमण के समय कवि ने राष्ट्रीयता का भी परिचय दिया है साम्यवादी के प्रति मन में मोह होते हुए भी जिस साम्यवाद का रूप चीन ने सामने रखा उसके प्रति कवि के मन में घोर घृणा विद्यमान है। 'माओं' की नीति पर एक उद्वरण देखिये–

'लहू की सिंचाई है, अमन की खेती ......

लेनिन की ला जंभाई नहीं लेती।

सपने इंकलाब के यहां वहां भर गया

वो माओं कहां है ? वो माओ मर गया।'

एक और उदाहरण देखिये जिसमें उनके अंन्तःकरण का स्पशट रूप दिखाई देता है :–

'कहा था कन्फयुसियस के बेटों ने–

नमों बुद्धायः बुद्धं शरणम् गच्छामि।

चीख रहे वही अब जोरो से

नमो युद्धायः युद्धं शरणम् गच्छामि।'

नागार्जुन भारत माता की अभ्यर्थना केवल भावात्मक धरातल पर ही नहीं करना चाहते जैसा कि प्राचीन कवियों की क़ाव्य –साधना से परिलाक्षित होता है। नागार्जुन भारत माता का यश गान करने की अपेक्षा उसके लिए कठोर श्रम की साधना की अपेक्षा करते हैं।

बाबा नागार्जुन जन कवि हैं, राष्ट्रकवि की राजकीयता ने उन्हें कभी आकृष्ट नहीं किया। यों उनकी काव्य चेतना के अनुसार राष्ट्रीयता का अर्थ और स्वरूप देश की बदलती हुई परिस्थितयों के साथ ही बदलती रही हैं। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के अधीन – 14 अगस्त 1947 तक राष्ट्रीयता का जो स्वरूप था, वही 15 अगस्त से नहीं रहा। पराधीन देश में देश की स्वतंत्रता राष्ट्रीयता का सर्वप्रमुख आयाम थी। लेकिन स्वतंत्र काल में अर्थात् देश की मुक्ति के बाद जनता की मुक्ति राष्ट्रीयता का सर्वप्रमुख आयाम हो गया। हांलाकि देश के नाम पर हुँकार करने वाले कवियों ने राष्ट्रीयता के इस आशय को ईमानदारी से स्वीकार नहीं किया। इसीलिए दूध के लिए विलखते बच्चों के लिए स्वर्ण लूटने की घोषणा करने वाले कवि स्वर्ग में उर्वशी से उलझ गये या कभी किसी झटके से होश आता है तो परशुराम की प्रतीक्षा करने लगते हैं, जन शक्ति पर उन्हें भरोसा नहीं है। नागार्जुन राष्ट्र और जनता में कोई फर्क नहीं मानते, इसलिए राष्ट्र की सही स्वतंत्रता का अर्थ है जनता की स्वतंत्रता, पूंजीवादी शोषण और दमन से। राष्ट्र की शक्ति का मूल श्रोत है जनता की शक्ति। आज की राष्ट्रीयता का यही अर्थ है, वे यह भी समझते हैं कि देश को नव उपनिवेशवाद के चंगुल से मुक्त करना आधुनिक राष्ट्रीयता का एक रूप है।

बाबा नागार्जुन जन–जीवन के सफल चितेरें हैं। उनके काव्य में ठेठ जातीय रूप की अभिव्यक्ति हुई है, वे युगदृष्टा हैं, मानवता के सच्चे उपासक हैं।

नैतिक आयामों की खोज :

आज का जो कवि जनता की आकांक्षाओं सपनों एवं कार्रवाइयों का वस्तुगत चित्रण करेगा, वह 'राजनीतिक' हुए बिना नहीं रहा सकता। जो कवि इस संघर्षरत जनता से जितना जुड़ा रहेगा उसके सपनों को साकार करने की कार्रवाइयों से जितना प्रतिबद्ध होगा वह उतना अधिक अपने लेखन में राजनीतिक होगा। प्रगतिशील कवियों में नागर्जुन के सबसे अधिक राजनीतिक होने का कारण यही है। नागार्जुन की काव्य चेतना के निर्माण में चौथे एवं पॉचवे दशक के किसान मजदूर संघर्षों की, उनमें उनकी प्रत्यक्ष भागीदारी की बुनियादी भूमिका रही है। सन् 38 में बिहार के प्रसिद्ध अमबारी किसान सत्याग्रह के तीसरे जत्थे का नेतृत्व उन्होनें किया था, जिसके पहले जत्थे के नेता राहुल सांकृत्यायन थे। इस सत्याग्रह में वे गिरफ्तार हुए थे और सन् 46–47 में वे दरभंगा जिला किसान सभा के अध्यक्ष भी थे । अपनी प्रतिबद्धता के बारे में वें कहते हैं–

> प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ –
> बहुजन समाज की अनुपम प्रगति के निमित्त–
> संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ...
> अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया धसान' के खिलाफ....
> अन्ध – बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बताने के लिए....
> अपने आप को भी व्यामोह से बारंबार उबारने के खातिर....
> प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध ।

('खिचड़ी विप्लव देखा हमने', पृष्ठ–57)

यद्यपि यह कविता सन् 1975 में लिखी गयी, लेकिन जिस प्रतिबद्धता का स्पष्टीकरण इन पंक्तियों में किया गया है, वह नागार्जुन की काव्य–चेतना की विशेषता प्रारम्भ से ही रही है यही कारण है कि कविता में बहुजन समाज' की प्रगति' और मेहनतकश जनता के जीवन की बात करने पर नागार्जुन की कविताओं के बारे में बात करना अनिवार्य हो जाता है, साथ ही यह भी सच है कि नागार्जुन की कविताओं को

पढ़ने पर जीवन के बारे में, उसकी विविध गतिविधियों के बारे में, उसके भक्तिव्य के बारे में बात करने को मजबूर होना पड़ता है। नागार्जुन राजनीतिक कवि हैं, लेकिन वे अपने को अक्सर जनकवि कहते हैं और प्रेमचन्द्र को अपना 'अग्रज' (पुरानी जूतियों का कोरस पृ0– 9) मानते हैं, भारतेन्दु को सम्बोधित करके कहते हैं– 'प्रियवर जनमन के बन गये, जन–जन को गुरू मानकर' (पुरानी जुतियों का कोरस, पृ0–12) नागार्जुन जनता को गुरू मानते हैं। अपने को जनता के ऊपर नहीं समझते। यह अपने आपको' 'व्यामोह' से उबारने की प्रक्रिया का आधार है। इस प्रक्रिया से गुजरने वाले कवि की राजनीति वास्तव में जीवन–संघर्ष है और यह जीवन–संघर्ष कथनी और करनी को एक करने का संघर्ष है, मानव–मूल्यों को अमल में लाने का संघर्ष है। इस सम्बन्ध में नागार्जुन की चेतना को समझने के लिए 'अमलेन्दु एम0 एल0 ए0' शीर्षक कविता (पुरानी जुतियों का कोरस, पृ0–44) पर गौर करना चाहिए। इस कविता में दो पात्र हैं एक स्वयं कवि और दूसरे अमलेन्दु एम0 एल0 ए0। दोनों ही साहित्यकार हैं और दोनों भागलपुर की एक साहित्य –गोष्टी में एक साथ उपस्थित हैं। कवि (जिसे हम नागार्जुन के रूप में देखें तो गलत नहीं होगा) कविता और राजनीति के घनिष्ट रिश्ते को मानता है, क्योंकि वह जीवन की समस्याओं से जुझ रहा है– गांव से आया था खत–पसाते वक्त भात/बीबी के पक गये थे हाथ/कौन भला देगा इस मुसीबत में साथ? (पुरानी जुतियों का कोरस पृ0 '47') अमलेन्दु जी शासक दल के विधायक हैं, जमें हैं छज्जूबाग के करीब नव–निर्मित क्वार्टर में/ बिछा है सामने शतरंज/ साहित्य और संस्कृति है पीठ की ओर '(वही पृ0 '47') इसलिए वे गोष्ठी में भाषण करते हुए कहते हैं–

बन्धुओं, दीजिए न आने
राजनीतिक कालुष्य साहित्य के भीतर
स्वयं भले गरल पान कीजिए
समाज को परंच अमृत ही दीजिए।

(उपर्युक्त पृष्ठ–45)

ऐसी बात साहित्य गोष्ठी में जाकर वही कह सकता है, जिसके सामने शतरंज हैं और साहित्य – संस्कृति पीछे–पीछे है। यानी कथनी –करनी में कोई मेल नहीं हैं उनके सामने जो शतरंज है, वह केवल समय काटने का खेल नही, बल्कि राजनीतिक चालबाजी भी है। ऐसे यथास्थितिवादी लोग कविता की संघर्षकारी भूमिका से, कथनी –करनी को एक करने के प्रयत्न से घबड़ाते हैं, इसीलिए राजनीति को साहित्य से अलग रखने का उपदेश देते हैं और स्वयं विधान सभा में हाज़िरी बनाने की चिन्ता लिए बिदा हो जाते हैं। इसके विपरीत नागार्जुन का कवि जिस जीवन–प्रकिया में शामिल है उसकी दिशा भिन्न है। उन्ही की शब्दों में–

मगर हुजूर मुआफ हो बेअदबी
अगर मैं उछल–उछल के कहूँ कि
ऐंठ रहा है जीवन, सुलग रहा है जीवन
राजनीति पर हावी हो रहा है जीवन
ढोंगियों की पोल खोल रहा है जीवन
धड़क रहा है जीवन, डोल रहा है जीवन
चढ़के मौत के सर पे बोल रहा है जीवन
अंतस् की अभिव्यक्ति ही तो होगा साहित्य
खाते है गुड़, गुलगुले से रखेगें परहेज।

(उपर्युक्त पृष्ठ–47–48)

नागार्जुन जो जीवन जी रहे हैं, वह ऐंठ रहा है, सुलग रहा है, जाहिर है कि वह यथास्थति में रहने वाला नहीं है। यहॉ जीवन के ऐंठने में एक तरफ जीवन की पीड़ा व्यक्त हो रही है, तो दूसरी तरफ पीड़ा से मुक्ति पाने की हरकत भी । यह जीवन पीड़ित है, लेकिन लाचार नहीं, इसीलिए अमलेन्दु जी एम0 एल0 ए0 जैसे लोगों की छलछद्म भरी शासक वर्गीय राजनीति पर वह हावी हो रहा है। इस जीवन का बाहर – भीतर एक है, इसलिए वह ढोंग की पोल खोल रहा है। वह जीवन इतना शक्तिशाली है

कि मौत के सर पर चढ़कर बोल रहा है। यही है नागार्जुन की कविता की राजनीति की मूल विशेषता । इस राजनीति से कविता को अलग करने का नतीजा होगा उसे जीवन से अलग करना। उपर्युक्त कविता सन् '75' में लिखी एक कविता ध्यान खींचती है। हमारे देश में सर्वोदय की छत्रछाया में काम करने वालों में, साहित्य कौन कहे, पूरी जनता को राजनीति से अलग रखने की कोशिश की, जो अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से वर्तमान शोषणमूलक व्यवस्था को कायम रखने का अभिमान था। इस परव्यंग्य करते हुए नागार्जुन कहते हैं –

राजनीति के बारे में अब एक शब्द भी नहीं कहूंगा
तकली मेरे साथ रहेगी, मैं तकली के साथ रहूंगा
नही जरूरत रही देश में सत्याग्रह की, अनुशासन है
सही राह पर हाकिम है तो भली जगह पर सिंहासन है

राजनीति से अलग रहने का ऐलान करते हुए देश के आधुनिकीकरण का विरोध करने (तकली के साथ रहकर) सत्याग्रह (यानी सत्य के आग्रह) को अनावश्यक समझने और अफसरशाही तथा सिंहासन (यानी वर्तमान सत्ता) का समर्थन करने के ढोंग का यहां पर्दाफाश किया गया है। इसी कविता की वे पंक्तियाँ भी देखिये........

सत्य होगा अन्दर, ऊपर से सोने का ढक्कन होगा
चाँदी की तकली होगी, तो मुंह में असली मक्खन होगा
करनी में गड़बड़ियां होगीं, कथनी में अनुशासन होगा
हाथों में बन्दूके होगी, कन्धों पर सिहांसन होगा।

('खिचड़ी विप्लव देखा हमने', पृष्ठ–73)

'सोने का ढक्कन' और 'चांदी की तकली' शोषक वर्ग का प्रभाव दिखा रहे हैं।, इसलिए जब सर्वोदयी नेता कहते हैं, 'राजनीति के बारे में अब एक शब्द भी नही कहूँगा' तो नागार्जुन देखते है कि उनके 'कन्धों पर सिंहासन है' वे स्वयं सिंहासन पर नही हैं, बल्कि शासक वर्ग का सिंहासन ढो रहे हैं। इस राजनीति के खिलाफ नागार्जुन की पूरी चेतना है, पूरी कविता है, उनका पूरा व्यक्तित्व है और यह सर्वथा उचित है, क्योंकि

नागार्जुन मनुष्य की मुक्ति के कवि हैं। अपने प्रथम कविता-संग्रह 'युगधारा' (1953) की प्रथम कविता 'जन-वन्दना' में जनता की विराट् शक्ति की वंदना करते हुए उन्होनें कहा था- 'तुम मानवता के दूषित-गलित अवयवों पर प्रलयांवयहिव बन बरस रहे।' उसी कविता के अंत कहा था- मै निष्ठापूर्वक सोच रहा-

कल व्यक्ति -व्यक्ति के हेतु सुलभ होगें

अवश्य मौक्तिकाभरण।

('युगधारा', पृष्ठ-11)

प्रकृति के जैविक रिस्तों की गरमाहट :

प्रकृति नागार्जुन की संवेदना का ऐसा अंग है जो उनके और पाठक के बीच स्वाभाविक सम्बन्ध सेतु बना देता है। दूसरे शब्दों में, प्रकृति नागार्जुन और उनके पाठकों के बीच ऐसे विश्वास को जन्म देता है कि नागार्जुन किसी भी विषय को बनाकर बेहिचक उसे पाठको के हाथ सौंप देते हैं। प्रकृति उनमें सहजता, निष्छलता, स्फूर्ति, विनम्रता, विश्वास, आस्था और दृढ़ता उत्पन्न करती है। सभी स्थितियों में प्रकृति उनमें पुलक और प्रसन्नता का भाव जगाती है इसी लिये जीवन की प्रसन्नता और सहजता पर आघात पहुँचाने वाली वस्तु या घटना (प्रकिया) के प्रति घृणा जगाने के लिए प्राकृतिक उपादान का ही इस्तेमाल करते हैं। 'जिस तरह शासन की बन्दूक' में कोकिला जली, ठूँठ पर बैठकर कूक जाती है और पाठक उसके निहितार्थों का संकेत पा लेता है। उसी तरह अमरीकी राष्ट्रपति कार्टर के आगमन पर 'हम विभोर थे अगवानी में' कविता में नागार्जुन साम्रज्यवाद के युद्धोन्माद विकासशील देशों के प्रति उसकी नीति और साधारण जनता के हितों-आकांक्षाओं को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का हल्का सा आश्रय लेते हैं:-

वहाँ तुम्हारी बगिया में तो न्यूट्रान बम के फल लटके हैं,

अणु-ऊर्जा की बढ़ोत्तरी में यहाँ तुम्हें लगते झटके हैं

हमे नहीं चाहिए मसानी-माता का बारूदी आँचल जाओं भास्मासुरी नृत्य का कही और ही करो रिहर्सल।

(खिचड़ी विप्लव देखा हमने)

प्राणि मात्र का नाश करने की क्षमता से सम्पन्न 'सात्विक' और 'मानवीय' कहे जाने वाले न्यूट्रान बम के फल बगियां में लटके हैं। उन्हें बगिया में कहकर बाबा नागार्जुन दावे से यह मान लेते हैं कि उनका पाठक उनके आशय तक पहुँच गया है। इसलिये अन्त आते-आतें जब कहीं और जाकर 'भस्मासुरी' 'नृत्य' का रिहर्सल करने के लिए ललकारते हैं तब उसमें उनकी पूरी घृणा और हिकारत पूरा रोष और आत्मविश्वास सन्निहित रहता है। पाठक समुदाय पर इतना अटूट विश्वास नागार्जुन के अलावा उनके समकालीन या परवर्ती किसी कवि में देखने को नहीं मिलता।

निश्चय ही किसी कवि का यह अडिग विश्वास जनता के साथ उसके अविच्छेद्य सम्बन्ध पर निर्भर है। नागार्जुन की कविताओं में अगर हमें जनता की भावनाओं, आकांक्षाओ का सुसम्बद्ध इतिहास देखने को मिलता है तो इससे पता चलता है कि 'यात्री' नागार्जुन अपनी तमाम यायावरी के बावजूद अपने विशाल पाठक वर्ग से असंपृक्त नही बल्कि संवेदनात्मक रूप में दृढ़तापूर्वक संपृक्त है और यही उनकी 'तात्कालिक' लगने वाली कविताओं की कलात्मक सफलता का रहस्य है।

कवि नागार्जुन के साहित्य में भाषा की सर्जनात्मकता, मनुष्य के संघर्ष के साथ-साथ मनुष्य और प्रकृति के आपसी रिश्तों से भी अपनी ऊर्जा लेती है। मनुष्य का प्रकृति के साथ जो रिश्ता है वह आदिम है और अद्यतन भी। संघर्ष-परक है रागात्मक भी। नागार्जुन के जन-जीवन सम्बन्धी प्रेक्षण जितने प्रामाणित होते हैं उतने ही प्रकृति सम्बन्धी प्रेक्षण :-

'कौए ने खुजलाई पांखे बहुत दिनों के बाद'

प्रकृति सम्बन्धी पैने प्रेक्षण के साथ-साथ अर्थ गर्भत्व और लक्षण-मूला ध्वनि (लाक्षणिक व्यंजना) की ओर भी बराबर ध्यान आकर्षित होने लगता है।

पहले यथा प्रसंग कहा जा चुका है कि प्रकृति नागार्जुन में पुलक और प्रसन्नता का संचार करती है। 'शासन की बन्दूक' का आतंक तोड़ने के लिए वे जली ठूँठ पर बैठकर कोकिला के कूक जाने का प्रतीक चुनते हैं। इसी तरह जीवन की तनावपूर्ण स्थितियों में, उनसे मुक्त होकर नये संकल्प और नये उत्साह के साथ जीवन से जुड़ने, उसे भोगने और संघर्ष करने के लिए खुद को तैयार करते हैं प्रकृति के साथ लगाव के माध्यम से। प्रकृति के साथ नागार्जुन का लगाव पलायन वृत्ति का नही, जीवन के प्रति उनके अनुराग का सूचक है। गाँव के प्राकृतिक वातावरण में पहुँचकर वे अनुभव करते हैं–

बहुत दिनों के बांद
अबकी मैंने जी भर भोगे
गंध–रूप–रस–शब्द–स्पर्श सब साथ–
साथ इस भूतल पर।
'नीम की दो टहनियाँ' सीखचों के पार हिलती हुई दिखाई देती है,
यह कपूरी धूप
शिशिर की यह दुपहरी, यह प्रकृति का उल्लास,
रोम–रोम बुझा लेगा ताजगी की प्यास।

दुपहरी 'शिशिर' की है इसलिए धूप कपूरी है, इससे रोम–रोम 'ताजगी' की प्यास बुझा लेगा। प्रकृति नागार्जुन की ताजगी की प्यास को तृप्त करती है।

शिशिर की कपूरी धूप से मिलती–जुलती संवेदनाभूत है 'हजार बाँहो वाली शिशिर–विष कन्या' की जो 'साँसों में प्रलय की कथा' लेकर उतरती है, अपने हिमदग्ध होठों से 'प्राण शोषी चुम्बन' करती है और तन–मन पर' ज्वालामय अनुभूति चंदन जैसी शीतल है।

पूँजीवादी व्यवस्था, श्रमिक जनता का आर्थिक रूप से ही शोषण नहीं करती, वह उसके सौन्दर्य बोध को कुंठित करती, उसके जीवन को घृणित और कुरूप भी बनती है।

क्या भारत में और क्या यूरोप में कहीं भी अब तक कोई बड़ा मानव–प्रेमी कवि नहीं हुआ जो प्रकृति का भी प्रेमी न रहा हो।'

('नयी कविता और अस्तित्ववाद' पृष्ठ–149)

किसान कुल में जन्म लेने वाले कवि का प्रकृति से अंतरंग परिचय और सघन लगाव हो, यह स्वाभाविक है। छायावाद के बाद नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल जितने रूपों में और जितने स्तरों पर प्रकृति से उत्प्रेरित होते हैं उतना और कोई कवि नहीं होता है।

नागार्जुन जब 'बहुत दिनों के बाद' अपने गाँव जाते है तब जीभरकर 'पकी सुनहली फसलों की मुस्कान' देखते हैं 'अपनी गंवई पगडंडी की चंदनवर्णी धूल' छूकर अपूर्व कृतार्थता अनुभव करते हैं। वे जहाँ रहते है, वहाँ के एक–एक पेड़ पौधों की प्रकृति को पहचानते हैं :–

नये–नये हरे–हरे पात
प्रकृति ने ढक लिये अपने सब गात
पोर–पोर डाल–डाल
पेट–पीठ और दयरा विशाल
ऋतुपति ने कर लिए खूब आत्मसात।

'बेतवा कनारे' पहुँचकर मन के मृदंग पर लहरों की थाप सुनते हैं और ऐसे हो जाते हैं कि :–

'मालिश फिजूल है
पुलकित अंग–अंग पर बेतवा किनारे।'

नवम्बर के मासांत में हेमन्ती बादलों की अतिशीतल बड़ी–बडी बूंदों को देखकर अपने–रोम की पुलक को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं :–

ओह, कैसे मूड में इधर को
निकल आये हैं हेमन्ती बादल

लगता है कलही इन्हें
तगड़ी बोनस मिली है
चार दिनों के रईस हेमन्ती बादल
मौज के अपने सहज मूड में हैं
निश्चय ही ये किसी को
चिढ़ाने नहीं निकले हैं।

वर्षा और बादल नागार्जुन की संवेदना को अनेक रूपो में उद्दीप्त करते हैं। हेमन्त के बादल चार दिनों के रईस जैसे तुरन्त बोनस पाया हुआ मजदूर, वे किसी को चिढ़ाने नही, अपनी मौज में यहाँ–वहाँ शीतल बूंदे टपकाते जाते हैं। मानव–जीवन और स्वभाव के साथ प्रकृति को जोड़कर देखने की, अपनी संवेदना को प्राकृतिक उपादानो से भी व्यक्तकर देने की, तथा जिन्हें प्रकृति या ऋतुओं का ज्ञान न हो, उनके लिए भी अपनी कविता ग्राह्य बना देने की कला नागार्जुन में अद्वितीय है। हेमन्ती बादलों से भिन्न संदर्भ देकर बदलियों के बारे में वे लिखते हैं।:–

पवन ने बहका लिया था
मेघ कुल की पुत्रियां है।
बदलियां हैं।
ओफ, इनसे क्यों डरे हो?
.....कहाँ इनमें बिजलियाँ हैं।

प्रकृति से नागार्जुन का ऐसा रिश्ता है कि वे 'बसंत की अगवानी' करते हैं। तय है प्रकृति उनके यहाँ जीवन के साथ जुड़ कर आयी है। यह मनुष्य के जैविक रिश्तों की पहचान का सबब बनती है। क्योंकि नागार्जुन के लिए प्रकृति को याद करना प्रकृति को रूपवादी आधार पर याद न करना होकर, मानवीय संपृक्तियों और उसकी आकांक्षाओं को याद करना होता है, इसीलिये नागार्जुन के प्रकृति सत्यों का निर्माण जीवन सत्य के मर्म की निर्मित के साथ सामने आते हैं। वह प्रकृति का उद्दीपक की तरह इस्तेमाल करते हैं

जो कि यह रीतिकालीन मानसिकता का उद्दीपन भाव नहीं है बल्कि एक ठोस वस्तुपरक सत्य का संधान है। स्पष्ट है नागार्जुन की प्रकृति मानवीयता के अंतर्निहित सहकार की कहानी कहती है।

कविता के वैचारिक सरोकार :

नागार्जुन की कविता के दो क्षेत्र उभरते हैं, प्रथम वर्तमान सामाजिक–राजनैतिक व्यवस्था के अन्तर्विरोध का तीव्र बोध और अथाह अहसास तथा द्वितीय प्रजातंत्र के लिए सशस्त्र–दृष्टि से जन क्रान्ति की अवधारणा इन्हीं दो स्तम्भों पर नागार्जुन का काव्य वैभव खड़ा है। इनमें प्रथम 'व्यवस्था' अर्थात् शासन व्यवसायिक–राजनैतिकदल, संसद–न्यायालय, उत्पादन, साधनों पर एकाधिकार प्रभुत्व आदि का निर्मम अनावरण नागार्जुन ने किया है और द्वितीय, इस पूँजीवादी व्यवस्था की आमूल उलट–पलट के लिए सशस्त्र क्रान्ति की कार्यवाहियों का प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष समर्थन किया है।

नागार्जुन के लिए जनतंत्र की असफलता और उसके प्रपंच का बोध, एक मानसिकता विरोध (आब्जैसन) की तरह है जो कभी उनके कवि मानस को मुक्त नहीं करता। इस आवेश में वह किसी व्यक्तिगत जीवन–दर्शन का विकास नहीं करते दिखाई देते, न वह परिवर्तन की प्यास और व्याकुलता से परे जाकर तटस्थस्पन्द और चेतना प्रवाहों का अवलोकन करते हैं। वह आत्मनिष्ठ कवि नहीं, सर्वनिष्ठ या सुख साधन रहित जन साधारण जनके भवात्मक संघर्ष के कवि हैं। नगार्जुन में मुक्तिबोध की तरह दर्शनिकता या मार्क्सवादी बौद्धिकता नहीं है, रांगेय राघव या राजीव सक्सेना की तरह वह विचारधारा को कविता में बाँधते हैं। उनकी कविता में यह उत्तर नहीं मिल सकता कि मानव विकास कैसे हुआ और आज जो वर्ग वैषम्य है, वह किस तरह आज तक आया। इस कविता में जीवन संघर्ष के सामानान्तर चलने वाले मनोभावों की लहरे नहीं हैं, नही प्रश्नानुकूलता है कि यह जगत कैसे जन्मा, मानव स्थिति क्या है? क्रान्ति कहीं दुःखदग्ध मन की छायाभास फंतासी तो नहीं है? क्या सशस्त्र–क्रान्ति है ? हमारे सारे सवालों–समस्याओं का उपचार है? क्या पूँजीवादी जनतंत्र में इतनी शक्ति या लचक नहीं

है जो वह श्रमिकों और अन्य निर्बलों की दशा में सुधार कर दे? विकास यात्रा के धीमेपन को देखकर अपने अधैर्य के कारण तो कही नागार्जुन अतिवादी विकल्प प्रस्तुत नहीं किये हैं?

नागार्जुन की कविता में सूक्ष्म वैचारिकता है, जिसमें सामाजिक–राजनैतिक व्यवस्था का सपाट विरोध और स्पष्ट क्रान्तिकारी विकल्प है। यही नागार्जुन की शक्ति और सीमा है और इसी के आधार पर वह अपनी स्पष्ट पक्षधरता का वैचारिक उन्मेष प्राप्त करते हैं और वाह्ययथार्थ एवं सामाजिक शक्तियों के चक्रव्यूह में नही घुसते। वह भूख और भ्रष्टाचार के विरुद्ध खड़े होकर आवश्यकताओं या अछूते आयामों तथा अनुभूतियों का आंकलन नहीं करते। लेकिन वह अपना संदेश छिपाते नहीं है, और न अकवियों की तरह संदेशहीनता और कोरे ध्वंसवाद से ग्रस्त हैं। अकविता में व्यवस्था का ही नही, सभ्यता, मानवीयता और मानवीय संस्कृति को भी निर्वसन किया गया है। प्रारम्भ में नागार्जुन की कुछ ऐसी कविताएं अकवियों के साथ प्रकाशित हुई थी, किन्तु शीघ्र ही विशेष कारणों से सशस्त्र दृष्टि से सन्नद्ध हो गये। अतएव वह वर्ग चेतना के कवि हो सके। वह कविता को हिंसा नहीं, हिंसा के विरुद्ध हिंसा मानते हैं। जनता का संवैधानिक या कानूनी शोषण ही सबसे बड़ी हिंसा है और उसके विरुद्ध हिंसा अपराध नहीं जनहित कारिणी है।

सपाट कथ्य और स्पष्ट विकल्प का आधार वे मानव–मूल्य जिनकी भित्ती पर नागार्जुन की कवितात्मक उखाड़–पखाड़ और सशस्त्र क्रान्ति का विकल्प स्थित है। अतः कथ्य की पहचान मूल्यों के निकास पर होती है। कवि का कथ्य अतिवादी या उग्र हो सकता है, उसकी दृष्टि सशस्त्र हो सकती है। और उसके मूल्य व्यक्तिगत, व्यक्तिगतवादी, आत्मग्रस्त और अमूर्त हो सकते हैं। हिन्दी कविताओं में अमृता भारती की कविताओं में सशस्त्र दृष्टि है परन्तु साथ ही उनकी दार्शनिकता अरविन्द दर्शन से प्रभावित है। अरविन्द भी क्रान्तिकारी थे पर दर्शन में अध्यात्मवादी थे। इसी प्रकार

वीरेन्द्र कुमार जैन क्रान्ति समर्थक है, पर उनके विश्वास और मूल्य धर्मानुरंजित हो जाते हैं।

मूल्य के विषय में कार्लमेनहायम ने हमें सावधान किया है कि व्यक्ति की किसी अभिवृत्ति या चित्तवृत्ति को सचेत चयन मानकर उसे मूल्य के रूप में व्याख्यायित करना अयुक्ता-युक्त है क्योंकि 'मूल्य' शब्द में यह अर्थ निहित है कि उसमें सचेत होकर चयन या वरण होता है। लेकिन कई व्यक्ति ऐसे हो सकते हैं जो बचपन से किसी कला कृति में आनन्द लेते आये हैं। इस स्थिति में वो कलाकृति विशेष उस पाठक का चुना हुआ मूल्य नहीं माना जाना चाहिए। यह भी मानना ठीक नही है कि सांस्कृतिक साहित्यिक जीवन वस्तुगत मूल्यों की सृष्टि करते हैं या उनसे रंजित रहते हैं।

कार्ल मेनहायम का मंतव्य है कि किसी कवि में केवल सचेत चेतन ही नहीं होते, उसमें उसके आदिम अंतः प्रवृत्तिगत 'स्वभाव' या अभिवृत्तिपरक उत्तेजनाएं प्रतिक्रियायें और विस्फोट भी व्यक्त हो सकते हैं। अतः मूल्यों के सिवा किसी लेखक या कवि के कथ्यानुसंधान के लिए मूल्य अर्थात सचेत होकर किये गये चयनों, प्रियताओं तथा अग्रहों के अलावा अंतः प्रवृत्तिगत या स्वभावगत प्रतिक्रियायें पसन्द को मूल्यों की खोज में अपेक्षित नहीं करना चाहिये। भूख विषमता और बंधुत्वहीनता के कारण नागार्जुन का कवि वर्तमान व्यवस्था से असंतुष्ट था। अतः यह मनोराज्य परक मानसिकता वर्तमान व्यवस्था को तोड़ती है, और अपनी कल्पना के अनुसार नयी सामाजिक व्यवस्था की रचना करती है, जैसे कि साम्यवादी देशों में हुआ है। इसी से प्रेरित नागार्जुन की कविता में इच्छा-बिम्ब या मनोराज्य-परक विचार, व्यक्तियों के कार्य के लिए प्रेरक बनजाते हैं और प्रयोजक-उत्तेजन की भूमिका अदा करते हैं।

सप्तम दशक के उत्तरार्ध में 'सशस्त्र दृष्टि', सशस्त्र राजनीति और 'सशस्त्र मनोदशा' का वातावरण बनता गया है। 'पक्षधर' साहित्य की सृष्टि इसी मांसिक मौसम में हुई है। यह छापामार मनोवृत्ति और सामाजिक क्रान्ति के मूल्यों का साहित्य है। वह यही कहना चाहता है कि पूंजीवादी जनतंत्र में औपचारिकता का निर्वाह अधिक होता है,

अतः वोट से नही, बुलट से ही ऐसा परिवर्तन सम्भव है कि यहाॅ द्वितीय प्रजातंत्र स्थापित हो सके जिसमें श्रमिक वर्ग निर्णायक होगा, अल्प वित्तीय मध्यम वर्ग नही, जो धनी और निर्धन दोनों को बनाये रखना चहते हैं।'

सशस्त्र क्रान्ति के लिए, साहित्य क्षेत्र में जनमत बनाने के लिए नागार्जुन नंगापन को अन्धा होने के खिलाफ कार्यवाही मानते हैं। कवि के लिए अब अंधकार, गोश्त और कीचड़ पर ही जीवित रह सकती है। कवि अपने सुख पड़ोसियों के दाँत टूटे और उसके स्वास्थ्य के सत्यानाश की कामना करता हुआ अपने कायर दिमाग पर लानत भेजता है। कवि दल-दल के समान देश की बगल में छापामार दस्तों के लिए जंगल की कल्पना करता है। कवि देश के बातूनी दिमाग में विदेशी भाषा की सक्रियता का संकट दिखाता है। वह मंत्रियों की कुर्सियों में चरित्रहीनता को मूर्तिमान पाता है और 'जनतंत्र शब्द' के हत्यारे भेड़ियों को नकारता है।

इसी स्थिति को ठीक करने के लिए कवि पाठकों को 'सशस्त्र' दृष्टि देता है कि उन्हें हर बात पर समर्थन नहीं करना चाहिये, साथ ही व्यवस्थापकों से संघर्ष करना चाहिए।

कवि का प्रयोजन यह है कि लोगों की भीड़ में भाषा को धंसाया जाये इससे चीजों के गलत होने का पता चलेगा। जनतंत्र में गलती कहाँ है, इसका ज्ञान नेताओं की स्वार्थपरता से हो सकता है। इस जतांत्रिक व्यवस्था में शासक देश की तरह विरोधी दल भी प्रकट है क्योंकि वह विरोध में चीजे हथियातां है। इस दशा में कविता मुजरिम के कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का हलफनामा बन जाती है।

कवि स्वीकार करता है कि वह भी राशन कार्ड में छपे फालतूनाम की तरह है व्यवस्था की खोह में हर तरफ बूढ़े और रक्त लोलुप मशालची घूम रहे हैं। चीजें या तो झुक रही हैं या पीछे हट रही हैं। देश के हमउम्र नौजवानों की आँखों में रोजगार दफ्तर की ईटों का बिम्ब झिलमिला रहा है और तोंदियल सेठ हंस रहे हैं। कवि

बार–बार एक ही संदेश को दोहराता है कि अब और बर्दाश्त नहीं करना चाहिये और जो जन विराट की दुर्दशा के लिए उत्तरदाई है, उन पर आक्रमण कर देना चाहिए।

कवि सभी भारतीयों की तरह कई वर्षों तक आशा में जीते हैं। मतदान होते रहे निर्माण कार्य चालू रहे और कवि, अन्य सबके सदृश्य, मटनहोल में महकते गुलाबवाले नेताओं को चुनता रहा। योजनायें चलती रही और बहसों आशंकाओं समाधानों के दिन बीतते रहे। लेकिन अन्ततः कवि ने यह देख लिया है कि नदियों की जगह मरे हुए साँपों की केचुलें बिछी हैं, दूर–दूर तक कोई मौसम नहीं है। लोग घरों के भीतर नंगे है और बाहर मुर्दे है।

वस्तुतः वर्तमान वस्तु–स्थिति में और मनोराज्यों में द्वन्द्व है। वर्गहीन समाज की परिकल्पना या मोराज्य वर्तमान व्यवस्था के भीतर विस्फोटक सामग्री का काम कर रहे हैं, वह लोगों को भड़का रहा है कि वे विद्रोह करें। अतः प्रत्येक समाज व्यवस्था मनोराज्यों को जन्म देती है और ये मनोराज्य यदि व्यवहार्य होते हैं तो वे उस समाज व्यवस्था का उन्मूलन कर देते हैं। यही कारण है कि नागार्जुन साम्य मूलक मनोराज्य को मूल्य देते हैं।

इतिहास बोध और वर्ग चेतना :

कवि नागार्जुन में इतिहास अपने पूरे आशय के साथ विद्यमान है, सामाजिक बोध के गहरे स्तरों को वह छूते है। वो ऐसा इसलिए कर पाते हैं क्योंकि उनमें इतिहास का बोध है। इसी संदर्भ में ऐतिहासिक विकास के आयामों को भी देखा जा सकता है। राजनीतिक कवि के रूप में नागार्जुन का जैसे–जैसे यश विस्तार हुआ है, वैसे–वैसे वे अपनी राजनीतिक अस्थिरता के चलते विवादास्पद भी हुए हैं। इससे नागार्जुन के राजनीतिक काव्य की प्रभावकारिता और सार्थकता का पता चलता है। यह भी पता चलता है कि हमारे साहित्यिक, सांस्कृतिक परिवेश में राजनीति को अस्पृश्य मानने वालों के दिन लद गये। अब राजनीति हमारी सांस्कृतिक साहित्यिक अधिरचना को अधिक गहराई से, अधिक दूरगामी ढंग से प्रभावित कर रही है।

यह एक स्वस्थ प्रवृत्ति के आगमन का पूर्वाभास इसलिए है कि अभी राजनीतिक विश्लेषण और साहित्य में राजनीति के प्रतिफलन की समस्याओं के बारे में उलझाव ही अधिक है। कही कुछ सतही बातों के आधार पर किसी की रचनाशीलता का मूल्यांकन इस तरह किया जाता है, मानो वह लेख दिग्भ्रमित और धूर्त है, कहीं इसी तरह की बातें सुनकर अपना उद्देश्य सफलकर लेने की उतावली हावी हो जाती है।दोनों ही स्थितियों में लेखक का दृष्टिकोण और कृतित्व अत्यन्त विकृत रूप में प्रस्तुत होते हैं। नागार्जुन जैसे कवि के साथ इन दोनों ही तौर तरीकों की आजमाइश अधिक सरल सुगम है क्योंकि वे सांगठनिक स्तर पर कहीं जुड़े हुए नहीं हैं। और अक्सर ऐसे वक्तव्य दे दिया करते हैं जो खुद उन्ही के अनुसार 'मित्रों को भी पसोपेश में डाल देते हैं।'

जैसे अपने कवि कर्म के लिए नागार्जुन प्रतिहिंसा को ही 'स्थायी भाव' घोषित कर चुके हैं। (हजार–हजार बॉहो वाली) से ही अपने राजनीतिक 'बाबा' रूप के लिए वे बहुतों के मर्म को ठेस पहुँचाने वाला यह सिद्धान्त वाक्य लिख चुके हैं :–

तुमसे क्या झगड़ा है,
हमने तो रगड़ा है
इनको भी, उनको भी, उनको भी
दोस्त है, दुश्मन है,
खास है, कामन है,
छाँटो भी, मीजो भी, धुनको भी।

यह संयोग आश्चर्यजक है कि 'प्रतिहिंसा' वाली कविता 'हजार–हजार बाहों वाली' संग्रह की पहली है और 'तुमसे क्या झगड़ा है' अंतिम। पहली 1979 में लिखी गयी है, दूसरी 1988 में।

ध्यान देने की बात है कि नागार्जुन अपने कवि कर्म के ही समान अपने आलोचना कर्म के बारे में भी अत्यन्त सजग हैं। वे मानो खुद हीलोगों के भ्रम का निराकरण करने के लिए बताते हैं कि जिसको भी 'रगड़ा' है उससे झगड़ा नहीं है, उसमें दोस्त और

दुश्मन सभी है। निस्पृह, निष्कुंठ आलोचना करने का सबब यह है कि ये दोस्त और दुश्मन, सबकी आलोचना करते हुए भी उनके बीच का फर्क कभी धुंधला नहीं होने देते। 1977 में जब अमरीकी राष्ट्रपति 'जिमी कार्टर' भारत आये तब नागार्जुन ने उनके सम्मान में कहा–

तुम आका हो, तुम मालिक हो
दुनिया भर के महाजनों का.......
हमतो भारी बुद्धू निकले
अपना सौदा पटा न पाये।

(खिचड़ी विप्लव देखा हमने)

आठ साल बाद, 1985 में जब नागार्जुन सोवियत विरोधी होने के आरोप में दंडित किये जा रहे थे, तब उन्होंने भारत और सोवियत संघ की राजनीति की तुलना करते हुए कहा, 'रूस में....यह बात नहीं आती कि हम फलां इलाके से एम.एल.ए. होंगे, ताकि वहाँ के सेठो से पैसा ले सकें। यह चीज अपने यहाँ नहीं है।' साम्राज्यवाद और विकासशील देशों का पूंजीवादी और समाजवादी राजनीतिक नैतिकता का अन्तर भी स्पष्ट है। इसीलिए दोस्त और दुश्मन का विवेक, गवायें बिना, मन में किसी प्रकार की गाँठ बनाये बिना नागार्जुन ने जो आलोचनाएं की हैं, वे राजनीतिक ज्ञान की दृष्टि से हमारे लिये चाहे उतनी शिक्षाप्रद न हो पर कवि कर्म की दृष्टि से निष्कुंठ मानव–व्यवहार की दृष्टि से उनके मूल्य को घटाकर आँकना हमें अपनी सजीव परम्परा के प्रति संकीर्ण और अनदार बना देगा। ऐसा कोई भी रुझान, किसी भी चीज को वस्तुगत दृष्टि से देखने में रुकावट डालता है और हम अपनी अपेक्षाओं–आकांक्षाओं और मनोवृत्तियों का आरोपण करके कविता (और इतिहास) के तकाजों को विकृत करने लगते हैं। दुर्भाग्य से नागार्जुन के राजीतिक विचारों की छानबीन के जितने भी प्रयास इधर सामने आये हैं, उनमें यह विकृति एक समान दिखायी देती है। यह ध्यान देना आवश्यक है कि नागार्जुन की राजनीति को लेकर प्रतिक्रियावादी खेमा या तो चुप रहता है या उनके भटकाव को ही

उनकी महत्ता घोषित करता है, कभी–कभी बड़ी कृपा करके अपनी निःशोक भद्रता का परिचय देते हुए उनके बारे में दो या एक भद्र कवि प्रतिकूल छींटाकशी कर देता है। इस सबसे प्रतिक्रियावादी कुलीनतावादी खेमे का वैचारिक और सांस्कृतिक खोखलापन ही जाहिर होता है। आलोचनात्मक दृष्टि से अधिक विचार वामपक्ष में ही हुआ है। वाम पक्ष में जितने अवसरवादी या भटकाव मूलक रूझान हैं, वे अपनी अपनी रुचि और आवश्यकता के अनुसार कहीं प्रशस्तिमूलक ढंग से, कहीं निंदासूचक रूख अपनाकर नागार्जुन की राजनीति पर बहस प्रवचन करते हैं। इन सबकी एक सामान्य विशेषता यह है कि नागार्जुन की छवि को वे भ्रष्ट और विकृत करके ही सामने लाते हैं।

इतिहास प्रक्रिया में जीवित रहती हुई रचना ही कालजयी बनती है। इतिहास प्रतिया से बाहर नहीं। कालजयी होने की पहली शर्त यह है कि वह कालजीवी भी हो। जो लोग केवल शास्वत विषयों पर केवल शास्वत कवितायें लिखकर शास्वत कवि होने का शास्वत भ्रम पालते हैं, केवल वे कहीं के नहीं होते। बहुत सारे लोग जीवन मृत्यु प्रेम केवल इन्हीं विषयों पर कविताएं लिखते हैं, समझते हैं कि यह शास्वत विषय है। इसीलिये इन पर कवितायें लिखेगे तो कविताएं भी शास्वत हो जायेंगी। पर होता ऐसा नहीं है। प्रेम पर भी वही कविता महत्वपूर्ण होगी जो अपने काल के साथ सम्बन्ध बनाती हुई दिखायी देगी। कालिदास के जमाने के प्रेम में और आज के जमाने के प्रेम में अनुभव में बहुत फर्क है। यदि कवि यही नहीं जानता कि वह किस युग में जी रहा है तो फिर प्रेम पर कविता लिखकर भी अच्छा कवि नहीं हो सकता। कालजयी होने का तो प्रश्न ही नहीं है। नागार्जुन की काव्य प्रक्रिया का समाज की इतिहास प्रक्रिया से क्या रिश्ता है, यह सोचना बहुत आवश्यक है। नागार्जुन के पूरे काव्य प्रक्रिया का इतिहास से जो गहरा रिश्ता है उसकी खोजबीन आवश्यक है। काव्य प्रक्रिया का एक पक्ष जो इतिहास प्रक्रिया के अतीत से जुड़ा है पर नागार्जुन के यहाँ समकालीन जीवन में क्रियाशील इतिहास प्रक्रिया है जो उन्हें प्रभावित और प्रेरित करती है। नागार्जुन ने इतिहास के अतीत पर कम कविताएं लिखी हैं उनकी कविताओं में समकालीन समाज का

इतिहास व्यक्त होता है। वह पिछले पचास वर्षों के भारतीय जीवन की वास्तविकता की गवाही देती है। महत्वपूर्ण बात यह है कि नागार्जुन के यहाँ केवल सामाजिक इतिहास ही नहीं है, बल्कि संस्कृति और साहित्य के इतिहास की भी धारा मौजूद है। नये–पुराने कवियों–लेखकों पर जितना नागार्जुन ने लिखा है उतना हिन्दी के किसी कवि ने नहीं लिखा । कालिदास, विद्यापति, कबीर, रविन्द्र नाथ टैगोर से होते हुए अपने समकालीन छोटे–बड़े कवियों पर भी नागार्जुन ने खुले मन से कविताएं लिखी हैं और यह अकारण नहीं है कि निराला के बाद नागार्जुन दूसरे कवि हैं, जिन पर सबसे अधिक दूसरे कवियों ने कविताएं लिखा। नागार्जुन पर त्रिलोचन, शमशेर, केदारनाथ अग्रवाल, कुमार विमल, वीरेंद्र आदि ने लिखा है। बाबा के बाद की पीढ़ी कहीं न कहीं उनसे प्रेरित है। किससे कहाँ से जुड़ते हैं और कहां अलग होते हैं–इसका भी विवेक है उनके पास। इसका सर्वोत्तम उदाहरण है उनकी रवीन्द्र नाथ टैगोर पर लिखी कविता जो 'तालाब की मछलियाँ' नामक संगह में मौजूद हैं। इस कविता में दो विचारधारा की टकराहट दिखायी देती है। इसलिये रवीन्द्र नाथ टैगोर से अपने को जोड़ते हुए भी अपने को अलग करते हैं। कबीर से अपनी रचनाशीलता को वे जोड़ते हैं।

नागार्जुन कबीर पर बात करते हैं–कविताओं और निबधों में। जिस इतिहास प्रक्रिया की बात हो रही है उसके प्रसंग में एक और बात–समकालीन समय और समाज के प्रति संवेदनाशील होने का जहाँ तक सवाल है तो यह कविता के लिए जितना जरूरी है उतना ही या उससे पहले मनुष्य होने के लिए जरूरी है। नागार्जुन भारतेन्दु की परम्परा के उन कवियो में से हैं जो अपने समय की इतिहास प्रक्रिया की घटनाओं–दुर्घटनओं के प्रति संवेदनशील और उसके साथ ही दूसरों की संवेदनाओं को जगाने की प्रेरणा भी देते हैं। उदाहरण के लिये 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविता। जिसको अकाल जैसी चीज की चिन्ता ही नहीं है वह ऐसी कविता कैसे लिखेगा और क्यों लिखेगा? यह अकाल जैसी कविता महज कल्पना से पैदा नहीं हुई है। पर

कल्पना की मदद से ही वह कालजयी बनी है, यह सही है इसलिये इन दोनों सम्बन्धों को समझना जरूरी है।

नागार्जुन में इतिहास की समझ अतीत जीवी की होकर नहीं आयी बल्कि वह समाज के द्वन्द्वात्मक विकास की कड़ी के रूप में उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुई है। वह समाज की पड़ताल करते हैं, मनुष्य की केन्द्रीय स्थिति के बारे में चिंतित होते हैं, साम्राज्यवादी बाजारवादी वृत्तियों की सड़ांध को सरे चौराहे दिखाते हैं और वह यह सब इसलिये कर पाते हैं क्योंकि वह आयातित इतिहास को नहीं जन इतिहास को पकड़ते हैं। उनकी पक्षधरता इसी इतिहास बोध से निर्मित होती है। वह प्रतिबद्ध होते हैं तो सिर्फ जन के लिए। इसीलिए समाज की कुचालक प्रवृत्तियों के गंदे षडयंत्र को बेनकाब कर पाते हैं। जीवन धर्मी अहसास से युक्त उनकी कविता जीवन से लगाव को अपनी पहली काव्यात्मक शर्त बनाती है। इसीलिये नागार्जुन साफ–साफ देख पाते हैं कि कौन किस पाले में खड़ा है, किसकी राजनीति किसके साथ है और शायद थोड़ा भी प्रतिक्रियावादी मिले उसकी खिचाई भी वे उसी भदेसपन के साथ करते हैं।

पक्षधरता और प्रतिबद्धता की इस आग को रचनात्मक ऊर्जा की शक्ल देना यदि सीखना हो तो नागर्जुन की कविता हमारे काम आती है। यह शक्ति है और हमें शक्तिप्रद भी बनाती है।

गूढ़ बौद्धिकीकरण और अमूर्तवाद के खिलाफ :

प्रगतिशील काव्यधारा में नागार्जुन के महत्व पर विचार करते हए कई सवाल उठते हैं। प्रगतिशील काव्य का भारतीय जनता के बीच जीवन से क्या और कैसा संबंध है? नागार्जुन के काव्य में प्रगतिशील साहित्य के मूल्य किस हद तक व्यक्त हुए हैं? प्रगतिशील कविता के विकास में नागार्जुन का क्या योगदान है? नागार्जुन अन्य प्रगतिशील कवियों से किस रूप में भिन्न या विशिष्ट हैं?

हिन्दी में प्रगतिशील काव्य का अविर्भाव 1935–36 में हुआ। उस समय देश अंग्रेजो का गुलाम था। भारतीय जनता अनेक स्तरों पर अपनी आजादी के लिए लड़ रही

थी। प्रगतिशील साहित्य जनता की इस साम्राज्यवाद विरोधी भावना का सहित्य है। राजनीतिक स्तर पर उसकी साम्राज्यवाद विरोधी चेतना का सम्बन्ध मार्क्सवादी विचारधारा है और गैर मर्क्सवादी–राष्ट्रीय जनवादी, प्रवृत्तियों से है। साहित्यिक स्तर पर इस भाव धारा का सम्बध भारतेन्दु–युग से लेकर छायावाद तक की पुष्टि साम्राज्यवाद–विरोधी परम्पराओं से है।

प्रगतिशीलसाहित्य जनता के हित की तरफदारी करता है। देश की इस अवस्था से उसके तटस्थ रहने की कल्पना नहीं की जा सकती। उसमें स्वाधीनता का जो सपना देखा गया वह देश की जनता में बढ़ते हुए समाजवादी विचारों से दृढ़ सम्बन्ध रखता है। डा. राम विलाश शर्मा ने कांग्रेस के स्वाधीनता संग्राम की असंगतियों पर तीव्र व्यंग्य के स्वर में लिखा :–

देश भक्ति के काम में रूपये दिये हजार,
चमक उठा इस पुण्य से फिर खोया व्यापार
न इसको लूट बताओ जी।

शासक है अंग्रेज। उनके विरुद्ध देश भक्ति का संग्राम चला रही है कांग्रेस । सेठ विशेष ने हजार रुपये देशभक्ति के काम में दिये, फिर भी व्यापार चमक उठा इसके लिए शासक से परमिट–लाइसेंस वगैरह कैसे मिल गया? इसी तरह जब 1946 में अंग्रेजी झंडे के नीचे अंतरिम सरकार की स्थापना हई और कांग्रेस के नेता गद्दी पर बैठ गये, तब श्री गिरिजा कुमार माथुर ने लिखा।

'मेरी मानवता पर रक्खा गिरि का–सा सत्ता सिंहासन
मेरी आत्मा पर बैठा है विषधर–सा सामंती शासन
मेरी छाती पर रखा हुआ साम्रज्यवाद का रक्तकलश
मेरी धरती पर फैला है मन्वंतर बनकर मृत्यु दिवस।'

(धूप के धान)

नागार्जुन की कविताओं में मनुष्य के शोषण के तीनों रूपो साम्राज्यवाद, सामंतवाद और पूंजीवाद के विरुद्ध तीव्र का जो भाव दिखाई, देता है, वह प्रगतिशील काव्य धारा से उनके अभय सम्बन्ध का प्रमाण है।

यह उनके प्रतिबद्ध जीवन और नैतिक विवेक का प्रमाण है। अपनी संवेदनात्मक बनावट में उनकी कवितायें इस रूप में आस्था की कवितायें हैं। आरम्भ में प्रगतिशील काव्य एक व्यापक साम्राज्यवाद–विरोधी संघर्ष का काव्य था। समाजवादी विचारों के प्रभाव से उसमें साम्राज्यवाद से मुक्ति को सभी प्रकार के शोषण से मुक्ति के साथ जोड़कर देखा गया। आजादी मिलने पर साम्राज्यवाद के साथ ही साथ देशी सामंतो और उद्योगतियों से भारतीय जनता का अंतर्विरोध उभरकर सामने आ गया। अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण कांग्रेस ने जब अंग्रेजों से आजादी ली तब ब्रिटिश शासन 'कामन वेल्थ' में बने रहने और उसके आर्थिक संगठ़न 'स्टर्लिंग एरिया' से भारतीय अर्थतंत्र को जोड़े रखने का समझौता भी किया। यह बात भारत की साधारण जनता के हितों के अनकूल नहीं थी। जो लोग मजदूर किसान जनता के हित को ध्यान में रखकर देश की आजादी और विकास की कल्पना करते थे, उन्होंने इस समझौते का विरोध किया।

नागार्जुन इन लोगों के साथ थे। उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में इस समझौते से भारतीय जनता की हानि का चित्रण किया है। जब रानी एलिजाबेथ भारत आयीं तब नागार्जुन ने लिखा :–

'आओ रानी हम ढोएंगे पालकी
यही हुई है राय जवाहर लाल की।'

आजादी की पहली वर्ष गाँठ पर उन्होंने 'जन्मदिन' नये शिशु राष्ट्र की कविता लिखी है :–

आज ही तुम मिल गये थे दुश्मनो से, गुनहगारों से,
छोड़कर संघर्ष का पथ,
भूलकर अन्तिम विजय की घोषणाएं,

भोंककर लम्बा छुरा तुम सर्वहारा जनगणों की पीठ में।

(हजार–हजार बाँहो वाली)

जो साहित्यकार 'सर्वहारा' जनगणों को अपने विवेक की कसौटी नही मानते थे, या प्रचार–प्रसार की लालसा लेकर प्रगतिवाद से जुड़े थे वे आजादी के बाद उससे अलग हो गये। इनमें से अनेक सरकारी संस्थानों से बड़े–बड़े सेठाश्रयी पत्र–पत्रिकाओं से जुड़ गये। इन्होंने प्रगतिशील साहित्य के विरुद्ध जोरदार संगठित अभियान चलाया था। उनके इस अभियान को 45–46 से 'कांग्रेस द्वारा शुरू किये गये कम्युनिस्ट विरोधी अभियान से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इस अभियान के फलस्वरूप नेमिचन्द्र जैन और भारत भूषण अग्रवाल जैसे अनेक कवि ज़ो पहले अपने को घनघोर मार्क्सवादी कहते थे, मार्क्सवाद के विरोधी हो गये।

नागार्जुन के कवि–व्यक्तित्व का विकास उत्तरोत्तर यथार्थवाद की ऊंचाईयों की दिशा में हुआ है। छयावादोत्तर हिन्दी कविता की छायावादी रूमान से सर्वाधिक स्वतंत्र रहे हैं–नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल, भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन और प्रभाकर माचवे जैसे कवियों का संस्कार मूलतः यथर्थवादी था या भावुकतारक और भाववादी, इसका स्पष्टीकरण इसी बात से हो जाता है कि उन्होंने जब मार्क्सवादी विचारों का व्यापक प्रभाव देखा तब उसके साथ जुड़ गये और प्रयोगवाद नयी कविता के रूप में अस्तित्ववाद का जोर बढ़ा तब उसके साथ हो गये। भारत भूषण अग्रवाल ने 'तार सप्तक' के पहले संस्करण के आत्म परिचय में डंके की चोट पर ऐलान किया 'मार्क्सवाद को आज के समाज के लिए रामबाण मानता हूँ। कम्युनिस्ट हूँ।' यह 1943 की बात है। लेकिन जब अजादी के बाद 'तार सप्तक' का दूसरा संस्करण (1966) निकला तब उसके 'परिचय में उनमें ये शब्द जुड़ गये, 'अब कम्युनिस्ट नहीं हूँ। यही नहीं अब तो लगता है कि जब कहता था, 'तब भी नहीं था।' उन्होंने अपने व्यवहार से अपनी यह बात साबित कर दी कि–

'स्थाई रह सकता नहीं नीर, स्थाई है बस उसका बहाव।'

(हंस दिसं0–1941)

बाबा नागार्जुन बाहरी दुनियां में रमते हैं, उस पर खुलकर अपनी आत्मगत प्रतिक्रियायें व्यक्त करते हैं। लेकिन वे न तो यथार्थ जीवन की प्रतिक्रियाओं को एकान्तः आत्मगत धरातल पर घटित होता हुआ देखते, दिखाते हैं– न ही उसे आत्मगत भावों के आरोप से विकृत और अतिरंजित करते हैं। जहाँ तक व्यक्तिवादी संस्कारों की बात है नागार्जुन उसे आत्म संघर्ष के स्तर पर नहीं सर्वथा विजातीय तत्व के रूप में देखते हैं–

सलिलल को सुधा बनाये तटबंध
धरा को मुद्रित करे नियंत्रित नदियाँ
तो फिर मैं ही रहूँ निर्बन्ध,
मैं ही रहूँ अनियंत्रित
यह कैसे होगा?
यह क्यों कर होगा?

(सतरंगे पंखों वाली)

X X X

नागार्जुन के काव्य में प्रगतिवादी चेतना का स्वरूप :

कवि नागार्जुन आज हिन्दी साहित्य की जीवंत वास्तविकता है। अपनी काव्य शक्ति से नागार्जुन ने निराला की तरह यह साबित कर दिया है कि अपने युग का जनकवि शोध छात्रों और भाष्यकारों का मोहताज नहीं होता। देश की साधारण जनता से कवि का लगाव जितना गहरा और आत्मीय होगा, कविता के वर्ण और आस्वाद में उतनी विविधता होगी, कवि की संवेदना उतनी सघन होगी कविता का यथार्थवाद उतना ही गंभीर होगा और काव्य की जीवनी शक्ति उतनी ही दुर्दम्य होगी। नागार्जुन में यह विशेषता सर्वत्र परिलक्षित होती है। 'कविता लिखते समय उनके समक्ष श्रोता के रूप में बड़े–बड़े कलावंत उतना नहीं रहते, जितना साधारण लोग रहते हैं इसलिये वे

अनुभूतियों और अनुभवों के लिये इन लोगों के बीच इनका हिस्सा बनकर रहते हैं और कविता लिखते समय अपनी अभिव्यंजना को इन लोगों की स्थिति जरूरत और समझ के स्तर के अनुरूप ढ़ाल कर पेश करते हैं। कैसी भी उतार–चढ़ाव की परिस्थिति हो कवि नागार्जुन जनता के साथ अपनी इस हिस्सेदारी में कटौती नही करते।'[1] साथ ही अपनी कविता के प्रत्यक्ष उदाहरण के माध्यम से नागार्जुन ने यह भी साबित कर दिया है कि जनता के जीवन और उसकी संस्कृति से प्राण–सम्बन्धित होकर कवि खुद को तरह–तरह की आत्मरति और आत्मग्रस्तता से बचा सकते हैं और अपनी कविता को तरह–तरह के कलावादी–सौन्दर्यवादी रूझानों से भी युक्त रख सकते हैं। विशेष बात यह है कि नागार्जुन इन प्रवृत्तियों से बचकर अपनी कविता को उस मंजिल पर पहुँचा सके हैं जहां लोकप्रियता और कलात्मक सौन्दर्य के बीच अन्तर्द्वन्द्व या अन्तर्विरोध नहीं रहता, पूर्ण संतुलन और सामंजस्य स्थापित हो जाता है।

'नागार्जुन का अधिकांश काव्य खड़ी बोली हिन्दी में है। खड़ी बोली ऐतिहासिक कारणों से जनपदीय 'बोली' से ऊपर उठकर पूरे हिन्दी प्रान्त की जातीय भाषा के आसन पर पहुँच गयी है। अगर नागार्जुन ने केवल मैथिली में रचना की होती या फिर थोड़ी बहुत रचनायें ही मैथिली से इतर बोलियों और भाषाओं में की होती, तो उन्हें मैथिली का लोक कवि कहना संगत जान पड़ता लेकिन जिस कवि ने क्षेत्रीय और भाषाई सीमाओं को तोड़कर खुद को जातीय और राष्ट्रीय कवि के स्तर पर पहुँचाया हो, उसे जनपद विशेष में सीमित मान लेना प्रगतिशील कार्य नहीं है'[2]

नागार्जुन के काव्य के आस्वाद में विविधता है, उनके काव्य की भाषा में भी विविधता है। नागार्जुन के जीवन–अनुभवों में विविधता है, काव्य के आस्वाद और भाषा की विविधता का अनुभव वैविध्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

नागार्जुन की काव्य चेतना का पहला संघर्ष धर्म की जकड़बन्दी के खिलाफ चला। उन्होंने यह भली भांति अनुभव किया कि समकालीन जीवन में धर्म की कोई प्रतिशील सामाजिक भूमिका नहीं रह गयी है। वह घनिष्ट जनों की सम्पदा और साधारण जनों की

विपदा से सम्बद्ध है। यही कारण है कि नागार्जुन 'हे हमारी कल्पना के पुत्र, हे भगवान'[3] कहकर हजार–हजार बाहों वाली मानव चेतना से दैवी–शक्तियों का आतंक उतार फेंकते हैं। ये परम्परा से जुड़ते हैं किन्तु उसे अविवेक पूर्वक स्वीकार नहीं कर लेते हैं। यह नागार्जुन की चेतना का मानवतावादी आधार है।

नागार्जुन का यह मानववाद एक तरफ वैज्ञानिक चिंतन की ओर अभिमुख है और दूसरी ओर समाज के अंतर्विरोध के खिलाफ एक सजग रचनाकार की तीव्र प्रतिक्रिया से सम्बद्ध है। नागार्जुन की इस चेतना का आधार निर्मित हुआ किसान आदोलन में उनकी भागीदारी के बीच। लंका के बौद्ध मठ की यात्रा उनके संगत इतिहास–बोध की परिचायक है। उनके इतिहास–बोध का महत्व यह है कि दैवी शक्तियों के अंध विश्वास और आतंक से मुक्त होकर वे निरंतर आगे बढ़ते हैं, उनकी यह प्रगतिजन–आदोलनों से उनके घनिष्ट सम्पर्क का परिणाम है। नागार्जुन की काव्य चेतना के निर्माण और विकास में उनके जीवन की इस यात्रा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। वस्तुतः 'नागार्जुन' जितने क्रातिकारी सचेतरूप से हैं, उतने ही अचेत रूप में भी हैं।[4]

नागार्जुन के सहज संस्कार और सजग विचारधारा में विरोध नहीं है, इसका कारण यह है कि अपनी जीवन–स्थिति से, अपने विविध अनुभवों के प्रसंग में नागार्जुन की चेतना की जो आधार भूमि तैयार हुई उसकी स्वाभाविक परिणति क्रांतिकारी दिशा में ही हो सकती थी, इसलिये जब वे मार्क्सवाद और वैज्ञानिक चिन्तन के नजदीक आये तब वह उनके संस्कार की दुनिया के साथ घुल मिल गया। इससे सृजन पर यह प्रभाव पड़ा कि व्यक्तिगत अनुभवों को सार्वजनिक रूप में ढालने का जटिलकार्य, नागार्जुन ने अत्यन्त सरलता के साथ किया।

'नागार्जुन की काव्य चेतना का यह पक्ष जन जीवन के साथ उनकी सक्रिय हमदर्दी, से जुड़ा है इसलिये वे खून सने जबड़े की निंदा करते हुए जन सामान्य को अपने 'जाहिल बाने' से मुक्त होने का संदेश देते हैं। वे इस समाज को बदल कर ऐसे समाज के निर्माण का स्वप्न देखते हैं जिसमें–

सेठो और जमींदारों को नही मिलेगा एक छदाम,
खेत, खान–दूकान मिले सरकार करेगी दखल तमाम,
खेत, मजूरों और किसानों में जमीन बंट जायेगी,
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मंडरायेगी।'[5]

नागार्जुन अपने जीवन काल में ही क्रान्ति की शक्तियों को उभरता देखना चाहते हैं।

यह देखकर ही मानो उनका जीवन सफल हो जायेगा, वे अपने प्राण सार्थकता की अनुभूति के साथ छोड़ सकेगें। वे यायावर हैं उनकी कुटिया यह संसार ही है, उनका मानवतावाद उनकी क्रांतिकारी आस्था से दीप्त है, निराशावाद के लिये उसमें स्थान नहीं है।

नागार्जुन के काव्य में प्रगतिवादी चेतना के स्वरूप को निम्न बिन्दुओं में विभाजित करके सहजता से समझा जा सकता है–

1. नागार्जुन की मार्क्सवादी चेतना।
2. नागार्जुन की राष्ट्रीय चेतना
3. क्रांतिकारीजनवादी चेतना।
4. यथार्थवादी चेतना।
5. श्रमिकों के प्रति सहानुभूति।
6. पूँजीवाद, साम्रज्यवाद तथा सामतवाद के प्रति आक्रोश।
7. सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति।
8. नागार्जुन के व्यंग्य।
9. नारियों के लिये उत्थानपरक चिन्तन।
10. समसामयिक परम्पराओं के प्रति जागरूकता।
11. शिल्प विधान।

नागार्जुन की मार्क्सवादी चेतना :

हिन्दी में मार्क्सवादी सौन्दर्य चिन्तन का आरम्भ चौथे दशक के उत्तरार्ध से माना जाता हे। हिन्दी के साहित्यकार यथार्थपरकता के निकट आ गये थे। स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द भी अपने गद्य साहित्य के माध्यम से जीवन की दु:स्थितियों को उभारने लगे थे। आचार्य शुक्ल की दृष्टि लोकमंगल से जुड़ी थी, अत: जीवन के गलत पक्ष का उन्होंने भी विरोध किया तथा उस दृष्टि का भी विरोध किया जो पतनोन्मुख बनाये। मार्क्सवादी विचारधारा उनके मन में घर कर गयी थी जो यह मानती थी कि मनुष्य को अपने अपहृत अधिकारों के लिए सामन्तों से लड़ना चाहिये। संघर्षोन्मुखता में ही मार्क्सवादियों ने सौन्दर्य देखा। मार्क्सवाद से प्रभावित जीवन–दृष्टि संघर्ष में ही सौन्दर्य देखती है क्योंकि संघर्षपरक दृष्टि ही मनुष्य को इसकी शोषित स्थिति से उबार सकती है।

'मार्क्सवादी सौन्दर्य दृष्टि जीवन की समग्र अभिव्यक्ति में सौन्दर्य खोजती है जिनके माध्यम से जीवन की महत्वपूर्ण जटिल स्थितियों को अधिक गहराई के साथ प्रस्तुत किया जाता है।'[6]

'मार्क्सवादी सामाजिक विकास के वस्तुगत नियमों की खोज नहीं करता है बल्कि उसे मानवतावाद से भी जोड़ता है। मानववाद के वैज्ञानिक रूप को मार्क्सवादियों ने ही प्रस्तुत किया है।'[7]

तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों के दबाव और विश्व स्तर पर तेजी से फैल रही वामंपथी चेतना के कारण प्रगतिशील काव्यांदोलन में आरम्भ से ही वामंपथी रूझान दिखाई देता है। कांग्रेस के मंच से पंडित नेहरू अपने को समाजवादी घोषित कर रहे थे और रूसी समाज के आदर्श पर नये समाज के निर्माण का स्वप्न देख रहे थे। 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना भी इसी आदर्श से प्रेरित थी। इस लेखक संगठन

में विकसित होने के कारण प्रगतिशील काव्यांदोलन का आरम्भ से ही मार्क्सवाद और रूस के प्रति गहरा लगाव रहा है। कवि नागार्जुन भी इसका अपवाद नहीं है।

नागार्जुन ने 'रक्त का लाल वर्ण' प्रस्तुत करके मार्क्सवाद को साभिप्राय इंगित किया है। मात्र क्रांति की रूपरेखा बना देना ही सजग साहित्यकार का दायित्व नहीं है, बल्कि बौद्धिकता और क्रियाशीलता के माध्यम से सपनों को साकार करना है। नागार्जुन की कवितायें वस्तुतः ऊर्ध्वगामी है। काव्य विकास का यह साधारण धरातल नहीं है। इनके औदाय में सारी पृथ्वी समाहित है। नागार्जुन में प्रगति में प्रगतिवादिता एक सम्पूर्ण जीवन दृष्टि के रूप में विद्यमान है। किसी भी जनवादी कवि के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह कठोर मार्क्सवादी हो, किन्तु समाज के उत्थान का पक्षधर हो यह आवश्यक है। नागार्जुन इसी दृष्टि से प्रगतिवादी है। 'नागार्जुन मार्क्सवादी अवधारणा से सम्प्रवत और युवा कविताओं में अपनी विशिष्ट पहचान रखने में सक्षम है। नागार्जुन मार्क्सवादी विचारधारा के पोषक एक उदीयमान कवि हैं जिनकी रचनाओं पर उनकी साम्यवादी विचारधारा की छाया, शोषित वर्ग, के प्रति सहानुभूति, क्रांति के द्वारा समाजवादी नव–निर्माण की कामना, विजय में विश्वास आदि अनेक रूपों में व्यक्त हुई है–

> जागरण है प्राण मेरा, क्रांति मेरी जीवनी है,
> जागरण से, क्रांति से मैं, घनघना दूँगा दिशायें।
> भाव है तूफान भारी, शब्द मेरे आँधियां हैं,
> आधियां तूफान द्वारा मैं उड़ा दूँगा घटायें।'[8]

'नागार्जुन को जनवादी क्रांति के वस्तुगत तकाजों की समझ मर्क्सवाद से मिली है, 48–49 में कम्युनिस्ट पार्टी, के साथ अपने सम्बन्ध से मिली है। कम्युनिस्ट पार्टी से औपचारिक सम्बन्ध खत्म हो जाने के बाद भी मार्क्सवाद से नागार्जुन का सम्बन्ध बना हुआ है। यही कारण है कि वे कम्युनिस्ट पार्टी से असम्बद्ध रहकर भी वामपंथ के साथ हैं।'[9]

नागार्जुन की राष्ट्रीय चेतना :

नागार्जुन की जातीय भावना और राष्ट्रीय चेतना उनके श्रमिक वर्गीय दृष्टिकोण पर आधारित है, इसलिए उनके काव्य में मजदूर–किसान के सांस्कृतिक जीवन के तत्व पुष्कल रूप में मौजूद हैं। श्रम–प्रक्रिया से उत्पन्न नैतिक तेज जिस जिन्दादिली के रूप में प्रगट होता है उसके दो स्तर है–(1) जीवन की विषम परिस्थितियों में भी हंसना (2) तनाव और घुटन की ग्रस्तता को हावी न होने देना। 'तुम और मैं' कविता में श्रमिक जनता के ठहाकों का उल्लेख करके नागार्जुन इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं।

नागार्जुन को भारतीय वसुन्धरा से गहरा लगाव है। देश की जनता और देश की मिट्टी के प्रति उनका लगाव भावात्मक दृष्टि से अत्यधिक व्यापक है। उनके काव्य में जनता के प्रति असीम सहानुभूति दिखाई देती है। राष्ट्रीयता, राष्ट्र की स्वाधीनता और स्वाधीनता संग्राम के अग्रणी नेताओं के प्रति उनके मन में आस्था और श्रद्धा का भाव है। महात्मा गांधी की मृत्यु के सन्दर्भ में वे कहते हैं :–

'बापू मेरे, अनाथ हो गयी भारत माता
अब क्या होगा?
अन्धकार ही अन्धकार है।'

मातृभूमि के प्रति उनका प्रेम निम्न शब्दों में व्यक्त हुआ है–

खेत हमारी, भूमि हमारी, सारा देश हमारा है,
इसीलिये तो हमको इसका, चप्पा–चप्पा प्यारा है।'

राष्ट्रीय नेताओं को नागार्जुन सारे राष्ट्र का प्रतीक मानते हैं। इसीलिये तो वे कहते हैं –

'स्थापित नहीं होगी क्या
लाला लाजपत राय की प्रतिमा मद्रास में?
दिखाई नहीं पड़ेंगे क्या लखनऊ में सत्य मूर्ति।'[10]

नागार्जुन देश की कीमत पर किसी भी बात से समझौता नहीं करना चाहते। वे मार्क्स से पहले भारत के करोड़ों गरीबों के पक्षधर हैं। भारत के शोषितों निर्बलों के

प्रति उनकी सहानुभूति कम्युनिज्म से नहीं मानवीय संवेदना के धातल से जुड़ी है। वे सुधार के नहीं क्रांति के पक्षधर हैं, जो उनकी सबल राष्ट्रीयता का भी द्योतक हैं।

व्यक्ति जिस राष्ट्र में जन्म लेता है उसकी राष्ट्रीय चेतना से वह अनुप्राणित होता है। राजनैतिक परिस्थितियाँ जाने-अनजाने उसके भीतर अपना स्थान बना लेती हैं। नागर्जुन भी इनसे प्रेरित होकर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। कवि नागार्जुन के काव्य का पक्ष राष्ट्र-प्रेम से प्रभावित जान पड़ता है। उनकी राष्ट्रीय कविताओं में सच्चे राष्ट्र-सेवक का रूप विद्यमान है। अपनी राष्ट्रीय कविताओं में इन्होंने लोक मंगल की कामना व्यक्त की है जिनका आधार उनका मानवतावादी दृष्टिकोण है। कहने को भारत स्वतन्त्र हो गया किन्तु देश में परिव्याप्त स्वार्थ साधना ने उसे जर्जर कर दिया है। उसकी भावी योजनायें कागज पर ही काले अक्षरों में सिमट कर रहा गयी है। भ्रष्टाचार का ताण्डव हो रहा है। स्वार्थ लिप्सा में लिप्त जन-नायक, जनशोषक का रूप धारण कर चुके हैं। कवि ने इस पक्ष पर करारा प्रहार किया है। वह चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति सच्चाई और ईमानदारी से कार्य करे। देश की दुर्दशा से कवि का चित्त खिन्न दिखाई देता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी देश की दुर्दशा का रूप 'हा-हा भारत दुर्दशा न देखी जाये।'[11] वर्णित किया है किन्तु नागार्जुन अपनी ऐसी रचनाओं में परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रेरणा भी देते चलते हैं-

'भारत माता के गालों पर कस कर पड़ा तमाचा है।
राम राज में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है।'[12]

इसीलिये वे संकल्प करते हुए कहते हैं-

'हिटलर के ये पुत्र-पौत्र जब तक निर्मूल न होंगे।
हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख फासिस्टों से न हमारी
मातृभूमि यह जब तक खाली होगी-
सम्प्रदायवादी दैत्यों के विकट खोह
जब तक न खण्डहर बेनेगें

प्रति उनकी सहानुभूति कम्युनिज्म से 'नहीं मानवीय संवेदना के धातल से जुड़ी है। वे सुधार के नहीं क्रांति के पक्षधर हैं, जो उनकी सबल राष्ट्रीयता का भी द्योतक हैं।

व्यक्ति जिस राष्ट्र में जन्म लेता है उसकी राष्ट्रीय चेतना से वह अनुप्राणित होता है। राजनैतिक परिस्थितियाँ जाने-अनजाने उसके भीतर अपना स्थान बना लेती हैं। नागर्जुन भी इनसे प्रेरित होकर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। कवि नागार्जुन के काव्य का पक्ष राष्ट्र-प्रेम से प्रभावित जान पड़ता है। उनकी राष्ट्रीय कविताओं में सच्चे राष्ट्र-सेवक का रूप विद्यमान है। अपनी राष्ट्रीय कविताओं में इन्होंने लोक मंगल की कामना व्यक्त की है जिनका आधार उनका मानवतावादी दृष्टिकोण है। कहने को भारत स्वतन्त्र हो गया किन्तु देश में परिव्याप्त स्वार्थ साधना ने उसे जर्जर कर दिया है। उसकी भावी योजनायें कागज पर ही काले अक्षरों में सिमट कर रहा गयी है। भ्रष्टाचार का ताण्डव हो रहा है। स्वार्थ लिप्सा में लिप्त जन-नायक, जनशोषक का रूप धारण कर चुके हैं। कवि ने इस पक्ष पर करारा प्रहार किया है। वह चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति सच्चाई और ईमानदारी से कार्य करे। देश की दुर्दशा से कवि का चित्त खिन्न दिखाई देता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी देश की दुर्दशा का रूप 'हा-हा भारत दुर्दशा न देखी जाये।'[11] वर्णित किया है किन्तु नागार्जुन अपनी ऐसी रचनाओं में परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रेरणा भी देते चलते हैं-

'भारत माता के गालों पर कस कर पड़ा तमाचा है।
राम राज में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है।'[12]

इसीलिये वे संकल्प करते हुए कहते हैं-

'हिटलर के ये पुत्र-पौत्र जब तक निर्मूल न होंगे।
हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख फासिस्टों से न हमारी
मातृभूमि यह जब तक खाली होगी-
सम्प्रदायवादी दैत्यों के विकट खोह
जब तक न खण्डहर बनेगें

तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाऊँगा ।'[13]

एक और उदाहरण जिसमेंउनके अन्तःकरण का स्पष्ट रूप दिखाई देता है–

'कहा था कनफ्यूसियस के बेटों ने
नमोः बुद्धायः बुद्धं शरणं गच्छामि
चीख रहे अब यही जोरों से
नमोः युद्धायः युद्धं शरणं गच्छामि।'[14]

नागार्जुन भारत माता की अभ्यर्थना केवल भावनात्मक धरातल पर ही नहीं करना चाहते जैसा कि प्राचीन कवियों की काव्य–साधना से परिलक्षित होता है। वे भारत माता का यशगान करने की अपेक्षा उसके लिये कठोर श्रम–साधना की अपेक्षा करते हैं।

'नागार्जुन की साम्राज्य विरोधी चेतना का प्राथमिक और मूल उद्‌गम भारतीय क्रांति की चिन्ता में निहित है। वह अतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के आंकलन पर उतना निर्भर नहीं है। आज की दुनिया का मुख्य अंर्तविरोध समाजवाद और साम्राज्यवाद के बीच है। सारे अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न इसी सन्दर्भ में हल होते है। नागार्जुन विश्व राजनीति के इस अर्न्तविरोध के परिप्रेक्ष्य में भारतीय क्रांति की समस्या को उतना नहीं देखते जितना भारतीय क्रांति के प्रश्न को केन्द्र में रखकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को देखते हैं।'[15]

क्रांतिकारी जनवादी चेतना :

हिन्दी काव्य साहित्य में नागार्जुन का प्रवेश एक क्रांतिकारी कवि के रूप में होता है। 'नागार्जुन क्रांति के सहीरूप की ओर इंगित करते हैं। तरूण वर्ग सम्पूर्ण क्रांति के नारे लगाता है। गर्दन की नसें फूल जाती हैं किन्तु नागार्जुन की दृष्टि से इसकी आवश्यकता नहीं है। वे कहते हैं कि इससे अच्छा है कि जेल की क्यारियों के पीछे कुछ बो दिया जाये। आने वाली संतति के लिये कुछ उपजाया जाना अधिक लभप्रद होगा।'[16]

नागार्जुन के काव्य विवेक का क्रांतिकारी पहलू यह है कि वे प्रेम और देश–प्रेम को आजकल के कुछ 'क्रांतिकारियो' की तरह केला खाकर सड़क पर फेंक दिया गया छिलका नहीं मानते, जिनकी उपयोगिता दूसरों को गिराने से बढ़कर कुछ नहीं है। अपने

देश और जनपद की प्रकृति से उनका प्रेम उनके पारिवारिक प्रेम और देश–प्रेम को समग्र रागात्मकता में बांधने वाला अन्तः सूत्र है। इसीलिये नागार्जुन अपनी तमाम यायावरी के बावजूद आवारागर्दी नहीं करते हैं, बल्कि गहरे दायित्व–बोध से सम्पन्न भावना से परिचालित होते हैं।

जनवादी क्रांति का कार्यक्रम व्यापक है, उसका वर्ग मोर्चा भी व्यापक है। किसान कवि नागार्जुन, मध्यवर्ग की दुम नागार्जुन की भूमिका के लिये क्रांतिकारी कवि के रूप में अत्यन्त गौरवपूर्ण है। उनका यह गौरव छीनने के लिये संसदवादी फरमान है, '1964 के बाद कम्युनिस्ट पार्टियों से उनका सांगठनिक लगाव नहीं रहा है' सांगठनिक लगाव से मुक्त हो जाने के बाद नागार्जुन हर प्रकार के सांगठनिक अनुशासन मानने से इंकार करते हैं। इन्हीं दिनों उहोंने अपने लिये विशेषण गढ़ा–'निर्दलीय कम्युनिस्ट।'[17]

नागार्जुन को जनवादी–क्रांति के वस्तुगत तकाजों की समझ मार्क्सवाद से मिली है, 48–49 में कम्युनिस्ट पार्टी के साथ अपने सम्बन्धों से मिली है। कम्युनिस्ट पार्टी से औपचारिक सम्बन्ध खत्म हो जाने के बाद भी मर्क्सवाद से उनका सम्बन्ध बना हुआ है। यही कारण है कि वे कम्युनिस्ट से असम्बद्ध रह कर भी वामपंथ के साथ हैं। वे जितना भटकते हैं वामपंथ के दयरे में भटकते हैं। जनवादी साहित्य और जनवादी यथर्थवाद की उनकी यह संकल्पना भारत जैसे देशों के साहित्य के एक लम्बे दौर की प्रवृत्तियों को एक सैद्धान्तिक आधार प्रदान करती है और हमारे ऐतिहासिक सन्दर्भ में प्रगतिशील साहित्य की व्यापक एकता की दिशा स्पष्ट करती है।

वर्तमान क्रांति के जनवादी चरित्र को समझकर नागार्जुन की कविता और राजनीति के आवयविक सम्बन्ध के बारे में डॉ0 विलास त्रिपाठी ने लिखा था, 'नागार्जुन दलितों, शेषितों, के उद्धार के लिए राजनीति करते हैं तो उनकी कविता भी उन्हीं को समर्पित है।' नागार्जुन को कबीर, तुलसी, सूर, रैदास, निराला और प्रेमचन्द की गौरवशाली परम्परा में खड़ा करके त्रिपाठी ने कहा है, 'जैसी जनवादी राजनीति, वैसी ही नागार्जन जैसे प्रगतिशील कवियों की रचना धर्मिता।'[18]

क्रांतिकारी मार्ग के सम्बन्ध में नागार्जुन का दृष्टिकोण सामंती जुल्म से लड़ने वाले तथाकथित 'नक्सली' युवकों और कथनी–करनी में अंतर वाले 'मार्क्सवादी–लेनिनवादियों' के बीच विवेक तथा वामपंथ के प्रसार को लेकर गम्भीर चिन्ता व्यक्त करता है। इसके अलावा अनेक सैद्धान्तिक और व्यवहारिक ऐसे प्रश्न हैं जहां नागार्जुन और बन्दूकवादियों का अन्तर स्वतः स्पष्ट हो जाता है। अतः उनका एक–एक शब्द, जनवादी क्रांति के बारे में नागार्जुन की समझ का दस्तावेज है। देखिये–

'कामन वेल्थी दुनियां क्या है, बूचड़ का बाजार है,
प्रजातन्त्र पर्दा है लेकिन खूनी कारोबार है।'[19]

क्रांतिकारी स्वप्न में प्रेमचन्द, निराला और खुद नागार्जुन के जो चरित्र नायक है, वे लाखों के रहनुमा हैं, उनकी रहनुमाई में सारे श्रमजीवी आगे बढ़ रहे हैं, ढुलमुल मध्यमवर्ग भी उन्हीं का साथ दे रहा है।

"दो बार 1956 में
नई–नई सृष्टि रचने में तत्पर
कोटि–कोटि कर चरण
देते रहें अहरह स्निग्ध इंगित
और मैं असस–अकर्मा
पड़ा रहूँ चुपचाप?'[20]

प्रगतिशील आन्दोलन के बिखराव से निराशा पैदा होती है लेकिन करोड़ों मेहनतकशों के साथ आस्था बंधी हुई है, इसलिए नागार्जुन उठकर आगे बढ़ते हैं। कोटि–कोटि कर–चरण आतंकवादी गिरोह के नहीं है, भारत की पद्दलित जनता के हैं जो हार मानना नहीं चाहती। भुखमरी और तंगहाली से परेशान होकर 1961 में जब जमीन बंटवारे के लिये किसानों का आन्दोलन चला, तब नागार्जुन ने 'करोड़ों हाथों' को फिर याद करके कहा–

'नभ से संघ बद्ध जनता का गूँज उठा हुँकार।'[21]

ध्यान देने योग्य शब्द है 'संघ बद्ध जनता'। संघ बद्ध जनता नगार्जुन के लिये उत्साह का कारण बनती है, जनता का मोर्चा एक लड़ाई के लिये बंधता है, क्रांति की इमारत में वह एक ईट होता है। करोड़ों किसानों का जमीन के लिये संघर्ष देखकर वे दूरगामी क्रांति में उसकी भूमिका अवश्य लक्ष्य करते हैं। संघबद्ध जनता की हुँकार सुनकर नागार्जुन क्रांति के लिये बाबले हुए रहते हैं, जहां भी आहट हुई कुछ भी कर गुजरने की मुद्रा में पहुँच जाते हैं।

नागार्जुन की यथर्थवादी चेतना :

नागार्जुन यथार्थवादी हैं, इनके लिये पीड़ा ही यथार्थ नहीं बल्कि जीवन में बसी असीम आकांक्षा भी यथार्थ है, इसलिये उनकी कविता जीवन को बदलने की भी चेतना प्रदान करती है और मनुष्य को ऊपर उठाती है।

नागार्जुन की यथार्थवादी चेतना जनता के साथ घनिष्ठ सक्रियता से आबद्ध है, इसे 'हरिजन गाथा' में भली भाँति देखा जा सकता है। जुल्म के समकालीन वातावरण में भविष्य का स्वप्न अंकित करके नागार्जुन केवल नारेबाजी वाले अतिरिक्त जोश में नहीं बंधे हैं, वरन् उन्होंने कलात्मक संयम का परिचय दिया है। इससे उनकी यथर्थवादी चेतना के काव्यात्मक उत्कर्ष की सूचना मिलती है। नागार्जुन की काव्य चेतना में उनके व्यक्तित्व के सचेत और अचेत पक्ष, उनका अनुभव, संवेदन और विचार ज्ञान, अविभाज्य रूप में सन्निहित हैं। 'उनकी यथार्थ चेतना केवल बौद्धिक नहीं है, उसमें उनका भावबोध, उनका रागात्मक अन्तः संसार पूरी तरह विद्यमान है। इसलिये वे मानव जीवन और समाज के प्रति यथार्थवादी इतिहास बोध का विकास करते हैं और साथ ही साथ मानव जीवन और प्रकृति के सम्बन्धों के बारे में वस्तुनिष्ठ, वैज्ञानिक अर्न्तदृष्टि का परिचय देते हैं।'[22]

नागार्जुन की सामाजिक दृष्टि बाहरी यथार्थ के समूचे प्रसार में जीवित मानव जाति की तलस्पर्शी, भूमिकाओं तक सीमित नही रही, वरन् अपने परिवेश के प्रति पूर्ण सजगता के साथ, उनकी विविधताओं को अपने अन्दर समाहित करती है क्योंकि इनकी

उत्पत्ति और विकास समाज और युग की धरती से हुआ है। यह युग और धरती की मिट्टी कवि की अन्तर्रात्मा में फलित होकर इनके रहस्यों की गहराई के साथ कविताओं में समाज को बिम्बित करती है। सामाजिक यथार्थ की भूमि पर जन-जीवन तथा धरती की यथार्थ महिमा को चित्रित करते हुए सामाजिक बोध उनकी कविता में स्पष्ट रूप से सामने आया है। कवि नागार्जुन के यथार्थ चित्रण का एक रूप तब सामने आता है जब वे केदार नाथ अग्रवाल पर कविता लिखते है, चित्रण देखते ही बनता है-

'मैं बोला केदार तुम्हारे बाल पक गये-
चिन्ताओं की धनी भाप में सीझे जाते हैं बेचारे,
तुमने कहा, सुना नागार्जुन,
दु:ख दुविधा की प्रबल आंच में
जब दिमाग ही उबल रहा हो
तब बालों का कालापन क्या कम मखौल है।'[23]

इस कविता में केदारनाथ अगवाल को प्रतीक बनाकर नागार्जुन ने यथार्थ का जो चित्र खींचा है, उसमें इसी संसार के अनुभवों को कवि वास्तविक मानता है। यहीं पर गृहस्थ-निर्वाण, सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद, चिन्ता, क्रोध, सम्भावना, अनुमान सभी जन्म लेते है। जीवन की मात्र विरुतायें ही नागार्जुन के कथ्य में नहीं है वरन् उसके उज्जवल पक्ष पर भी कवि ने दृष्टि डाली है।

'नागार्जुन की जीवन के प्रति दृष्टि न तो पूर्णतः शास्त्रीय है और न रोमांटिक, बल्कि दोनों के मध्य स्थित है जो जीवन के गतिमय पक्ष की ओर अधिक अर्धगर्भित बनाने के लिए प्रयत्नशील है। यह एक ऐसी जीवन दृष्टि है जो जीवन्त है, यथार्थ परक है, परिवर्तनकारी है। यहां उदात्त सौन्दर्यबोध विडम्बनायुक्त जीवन से जुड़ा है कितु संघर्षों के प्रति एक समग्रजीवन दृष्टि है जो चेतना को उदात्त धरातल पर ले जाती है। वस्तुतः सौन्दर्य मानवीय कृतियों और मानवीय संवेदना में व्याप्त रहता है।'[24]

जीवन के यथार्थ को जितनी निर्मलता से नागार्जुन ने उजागर किया है उतना अन्यत्र नहीं मिलता। नागार्जुन एक मोर्चा बनाते हैं जहां पीड़ित मनवता, अनाचार, शोषण और अत्याचार के विरुद्ध उठ खड़ी होती है। शोषण सहना, शोषण करने से भी ज्यादा गर्हित कार्य है, किन्तु स्थितियां इतनी परिवर्तित होती गयी है कि अधिकारों की बात करने पर लोग लांछित करने लगते हैं–

> रोजी–रोटी हक की बाते, जो भी मुँह पर लायेगा,
> कोई भी हो निश्चय ही कम्युनिस्ट कहलायेगा।'[25]

श्रमिकों के प्रति सहानुभूति :

नागार्जुन की कवितायें भारत के जन–जीवन की बोलती तस्वीर हैं जिनमें नगरीय और ग्रामीण समाज की विषमताओं, विशेषताओं और विकृतियों के गहरे रंग भरे गये हैं। लोक–चेतना के कवि नागार्जुन ने संतप्त उपेक्षित और मर्दित जन समुदाय का चित्रण करके ही नहीं छोड़ दिया है वरन् उनके प्रति अपनी गहन सहानुभति भी अर्पित की है। स्वयं संघर्षो में पलने के कारण तथा निरन्तर विषमताओं की चक्की में पिसते रहने के कारण नागार्जुन का मन पर्याप्त मानवीय और सहानुभूतिशील हो गया है। 'सच न बोलना' आर 'राम राज्य' ऐसी ही कवितायें हैं जिनमें कवि पूँजीपतियों के दारूण अत्याचारों से पिसती जनता के प्रति द्रवित है। उसे दु:ख है कि खादी ने मलमल से अपनी सांठ–गांठ कर डाली है। 'बिड़ला, टाटा, डालमिया की तीसरे दिन दिवाली है' या 'जमींदार' है, साहुकार हैं, बनिया हैं, व्यापारी हैं, अन्दर–अन्दर विकट कसाई बाहर खद्दर धारी है।' इन युगीन विकृतियों से पीड़ित कवि की आत्मा न केवल चीत्कार करती है वरन् वह इनके द्वारा उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति से करूणाद्र होकर उन्हीं की पंक्ति में जा खड़ा होता है–

> 'कुली मजूर है बोझा ढोत है, खींचते ठेला
> धूल, धुंआ, भाप से पड़ता है सबका पाला
> थके मांदे जहाँ–तहाँ हो जाते हैं ढेर

सपने में भी सुनते है धरती की धड़कन।'26

इसलिए–

''जनता मुझसे पूछ रही है क्या बतलाऊँ?''2
जन कवि हूँ मैं साफ कहूंगा क्यो हकलाऊँ ?[27]

क्योकि –

प्रतिहिंसा ही स्थाई भाव है मेरे कवि का
जन–जन में जो ऊर्जा भर दें,
मैं उद्‌गाथा हूँ उस रवि का।'[28]

कवि नागार्जुन उन श्रमिकों एवं कृषकों के दुःख से द्रवित होते है जो आघत अपने स्वेद से पृथ्वी को सींचते हैं और दूसरों के ऐश्वर्य हेतु जीवन की समस्त साधें हृदय में ही दवा देते हैं। नागार्जुन का संवेदनशील मन कृषकों की अनवरत साधना को निकट से देखता है। जीवन की विवशता वेदना के बाहर आने नहीं देती फिर भी विश्वास अपने अडिग रूप से प्रस्फुटित होता मिलता है। धनिक वर्ग की विलास क्रीड़ायें देखकर कवि क्षुब्ध हो उठता है और कामना करने लगता है कि प्रसादों पर गाज गिरे और समुन्नत स्वर्ण–कलश नष्ट हो जायें। इनका विश्वास है कि समय का बड़वालन एक दिन सम्पूर्ण विषमता को निगल जायेगा। उंनकी वेदना का कारण है कि संसार शोषक और शोषित में विभक्त होकर, बहुमूल्य मानव जीवन पत्थरों के मोल बेच रहा है –

'आज शोषक, शोषितों में हो गया जग का विभाजन,
अस्थियों की नींव पर अकड़ा खड़ा प्रासाद का तन,
धातु के कुछ ठीकरों पर मानवी संज्ञा विसर्जित,
मोल कंकड़–पत्थरेंा के बिक रहा है मनुज–जीवन।'[29]

नागार्जुन का सचेत और अचेत भाव बोध जनता के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा है। स्वभावतः जनता के जीवन को कष्टमय और कलहपूर्ण बनाने वाली प्रत्येक वस्तु

नागार्जुन की घृणा की पात्र है। उनकी यह घृणा कितनी प्रचण्ड है इसे समझना कठिन नहीं है। 'बताऊँ शीर्षक कविता का आरम्भ इस प्रकार होता है –

> "बताऊँ?
> कैसे लगते हैं–
> दरिद्र देश के धनिक?
> कोठी, कुढब तन पर मणिमय आभूषण।'[30]

'एक आत्यंतिक परिस्थिति का चित्र खींचकर नागार्जुन ने समाज के अन्तर्विरोध पर जैसा प्रहार किया है वैसा दूर–दूर से बौद्धिक सहानुभूति जताने वाले कवियों के लिए सम्भव नहीं है। 'बताऊँ' ? के साथ भेद खोलने वाली जो मुद्रा है उससे नागार्जुन एक तरफ पाठक समुदाय– से जन साधारण से– सीधा, विश्वास का रिश्ता जोड़ लेते है और दूसरी तरफ यह ध्वनित कर देते हैं कि उनकी घृणा उनके अपने अनुभवों का निचोड़ है।

.........नागार्जुन को हर प्रकार की अमानवीयता पर मूलभूत रोष है। उनका यह रोष उकी कविता में सर्वत्र व्याप्त है। ...महत्वपूर्ण यह है कि नागार्जुन को जितनी घृणा वर्तमान समाज व्यवस्था से है, वे उस पर अपना आक्रमण उतना ही केन्द्रित करते जाते हैं।'[31]

नागार्जुन क्रमशः मजदूर वर्ग अैर मध्यम वर्ग के सामाजिक कार्यकलाप को, यानी श्रम प्रक्रिया में उनकी भूमिका को, उनकी भौतिक चिन्ताओं, आकाँक्षाओं को और उनके परिणाम स्वरूप उनके सांस्कृतिक जीवन को भौतिक परिस्थितियों के संस्करगत परिप्रेक्ष्य में उभारते है। लोहा पीटने वाला, कठिन शारीरिक श्रम करने वाला मजदूर, पत्थर तोड़ने वाला श्रमिक रोटी की चिन्ता में रहता है, फिर भी ठहाके लगाता है। वह, अपनी जिदगी की घुटन, उसके कठिन संघर्षों का परिणाम है और ठहाका श्रम प्रक्रिया से जुड़ने पर मिलने वाले नैतिक तेज का परिणाम है। नागार्जुन अपनी दृष्टि अैार संवेदना को आधार बनाकर इसके मुकाबले मध्यवर्गीय जीवन को रख देते हैं। श्रम्र प्रक्रिया से मध्यवर्ग का सीधा सम्बन्ध नहीं है। वह ऊँचे–ऊँचे सपने देखता है, चितकबरी चॉदी में डूबता है,

परिणाम यह होता है, परिणाम यह होता है कि मिथ्या दु:ख का शिकार बनता है। आम की मंजरियों को पाला मार जाने से जो पीड़ा उत्पन्न होती है, उसके सामने काव्य संकलन को दीमक चाट जाने का दु:ख कितना बनावटी लगता है। स्पष्ट है कि नागार्जुन की चेतना मध्यवर्गीय दृष्टिकोण पर नहीं, श्रमजीवी किसान–मजदूर के दृष्टिकोण पर आधारित है। इसी दृष्टिकोण से वे मध्यवर्ग पर भी कविता लिखते हैं–

श्रमिक वर्ग, की नव संस्कृति ही थी बस तुमको प्यारी,
प्रलोभनो ' को अंतिम क्षण तक तुमने ठोकर मारी।'[32]

शोषण व्यवस्था ने मनुष्य को प्राणहीन कर दिया है। उसके अस्तित्व को पूर्णतः नष्ट करने का कुचक्र चलाया जाता है। मनुष्य को मिट्टी मे मिला देने का निर्मम प्रयास किया जाता है, किन्तु मनुष्य पुनः उसी मिट्टी से बंकर खड़ा हो जाता है जो कि उसकी जननी है। इस वीन निर्माण के उपरान्त एक शक्ति का संचार होता है जो कि मानवीयता का व्यवहार निभाती हुई धूलवत् अन्य लोगों को भी उठाने के लिये हाथ बढ़ाती है–

तुम धूल हो
पैरों से रौंदी हुई धूल
बेचैन हवा के साथ उठो
आँधी बन
उनकी आँखों में पड़ो
जिनके पैरों के नीचे हो।'[33]

समकालीनों में नागार्जुन किसान जीवन के साथ सर्वाधिक जुड़े हैं। उनमें कुपित कृषक की टेढ़ी भौहों से लेकर ग्राम वधू की दबी हुई कजरारी चितवन तक सब समाहित है। नागार्जुन उन्हें 'ओ जन–मन के चितेरे'' कहकर सम्मानित करते हैं।

अनेक जुझारू लेखक किसी न किसी बहाने से अपने में सिमट गये, सुख सुविधाओं के पीछे दौड़ चले। नागार्जुन इन पर विश्वास खोकर नहीं चलते। 1980 में उनकी एक लम्बी कविता के कुछ छन्द 'कथन' में प्रकाशित हुई। इसमें नागार्जुन अपनी

बिरादरी के बुद्धिजीवियों को स्नेह पूर्वक वहां चलने के लिए उकसाते हैं जहां भू-स्वामियों के सुपर मौज के मूड की होली में 'भूमिहीन की किस्मत का भुट्टा सिंकता है, यह सुझाव वे मानो अपने को दे रहे हों, इस भंगिमा में कहते हैं-

क्रांति दूर है, सच-सच बतला
बुद्धू तुझको क्या दिखता है
आ तेरे को सैर कराऊँ
घर में घुसकर क्या लिखता है।'[34]

"घर से निकल कर यदि प्रगतिवादी जनवादी लेखक जनता का दमन, उत्पीड़न और संघर्ष देखेंगे तो वे अपनी बहुत सी भौतिक आत्मिक व्याधियों से छुटकारा पा जायेंगे। लेकिन यह काम नागार्जुन की झाड़-फटकार से न होने वाला था। सुविधावाद ने बुद्धिजीवियों को इस प्रकार जकड़ लिया है कि उनमें उदासीता और संवेदनहीनता का रोग बड़े व्यापक पैमाने पर फैल गया।'[35] नागार्जुन ने 1981-82 में 'झाग ही झाग तो हो।' कविता में इस रोग के बारे में फिर चेतावनी दी, लेकिन कुछ कठोर ढंग से-

"असल में,
क्या हुआ है, बतलाऊँ?
आहिस्ते-आहिस्ते
तुमने इन्हें अपंग कर दिया है,
शब्द-स्पर्श, गंध, रस, रूप
सारे के सारे छीज गये हैं लगभग।
लानत है, तुम तो खुल कर हंस भी नहीं पाते।
...अपने स्व को सुला दिया है तुमने।
ऐसे में क्या हो आप ?
झाग ही झाग तो हो।'[36]

इस दौर में बुद्धिजीवियों की आम प्रवृत्ति और भूमिका से नागार्जुन कितने क्षुब्ध हैं, यह उनकी 'लानत' से जाहिर है। उन्होंने अहंकार से नहीं, सात्विक ओज से यह चुनौती दी है। इस दौर की एक दूसरी कविता में नागार्जुन ऐसे ही क्रोध से कहते हैं–

'पतित बुद्धिजीवी जमात को आग लगा दो.......
वर्ग शत्रु तो ढेर पड़े हैं
उनी लाशों से अब तुम
भूमि पाटते
चलना.......
मैं न अभी मरने वाला हूँ........
मर–मर कर जीने वाला हूँ........'[37]

पतित बुद्धिजीवी जमात से भिन्न, जनता के दुश्मनों के प्रति घृणा से भरपूर, उनके समान धर्मा केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है कि बोटी–बोटी नुच जाने से भी 'किसी देश या किसी राष्ट्र की कभी नहीं जनता मरती है।' जो कवि जनता से अत्मीय सम्बन्ध रखते हैं वे भी नहीं मरते। नागार्जुन की वाणी में कबीर के बेलागपन और दृढ़ता की गूँज मौजूद है–हम न मरे मरिहैं संसारा।

"नागार्जुन जनता से अपने रागात्मक सम्बन्ध के कारण अपनी भूमिका के प्रति निरन्तर सजग रहते हैं, सजग रहकर अपनी प्रतिबद्धता का निर्वाह करते हैं। उनके पाठक उनसे और चाहे जो शिकायत करें, यह शिकायत नहीं कर सकते कि अपनी ईमानदारी का सिक्का जमाने की हताश दौड़ में या अपने लिये सुख सुविधायें जुटाने के जुगाड़ में वे भारत के शासक वर्ग के चाकर बन गये हैं, साम्राज्यवादी शक्तियों के हाथ की कठपुतली बन गये हैं।'[38]

पूँजीवादी, साम्राज्यवादी तथा सामंतवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश :

नागार्जुन के काव्य में जनता की भव्य गतिविधियों के साथ क्रांति का सपना और क्रांति की प्रक्रिया में नता की विराट भूमिका का सपना अनिवार्य रूप से जुड़ा है। उनका

विश्वास है कि क्रान्ति संसदीय तरीके से नही होगी वह आतंकवादी तरीके से भी नहीं होगी, क्रांति वस्तुतः जनवादी तरीके से ही होगी, उसे निर्धन मेहनतकश लोग करेंगे जिन्हें उसकी जरूरत है। जनता पर नागार्जुन का सबसे पहला और सबसे अन्तिम विश्वास है।

नागार्जुन के काव्य में मनुष्य के शोषण के विभिन्न रूपों–साम्राज्यवाद, सामंतवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध तीव्र रोष का जो भाव दिखाई देता है वह प्रगतिशील काव्यधारा से उनके सम्बन्ध का प्रभाण है। आरम्भ में प्रगतिशील काव्य एक व्यापक साम्राज्यवाद विरोधी, संघर्ष का काव्य था। भारत की स्वाधीनता के बाद सत्तारूढ़ पूंजीवादी नेतृत्व के व्यवहार ने नागार्जुन के सामने उत्तरोत्तर यह स्पष्ट कर दिया कि विकासशील देश का साम्राज्यवाद से सम्बन्ध बढ़ेगा तो उसी अनुपात में जनता का दमन बढ़ेगा, जनतन्त्र का हनन होगा। यह बात नागार्जुन ने असंख्य बार दुहाराई है। 1948 में।–

'ख्याल करो मत जन साधरण की रोजी का, रोटी का,
फाड़–फाड़ कर गला न कब से मना कर रहा अमरीका।'[39]

1962 में–

'भाई भले मुरारी जी।
...गिरवी कौन रखेगा हमको सात समुंदर पार जी।
...दिलवा भी दो दवा कहीं से, बच्ची है बीमार जी।
निकल नहीं पाती घर से बीबी है लाचार जी।'[40]

1971 में, चुनाव का प्रहसन के साथ–

'नील कमल कानन में होती है रहे अनल की वृष्टि,
जंग खोर थैली शाहों की बनी रहे शुभ दृष्टि।'[41]

पूँजीवाद प्रगति का बाधक बना। शोषक वर्ग ने श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तु पर एकाधिकार कर लिया है। कवि इन्हीं परिस्थितियों का अन्त करना चाहता है। उनका पाषण हृदय मानव चित्कारों से कभी नहीं पसीज सकता और यही कारण है कि फिर एक

अन्य मार्ग ढूँढना एक विवशता बन जाती है। श्रम के आधार पर समानुपातिकता से भी मनुष्यों में सुविधाओं का समान वितरण होना चाहिये।

दुर्बल एवं कृषकाय अस्ति–पंजरों को देखकर कवि को आश्चर्य होता है। भविष्य का भार जिन भावी कर्णधारों पर है उन्हें वह असमय मुरझाया हुआ देखते हैं। धनिकों के प्रासाद हैं, मोतियों के बन्दनवार हैं, हीरों के हार तथा स्वर्णमय सुखद संसार हैं। जहां एक ओर वैभव झूमता है तथा उत्सव राग रंग से संयुक्त है वहीं दूसरी ओर कंकाल सदृश भूखे बच्चे हैं, किन्तु कोई भी इस व्याकुल पुकार को सुनने वाला नहीं है। वे 'लक्ष्मी' को सम्बोधित करके बड़ी सरलता से कहते हैं–

'जय–जय हे महारानी
दूध को करो पानी
आपकी चितवन है प्रभु की खुमारी
महलों में उजाला
कुटियों पर पाला
कर रहा है तिमिर प्रकाश की सवारी।'[42]

नागार्जुन की विशेषता यह है कि उन्होंने श्रमिक जनता की आधार भूमि से समाज के प्रत्येक वर्ग प्रत्येक समस्या पर दृष्टिपात किया है। 'वे और तुम' कविता के उदाहरण से यह बात अच्छी तरह समझी जा सकती है–

'वे लोहा पीट रहे हैं
तुम मन को पीट रहे हो
वे पत्तर जोड़ रहे हैं
तुम सपने जोड़ रहे हो
उनकी घुटन ठहाकों में घुलती है
और तुम्हारी घुटन?
उनींदी घड़ियों में चुरती है।'[43]

पारम्परिक धर्म का विरोध कर नागार्जुन कहते हैं कि सत्ता का भार उठाने वाला भगवान ही दु:ख दैन्य बरसाता है–

'जिसे तुम कहते हो भगवान
उठाता है सत्ता का भार
जो बरसाता है जीवन में,
रोग–शोक दु:ख दैन्य अपार।'[44]

कृषक वर्ग के रक्त पर ही पूँजीवादी वैभव की दीवार खड़ी होती है। समाज के धन पिशाच सम्पूर्ण समाज को अपने प्रवाह में लिये पसुता का नग्न नृत्य करते हैं।

साधन विहीनों की दैन्य स्थिति और भी कारूणिक हो जाती है क्योंकि उन्हीं का रक्तपान करके शोषक वर्ग आगे बढ़ता है। वहीं अभाव ग्रस्त मनुष्य के पास पूँजी के नाम पर केवल चीथड़े ही शेष रह जाते हैं और उन चीथड़ों और शरीर में बचे रक्त पर भी शोषकों की दृष्टि लगी रहती है।

नागार्जुन की साम्राज्य विरोधी चेतना का प्राथमिक और मूल उद्गम भारतीय क्रांति की चिन्ता में निहित है। वह अतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के आंकलन पर उतना निर्भर नहीं है आज की दुनिया का मुख्य अर्न्तविरोध समाजवाद और साम्राज्य के बीच है। सारे अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्न इसी सन्दर्भ में हल होते हैं। नागार्जुन विश्व राजनीति के इस अर्न्तविरोध के परिप्रेक्ष्य में भारतीय क्रांति की समस्या को उतना नहीं देखते जितना भारतीय क्रांति के प्रश्न को केन्द्र में रखकर अतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को देखते हैं, इसलिये अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर राय व्यक्त करते समय कहीं–कहीं उनका दृष्टिकोण राष्ट्रवाद से प्रभावित होता है। नागार्जुन समाजवाद तथा सामंतवाद को एक ही दृष्टि से दखते हैं। राष्ट्रवाद उनकी दृष्टि की सीमा नहीं है, क्रांति के लिये उनकी उद्दाम भावना की अभिव्यक्ति है। अकारण नही है कि साम्राज्यवाद द्वारा प्रताड़ित और उससे संघर्षरत विश्व जनगण के साथ जैसी एक जुटता नागार्जुन प्रदर्शित करते हैं, कोई और नहीं करता। इसके साथ ही, नागार्जुन की मूल प्रवृत्ति वामपक्ष और जनवादी क्रांति के साथ

इतना अधिक सम्बद्ध है कि न तो वे साम्राज्यवाद के प्रति नरम हो सकते और न ही साम्राज्यवाद उनकी असंगतियों का लाभ उठा सका है।

'साम्राज्यवादी प्रचार–युद्ध का हिस्सा 'नागार्जुन साम्राज्यवादी राजनीति और रणनीति का उसके आर्थिक हितों से सम्बन्ध पहचानते हैं और साथ ही भारतीय पूँजीवाद के साथ उसके अर्न्तविरोध और समझौते को भी देखते हैं। भारत की स्वाधीता के बाद सत्तारूढ़ पूँजीवादी नेतृत्व के व्यवहार ने नागार्जुन के सामने उत्तरोत्तर यह स्पष्ट कर दिया कि विकासशील देश का साम्राज्यवाद से सम्बन्ध बढ़ेगा तो उसी अनुपात में जनता का दमन बढ़ेगा, जनतन्त्र का हनन होगा। नागार्जुन पूँजीवादी शक्तियों की तीव्रतम आलोचना करते हैं, उनके काव्य में आशा और आस्था का समान स्वर मिलता है, सामाजिक यथार्थ की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। एक ओर पूँजीपतियों का वैभव है तो दूसरी ओर जठराग्नि का प्रभाव मानव पर मानव द्वारा किये जा रहे शोषण से वे आर्द्र हो जाते हैं–

'देख–देख सिर चकराता है
मानव को मानव खाता है।'[45]

जमींदारों का भूपालक रूप तिरोहित हो चुका है। जमींदारियां अपने विकृत रूप से सड़ांध फैला रही हैं। अतः नागार्जुन की प्रगतिवादी दृष्टि जमींदारी की सड़ी लाश को दफना देना चाहती है–

'सड़ी लाश है जमींदारियां, इनको हम दफनायेंगे,
गांव–गांव पंतर–पांतर को हम भू स्वर्ग बनायें।'[46]

इनके उग्र रूप से जमींदार भयभीत हैं। शोषित अपनी धरती के लिये जागृत हो गये हैं और अपने पुरुषार्थ से, अपनी धरती को क्रूर शोषकों के पंजों से छुड़ा लेने का दम भरते हैं–

'जमींदार है बदहवास हमने उसको ललकारा है
जिसका जांगर उसकी धरती यही एक बस नारा है।'[47]

कुल मिलाकर नागार्जुन ने पूँजीवाद, समाजवाद तथा साम्राज्यवाद की व्यवस्था का खुलकर विरोध किया है।

सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति :

नागार्जुन की कविता का वास्तविक संसार वस्तुः पारिभाषिक शब्दावली में सर्वहारा का संसार कहा जा सकता है। नागार्जुन गांवो, नगरों, उपनगरों और महानगरों सभी में रह चुके हैं, फलतः सभी स्थानों का भोगा यथार्थ इनकी लेखनी ने प्रतिबिम्बित किया है वे लोक संवेदना, सहृदयता से सम्पृक्त हैं, अतः उनकी कवितायें केवल सैद्धान्तिक नहीं रह गयी हैं। इन्हें अनुभव प्रसूत मानना चाहिये। ये सर्वहरा वर्ग को समझते हैं तथा उनकी उस शैली के निकट हैं जो कुंठाहीन है तथा पारस्परिक हित–लाभ से जुड़ी है। यही इनकी कविता का मूलाधार है। बोल–चाल, रीति–रिवाज़, वातावरण, धरती, ग्रामीण शूक्ष्म अनुभूतियां इत्यादि सभी से कवि ने नैकट्य स्थापित किया है। कुछ ऐसे लोग हैं जो पूँजी के बल पर वर्तमान को इतना नोच रहे हैं कि भविष्य स्वयमेव नष्ट हो जाये। धन कुबेरों की ऐसी सैन्य शक्ति के नागार्जुन ने बहुत उभारा है। इसी कारण सम्पूर्ण समाज में भ्रष्टाचार, शोषण और कुचक्रों का अंधनृत्य हो रहा है। सर्वसामान्य वर्ग की पीठ पर बजट का बोझ चढ़ता जाता है, देह का मास निःशेष होता जाता है–

'पब्लिक की पीठ पर बजट का पहाड़ है
गिन लो जी, गिन लो जी, गिन लो जी,
मास्टर जी की छाती में कै ठो हाड़ है।'[48]

आज साधन सम्पन्न वर्ग और अधिक सम्पन्न होता जाता है तथा झोपड़ियां और अधिक उजड़ती हैं। सामाजिक क्षोभ और लोक पीड़ा दोनों ने नागार्जुन के लेखन में समान स्थान प्राप्त किया। अर्थचक में जनसामान्य पिसता है और धर्माचक्र जैसे तत्व पताकाओं की सीमा में आबद्ध निश्प्राण टंगे रहते हैं–

'अर्थ चक्र से पिष्ट पिपीड़ीत जन-जीवन है क्षुब्ध,

धर्म चक्र हे झंडों पर ही टिकटों पर है युद्ध।'[49]

नागार्जुन अपनी कविता के माध्यम से जीवन की प्रत्येक चुनौती स्वीकार करते हैं। और सर्वहारा वर्ग की विजय पताका फहरा देते हैं। विध्वंश और सृजन की प्रक्रिया चारों ओर क्रियाशील है। केवल मानव सभ्यता का विकास ही विध्वंस सृजन की प्रक्रिया के मध्य नहीं हुआ बल्कि प्रकृति के जड़ रूप में यही तथ्य क्रियाशील मिलता है। नागार्जुन शोषण की प्रत्येक प्रथा का गहन अंधकार मिटाकर नवीन प्रकाश फैलाना चाहते हैं-

'शोषण की प्रत्येक प्रथा का

अंधियारा गहन मिटाये जा,

नये जन्म का नया उजाला

धरती पर बरसाये जो।'[50]

नागार्जुन कहते हैं कि सर्वहरा का विश्वास खो देना जल के समान स्नेह सूत्र तोड़ देना है-

'विश्वास सर्वहारा का तुमने खोया तो

आसन्न मौत की गहन पड़ जायेगी,

यदि बांध बांधने के पहले जल सूख जायेगा

धरती की छाती में दरार पड़ जायेगी।'[51]

सर्वहारा वर्ग के पास केवल फूल और तृण दल ही घर के रूप में होता है तथा अवलम्ब के रूप में केवल अश्रु होते हैं। धार्मिक वृत्ति धैर्य बंधाती है और जीवन की आस्था गंगा जल से ही संतोष कर लेती है-

'महल कहां बस हमें सहारा

केवल फूस, फांस, तृण-दल का,

अन्न नहीं अवलम्ब प्राण को

गम, ऑसू या गंगा जल का।'[52]

'नागार्जुन की कविताओं में बस ड्राइवर, कुली, मजदूर, रिक्शा चालक, शबर–पुत्र, नंग–धड़ंग गंगा पुत्र, छोटे बाबू, किसान एवं विज्ञापन सुन्दरी आदि सर्वहारा की बीहड़ दुनिया है। नागार्जुन की कविता इनके संघर्षों की आवाज है। इनका संघर्ष शीत, धाम, वर्षा, आंधी–अंधड़ के समय, खेत–खलियान, बाढ़, अकाल, कल–कारखानों में भूखे पेट रहकर भी चल रहा है। इस संघर्ष में नागार्जुन के बीच आते हैं। संघर्ष में कूद पड़ते हैं और पहली कतार में खड़े हो जाते हैं। जनता के साथ लाठी डंडे खाते हैं, भूखे पेट सोते हैं, जेल यात्रायें करते हैं। इस संघर्षरत जनता से नागार्जुन प्रतिबद्ध हैं किन्तु जनता को प्रतिबद्ध करने का उनका आग्रह नहीं है, क्योंकि जनकवि में शक्ति होगी तो जनता स्वयं उसके साथ प्रतिबद्ध होगी, उसके साथ चलेगी।'[53]

जहां असमानता की खाई चौड़ी होती चली जा रही है, ऐसे समाज में सामाजिक परिवर्तन की नयी दिशा, लोक जीवन के निकट आने और उसके हितों, आशाओं, आकांक्षाओं को वाणी देने से ही सम्भव हो सकती है। कवि नागार्जुन की कवितायें इसी जन की वाणी है। कवि की स्पष्ट घोषणा है कि–

'इतर साधारणजनों से अलहदा होकर रहो मत
कलाधर या रचयिता होना नहीं पर्याप्त है
पक्षधर की भूमिका धारण करो
विजयिनी जन वहिनी का पक्षधर होना पड़ेगा
अगर तुम निर्माण करना चाहते हो।'[54]

नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्य :

ऐसी कौन सी विशेषता है जो आधुनिक हिन्दी कविता में नागार्जुन की विशिष्ट पहचान बनाती है? तो वह है उनके राजनीतिक व्यंग्य। ऐसी कौन सी चीज है जो नागार्जुन के साहित्यिक मूल्यांकन की मुख्य अड़चन है? तो वह भी उनके राजनीतिक व्यंग्य ही हैं।

नागार्जुन की राजनीतिक व्यंग्य की कवितायें आजाद भारत के राजनीतिक जीवन की लगभग पूर्ण अभिव्यक्ति है अर्थात आजाद भारत के राजनीतिक वातावरण में आज तक जो कुछ भी महत्वपूर्ण घटा है, ये कवितायें उसका पूरा–पूरा लेखा–जोखा प्रस्तुत करती हैं। यदि कविता वास्तव में समकालीन जीवन में कोई प्रत्यक्ष भूमिका अदाकरती है तो नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं ने यह काम बखूबी अदा किया है।

नागार्जुन उन बड़े कवियों में से एक हैं जो सदैव अपनी रचनात्मक समस्याओं के प्रति सचेत रहे हैं। राजनीतिक व्यंग्य और उनमें पुराकथाओं का व्यापक उपयोग–दोनों चीजें नागार्जुन की काव्य–चेतना में अभिन्न रूप से बंधी हुई है। नागार्जुन ने राजनीतिक व्यंग्य–लेखन को आजादी के बाद अधिक अपनाया। नागार्जुन ने आजादी के बाद विफल मनोरथ जनता की तरफ से कांग्रेस सरकार के कृत्यों को मुख्य निशाना बनाकर व्यंग्य लिखने का जो सिलसिला शुरू किया, वह आज तक अबाध गति से चल रहा है।

आजादी के पहले 'राम राज्य' का जो सपना जनता की प्रेरक शक्ति था, आजादी के बाद वही जीवन का सबसे बड़ा व्यंग्य बन गया। नागार्जुन ने भारतीय जीवन की इस गम्भीरतम् असंगति को व्यक्त करने के लिये जो राजनीतिक कवितायें लिखी, उनमें कांग्रेसी नेताओं के फरेब के खिलाफ जनता का पराजित विश्वास अपने पूरे सात्विक क्रोध के साथ प्रकट होता है। इन कविताओं में राम राज्य के मानवीय स्वप्न और जनता के पाशविक दमन का साम्राज्यवाद विरोधी संग्राम और उसके आगे घुटने टेक देने वाली नीति का अर्न्तविरोध बड़ी तीव्रता से उभरता है–

'लाज शरम रह गयी न बाकी गांधी जी के चेलों में।
फूल नहीं लाठियां बरसती राम राज्य के ज़ेलों में।
भैया लंदन ही संद है आजादी की सीता को।
नेहरू जी अब उमर गुजारेंगे अंग्रेजी खेलों में।'[55]

भारतीय जनता के अपमान की प्रतिक्रिया हैं राजनीति पर लिखी हुई नागार्जुन की व्यंग्य–कवितायें । यह बात 'टके की मुस्कान, करोड़ों का खर्चा', 'आओ रानी हम ढोयेंगे

पालकी' आदि प्रसिद्ध कविताओं से भी समझी जा सकती हैं। नागार्जुन ने राजनीति व्यंग्य लिखने का संकल्प लिया है भारतीय जनता के राष्ट्रीय सम्मान को जाग्रत रखने के लिये।

नागार्जुन की एक कविता है 'कालीमाई' इसमें नागार्जुन जनता के अंधविश्वास पर प्रहार करते हैं–

'कितना खून पिया है जाती नहीं खुमारी,
सुर्ख और लम्बी है मईया जीभ तुम्हारी।'[56]

इन माता को सिरों की माला पहनने का शौक है, उसके लिये 'गरीबों पर निगाह है।' दूसरी ओर 'धन पशुओं के लिये दया की खुली राह है।' कवि उन लोगों की तरफ से 'माँ' को सम्बोधित कर रहा है, जो भारी कल के पुर्जे बनाकर घिसे जा रहे हैं। उसे यह नरभक्षी देवी आत्मीय नहीं जान पड़ती–

कद्दू, लौकी नहीं, तुम्हें तो मांस चाहिये
यम से छीना–झपटी में पूर्णांश चाहिये
लगातार ही बलि पशुओं की आंत चाहिये।....'[57]

नागार्जुन यह जानते और मानते हैं कि आधुनिक भारत में गांधी से बड़ा दूसरा जननेता नहीं हुआ जिसने राष्ट्रीय स्तर पर जनता को इतनी बड़ी संख्या में राजनीति में सक्रिय किया हो। इसीलिए उनकी हत्या पर वे इतने भावाकुल हुए। गांधी जी के प्रति नागार्जुन की सारी श्रद्धा उनके जननायक वाले रूप को लेकर है। इस भावना के वशीभूत होकर वे न तो गांधी का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन त्याग देते हैं और न ही गांधी जी के अनुयायियों के दो मुँहेपन पर हमला करना। यह समझने के लिये उनकी प्रतिनिधि पंक्तियां मानी जा सकती हैं–

'बापू के भी ताऊ निकले तीनों बन्दर बापू के,
सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बन्दर बापू के।'[57]

पूँजीवादी हितों की तरफदारी करने वाले गांधीजी के चेले आजादी के बाद जिस राजनतिक संस्कृति का विकास करते हैं, उस पर नागार्जुन के व्यंगों का प्रहार बद नहीं हुआ। 'गांधी टोपीः हैट के प्रति' कविता में गांधी टोपी पश्चिमी हैट से कहती है–

'बनी रही वर्षों में बड़प्पन की ढाल
जाने कित्ते फिदा हुए थे मुझ पर जवाहर लाल
शास्त्री के जमाने तक ठीक था हाल
अब लेकिन चिढ़ाती है इंदिरा की शाल..'[59]

अथवा–

'गांधी जी का नाम बेंचकर बतलाओं कब तक खाओगे?
यम को भी दुर्गंध लगेगी नरक भला कैसे जाओगे?'[60]

इसी तरह 'इन्दू जी क्या हुआ आपको' कविता में वे चुनौती देते हैं–

'बचपन में गांधी के पास रही,
तरूणाई में टैगोर के पास रही,
अब क्यों उलट दिया संगत की छाप को?'[61]

नागार्जुन सामाजिक परिवर्तन के लिये चलने वाले हर अभियान का स्वागत करते हैं, कहीं–कहीं भटकते हैं, लेकिन आमतौर पर अपने विवेक को जाग्रत रखते हैं, सामाजिक परिवर्तन में युवकों की भूमिका को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान देते हैं, नक्सली युवको के प्रति उनमें सहानुभूति का भाव है, ये बातें सही है। 'जो लोग ऑख खोलकर नागार्जुन की कवितायें पढ़ते हैं व जानते हैं कि नागार्जुन के लिए व्यक्तिगत ईमानदारी और नैतिकता का स्त्रोतसामंतवाद नहीं भारत की सर्वसाधारण श्रमिक जनता है। श्रमिक जनता के प्रति नागार्जुन का प्रेम भाव उनके वर्ग विवेक की उपज है।'[62]

नागार्जुन को इस बात की पूरी–पूरी समझ है कि आज सामाजिक जीवन की मुख्य प्रक्रियायें राजनीति से स्वतंत्र नहीं है। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान राजनीति का जो स्वरूप निर्धारित हो रहा था, खासकर स्वाधीता प्राप्ति के बाद देश की राजनीतिक

अवस्था जैसी बनी, उसमें नागार्जुन के लिए उदासीन बैठे रहना सम्भव न था। नागार्जुन के राजनीतिक व्यंग्य इस बात का प्रमाण हैं कि उनमें राजनीति के महत्व की पूरी और गम्भीर समझ है। उनके राजनीतिक व्यंग्य इस बात के प्रमाण हैं कि अमर साहित्य रचने का लोभ दबाकर वे इस दिशा में प्रवृत्त हुए हैं तो किसी इतर दबाव से नहीं, अपने कवि दयित्व को समझ बूझ कर।

नारियों के प्रति उत्थान परक चिंतन':

नागार्जुन नारियों के उत्थान के प्रति अपना उच्च-उदात्त दृष्टिकोण रखते हैं। नारी युग-युग से शोषित और प्रताड़ित रही है। वह गृहस्वामिनी नहीं एक ऐसी गृहसेविका समझी जाती रही है, जिससे कोई भी निम्न से निम्न और जघन्य से जघन्य कार्य कराया जा सकता है। वह पुरुषों की काम लिप्सा का एकमात्र साधन समझी जाती है। प्रगतिवादी कवियों का ध्यान उसकी इस दयनीय स्थिति की ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने वास्तविक महत्वूर्ण कार्य, उसके शक्ति और महत्व का प्रतिपादन किया। उन्होंने युग-युग से शोषित और दमित नारी को उत्थान का सन्देश दिया और उसे अंधकारपूर्ण जीवन से बाहर निकाल, कर्म क्षेत्र में अपनी शक्ति प्रदर्शित करने को प्रेरित किया। प्रगतिवादियों ने जहां नारी का चित्रण किया है, उन्हें प्रायः तेजस्विनी बनाया है, दलित स्त्रियों में भी एक प्रकार का विद्रोह पनपा हुआ दिखाया है जो कहीं न कहीं उनके सामर्थ्य को झलकाता है। विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के क्रम में अनेकानेक बाधायें आती हैं तब स्थितियां बदलती है। जैसा कि-

'मिटने वालों की बस्ती में संगिनि फिर हम आये हैं
बस छूते ही जिन्हें शैलजा नवदुर्गा बन जाये।'[63]

'यह छिन्नमस्ता का रूप निश्चित ही सराहनीय है। नागार्जुन नारी से कहते हैं कि वह ललकार कर कह दें कि विषमताओं से वह मुक्त होना चाहती है।'[64] प्रयोगवादी और प्रगतिवादी नारियों के चित्रण में कवियों ने किंचित भिन्नता प्रकट की है। प्रयोगवादी

नारी निरन्तर भगती है किन्तु संघर्ष नहीं करती। वह अपनी विवशता में घुटती है, जबकि प्रगतिवादी नारी को साहित्यकार उठाकर खडा करता है। प्रगतिवादी कवि नागार्जुन ने नारी को भी संघर्ष में समान अवसर प्रदान किया है और उसके प्रति सम्मान की दृष्टि रखी है। नारियां दुर्धष समर में हिस्सा लेती हैं और अपनी तेजस्विता पुरुषों में भर देती है। इसी भावना से जुड़कर नागर्जुन कहते हैं कि तुम्हारा बनाने के बाद पराजय सम्भव नहीं।–

'मैं तुम्हारा बन गया तो फिर न हारा।'[65]

नारी के सौन्दर्य की मोहकता के लिये कहते हैं कि 'तुम्हारा सौन्दर्य मेरी ऑखों में अंजन सा बस गया है।' इससे पूर्व में अंधकूपवासी था, जिसने सीमित परिधि के बाहर कभी कुछ देखा ही न हो–

'तुम्हें देखता हूँ तो आँखों से पुरुष का
अंजन सा लग जाता है ऐसा लगता है
कि मैं तुम्हारे बिना निवासी अंधकूप का ही हूँ।'[66]

नागार्जुन स्त्रियों को उनकी दलित स्थिति से ऊपर उठाना चाहते हैं, जिससे संघर्ष में उनकी हिस्सेदारी समान रहे। नागार्जुन स्त्रियों की दलित दशा देखकर उनकी मुक्ति का द्वार खोलते हैं 'विप्लव में अनेक निर्दोष व्यक्ति आहत हो जाते हैं'। आहत स्त्री के प्रति किसी की सहानुभूति नहीं होती, लेकिन सैनिक की विधवा सभी के लिए सहानुभूति की पात्र बनती है। यद्यपि पीड़ा समान है किन्तु पीड़ा के प्रति दृष्टि बदली रहती है।' 'शकुतला' में पुरुष का लम्पट रूप उभरा है। यहां नागार्जुन पुरुष का सहज ही विश्वास कर लेने वाली शकुन्तला को मूर्ख कहते हैं–

"मूर्ख थी शकुन्तला
(महर्षि की पालतू लड़की)
शोहदे की अंगूठी पर किया था भरोसा।'[67]

भारतीय पुरुष प्रधान सामाजिक संरचना में ऐसे विधान किये गये हैं कि नारी को भाग्या मानकर इनका शोषण सरलता से किया जा सके। उसे समाज से अनभिज्ञ, पर्दों में रखकर शिक्षा से अलग करके आर्थिक दृष्टि से मजबूर और परावलम्बी बनाकर,

शुचिता का आदर्श रखकर, पतिव्रत धर्म का अनुसरण कराके, समाज ने उसके साथ छल किया है, उसे अज्ञानता के अंधकार में रखकर उसका शोषण किया है। नागार्जुन की दृष्टि इसे भली भाँति पहचानती है जैसा कि इनकी 'हरिजन गाथा' और 'कब होगी इनकी दीवाली' कविताओं में स्पष्ट हो चुका है। अन्यायी और अत्याचारी इन्हीं की मांग का सिन्दूर मिटाता है, इनके सुहाग को लूटता है और इन्हें क्रय–क्रीत दासी बनाता है–

"ग्रामवासिनी, नगरवासिनी,
माताओं, बहनो, बहुओं की
रूकी निगाहें, झुकी निगाहें

X X X

व्यथित निगाहें मथित निगाहें
स्तब्ध निगाहें, शून्य निगाहें
... समझ नहीं पाती किसने थोपा है
मानवता पर अमिट कलंक,
भीगी–भीगी, सहमी–सहमी
दहशत भरी निगाहों के दृश्य भला मैं भूल सकूँगा।'[68]

नारी शोषण की एक अन्य प्रणाली समाज में दिखाई पड़ती है। पुरुष नारी को तो पतिव्रता बने रहने की सीख देता है किन्तु अपने बहु विवाह के लिये स्वतन्त्र है। हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है। उसे घर की चहार दीवारी में कैद करके मात्र भोग का साधन बनाया है। स्वयं को तो गंगाजल की भाँति पवित्र मानता है किन्तु नारी को ऐसी स्वतन्त्रता देने में वह सदा से ही भयभीत रहा है। नागार्जुन इस चालाकी को

समझते हैं वे नारी शोषण बन्द कराने के लिये राम के मुख से यह आदर्श स्थापित कराते हैं–

'छूकर अब तुम्हारे दोनों पाँव
होता राघव राम प्रतिज्ञाबद्ध।
नारी के प्रति कभी न होगा क्रूर
नहीं करेगा वह दूसरा विवाह

X X X

...कभी न मेरे अंतःपुर के मध्य होगा–
षोड़शियों का जमघट
व्यर्थ नहीं करूँगा सपने में भी अम्ब
क्रय–क्रीत दास–दासी का अपमान।'[69]

यहां जो आदर्श स्थापित करने का प्रयास नागार्जुन ने किया है वह एक मूल्यवत्ता को प्रस्तुत करता है। नारियों के लिये नागार्जुन उत्थान परक चिन्तन करते हैं और यही उनका सौन्दर्य है।

नारी के प्रति नागार्जुन के मन में एक विशेष भाव तथा संवेदनाशीलता है जो कि सहानुभूति परक है फलतः इनकी नारी सौन्दर्य विषयक दृष्टि भी भिन्न है। प्रगतिवादी काव्य में नारी कहीं भी अकर्मण्य नहीं मिलती। वह निरन्तर अपनी स्थिति के प्रति चैतन्य और संघर्षशील मिलती है। वह दुःस्थिति से उबरने का प्रयास करती है। इसके अनुसार कुरूपता का अर्थ श्यामलला नहीं है। नागार्जुन कुरूप उसे मानते हैं जो अगतिशील हो 'नागार्जुन ने नारी जाति के विषय में प्रचलित सामंती पूँजीवादी मान्यतायें खण्डित की हैं। नारी के विषय में नये वैज्ञानिक और ऐतिहासिक सत्य को सामने रखा है।'[70]

समसामयिक समस्याओं के प्रति जागरूकता :

नागार्जुन की प्रगतिशीलता का एक उल्लेख आयाम समसामयिक चिन्तन और संदर्भों से सम्बन्धित है। नागार्जुन न केवल यथार्थ के कवि रहे है अपितु दिन प्रतिदिन

क्षण प्रतिक्षण की स्थितियों से उनकी कटिबद्धता भी है और यही काव्य की अनिवार्यता भी है। इसी अनिवार्यता का परिणाम है कि वे बड़ी तीव्रता के साथ समसामयिक संदर्भों, स्थितियों और घटनाओं को अपने काव्य में वाणी देते रहे हैं। उनकी अनुभूतियों के गोलक में सामाजिक धार्मिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय और दैनिक घटनावली के बिम्ब स्वतः ही सिमटते और बंधते गये हैं।

नागार्जुन अपने समय के सजग कवि हैं। यही कारण है कि यदि वे बढ़ती हुई मंहगाई के देखकर चिंतित हैं तो पुलिस छात्र संघर्ष, देश व्यापी भ्रष्टाचार, स्वार्थ, अवसरवादिता और कुत्सित विचारधारा के प्रति भी सतर्क हैं। वे भ्रष्टाचार को रावण का स्वरूप देकर अपना आक्रोश इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

'राम–राज में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है,
सूरत शक्ल वही है भईया, बदला केवल ढांचा है,
नेताओं की नीयत बदली, फिर तो अपने ही हाथों,
भारत माता के गालों पर कसकर पड़ा तमाचा है।'[71]

इसी क्रम में कवि के समसामयिक चिन्तन का एक वृत्त वह भी है जिसमें वह राजनैतिक क्षितिज पर घटित होने वाली घटनाओं को देखते हैं। आजादी मिल गयी ठीक हुआ, किन्तु उसके साथ ही देशी नवाबों और राजा–महराजाओं की आजादी भी छिन गयी। उनकी गद्दी के छिनते ही उनमें जो प्रतिक्रिया हुई उसे शब्दों के चौखट में जड़ते हुये कवि ने लिखा है–

'पछताते हैं राजा, पछताते हैं नवाब
देखते हैं पुराने दिनों के ख्वाब,
राजा होंगे स्वतंत्र, स्वतंत्र होंगे राज
लौटेगी शहंशाही, शासन होगा ताजा,
एक होगा राजाधिराज बहादुर,
गायेंगे यश झींगुर और दादुर।'[72]

हिन्दी चीनी भाई–भाई का नारा देने वाले चीन ने जब भारत पर आक्रमण किया तो कवि की आत्मा तिलमिला उठी, पंचशील का सिद्धान्त उसे हवा में टुकड़े–टुकड़े होकर उड़ता हुआ दिखाई दिया। फलतः उन्होंने लिखा है–

'अब तो मुंह में दही जम गयी,
अब तो आती है उबकाई
बोलो फिर से कौन कहेगा
हिन्दी चीनी भाई–भाई।'[73]

नागार्जुन की समसामयिकता का वृत काफी चौड़ा है। रूस ने जब चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग पर आक्रमण किया तो वहां की शांति प्रियजनता के अशान्त हृदय को मार्मिक बिम्ब प्रस्तुत करते हुये कवि रूस की इस अशोभनीय अवांछित हरकत पर व्यंग्य करता है। उसने लिखा है–

"जी आपको गलत फहमी हुई है
जी हमे ही चिढ़ाया था पहले,

1. डॉ0 अजय तिवारी, 'नागार्जुन की कविता', भूमिका पृ.–13
2. ऊषा पाण्डेय, 'नागार्जुन की जनवादी चेतना', पृ–85
3. नागार्जुन, 'हजार–हजार बाहों वाली', पृ.–157
4. डा0 राम विलास शर्मा, 'नई कविता और अस्तित्ववाद', पृ.–141
5. अजय तिवारी, 'नागार्जुन की कविता', पृ.–33
6. केदारनाथ अग्रवाल, 'फूल नहीं रंग बोलते हैं', पृ.– 34
7. सूर्यनारायण भट्ट, 'समाजवाद इतिहास के पन्नों पर' पृ.–134
8. केदारनाथ अग्रवाल, 'लोक और आलोक', पृ.– 23
9. अजय तिवारी, 'नागार्जुन की कविता', पृ. 136
10. नागार्जुन, 'प्यासी पथराई आंखे', पृ.– 32
11. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, 'भारत दुर्दशा', पृ.– 32
12. नागार्जुन, 'प्यासी पथराई ऑखें', पृ.– 32
13. वही, 'युगधारा', पृ.– 49
14. वही, पृ.– 33
15. अजय तिवारी, 'नागार्जुन की कविता', पृ.–147
16. मंगलेश डबराल, 'पहाड़ पर लालटेन', पृ.– 12
17. नागार्जुन, 'धारा'–4, पृ.– 14
18. डॉ0 विलास त्रिपाठी, 'जनयुग', 11 जून, 1978, पृ.– 137
19. नागार्जुन, 'पुरानी जूतियां', पृ– 43

20. नागार्जुन, 'सतरंगे पंखोंवाली', पृ– 14

21. नागार्जुन, 'हजार–हजार बाहों वाली', पृ.– 124

22. ऊषा पाण्डेय, 'नागार्जुन की जनवादी चेतना', पृ.– 94

23. नागार्जुन, 'सतरंगे पंखों वाली', पृ.– 10

24 डॉ0 रमेश कुंतल मेघ, 'मिथक और स्वप्न', पृ.– 59

25. नागार्जुन, 'हजार–हजार बाहों वाली', पृ.– 47

26. नागार्जुन, 'घिन नहीं आती', पृ.–22

27. वही, 'हजार–हजार बाहों वाली' पृ.–142

28. नागार्जुन, 'हजार–हजार बाहों वाली', पृ.–11

29. नागार्जुन 'विश्वास बढ़ता ही गया', पृ.–4–5

30. नागार्जुन, 'हजार–हजार बाहें वाली', पृ.–54

31. अजय तिवारी, 'नागार्जुन की कविता' पृ 32–33

32. नागार्जुन, 'मुक्ति संघर्ष', पृ.– 96

33. श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, 'सं0 प्रतिनिधि कवितायें' पृ.–25

34. नागार्जुन, 'पुरानी जूतियां', पृ.–162

35. अजय तिवारी, 'नागार्जुन की कविता', पृ.– 87

36. नागार्जुन, 'ऐसे भी हम क्या', पृ.– 50

37. नागार्जुन, 'आखिर ऐसा क्या', पृ.– 13

38. अजय तिवारी, 'नागार्जुन की कविता', पृ.– 88

39. नागार्जुन, 'हजार–हजार बाहों, वाली', पृ.– 46

40. वही, पृ.– 127

41. नागार्जुन, 'तुमने कहा था', पृ.– 49

42. वही, 'हजार–हजार बाहों वाली', पृ.– 52

43. नागार्जुन, 'मैं और तुम', पृ– 66

44. वही, 'हजार–हजार बाहों वाली', पृ.– 40
45. नागार्जुन, 'तुमने कहा था', पृ.– 46
46. वहीं, 'हजार–हजार बाहों वाली', पृ.– 48
47. वहीं।
48. नागार्जुन, 'तुमने कहा था', पृ.– 81
49. नागार्जुन, 'तुमने कहा था', पृ.– 81
50. वही, 'हजार–हजार बाहों वाली', पृ.–118
51. वही, 'हजार–हजार बाहों वाली', पृ.–42
52. नागार्जुन, 'चक्रवाल', पृ.– 69
53. डॉ0 रतन, 'नागार्जुन की काव्य यात्रा, पृ.– 130
54. नागार्जुन, 'पक्षधर'।
55. 'हंस', जून 1949
56. नागार्जुन, 'प्यासी पथराई ऑखें', पृ.– 36
57. वही, पृ.– 37
58. नागार्जुन, 'तुमने कहा था', पृ.– 18
59. वही, 'हजार–हजार बाहों वाली' पृ.– 149
60. वही, पृ.– 82
61. वही, 'खिचड़ी विप्लव', पृ.– 10
62. अजय तिवारी, 'नागार्जुन की कविता', पृ.– 70
63. अंचल, 'प्राथमिका', पृ.– 80
64. वही, 'आधुनिक कवि', पृ.– 32–33
65. नागार्जुन 'ताप से तपे हुए दिन', पृ.– 22
66. नागार्जुन, 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने', पृ.– 9
67. वही, 'प्यासी पथराई ऑखें, पृ.– 64
68. नागार्जुन, 'कब होगी इनकी दीवाली।'
69. नागार्जुन, 'पाषाणी'
70. डॉ0 तनूजा तिवारी, प्रगतिशील कविता में सौन्दर्य चिन्तन, पृ.– 45
71. हरिचरण वर्मा, 'सं0 नये प्रतिनिधि कवि', पृ.– 31
72. नागार्जुन 'त्रिमूर्ति', पृ.– 32
73. वही

अध्याय–7

नागार्जुन एक आलोचनात्मक विश्लेषण: कवि बनाम उपन्यासकार

सामान्यतः नागार्जुन को हिन्दी का महत्वपूर्ण कवि माना जाता है, उपन्यासकार नहीं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो, हिन्दी जगत् में एक कवि के रूप में नागार्जुन को जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त हैं, वैसी प्रतिष्ठा एक उपन्यासकार के रूप में नहीं। विधिवत समीक्षा एवं आलोचना की दृष्टि से भी उनका कथा- साहित्य अलग उपेक्षित रहा है। विडम्बना तो यह है कि उनके कवि रूप के समर्थ आलोचकों ने भी अनेक उपन्यासों की कोई खास नोटिस लेने की जरूरत नही समझी। यह अनायाश नहीं है कि कुछ छुटपुट लेखों और शोध-प्रबन्धों को छोड़कर उनके उपन्यासों पर कुछ खास नहीं लिखा गया हैं, जो थोड़ा बहुत लिखा भी गया है वह प्रमाणिकता और महत्व की दृष्टि से अत्यंत साधारण कोटि का है। समीक्षा जगत् की विंडबना यह भी है कि वह किसी रचनाकार का संपूर्ण मूल्यांकन करने के बजाए ठप्पा लगाता है। इस ठप्पा के शिकार नागार्जुन भी रहे हैं। एक बार जब समीझा जगत् ने उन्हें जनकवि के रूप में मानता दे दी तो फिर उनके उपन्यासकार के मूल्यांकन की कोई जरूरत ही नहीं समझी गयी, या समझी भी गयी तो बहुत सीमित अर्थों में। ऐसा नही है कि सिर्फ नागार्जुन इस समीझा पद्धति के शिकार हुए हैं। निराला सहित अनेक रचनाकार इस समीक्षा पद्धति के शिकार होने वालो में हैं, जिनका कवि रूप तो बहुत चर्चित हुआ लेकिन कथाकार रूप प्रायः उपेक्षित रहा। इस दृष्टि से अज्ञेय सौभाग्यशाली रहे जिन्हें समीक्षा जगत् ने कवि और कथाकार दोनों रूपों में समान रूप से प्रतिष्ठित किया। अज्ञेय जैसे कुछ-एक रचनाकारों को छोड़कर शेष अधिकांश रचनाकारों का कवि रूप जहां समीक्षा की दृष्टि से प्रतिष्ठित हुआ, वहीं गद्यकार रूप प्रायः उपेक्षित रहा।

यदि समीक्षा की दृष्टि से नागार्जुन का उपन्यासकार लगभग उपेक्षित रहा तो इनके कारणों की खोज आवश्यक है। क्यों उन्हें कवि के रूप में जैसी ख्याति मिली, वैसी उपन्यास कार के रूप में नहीं? क्या उनके उपन्यासकार को उपेक्षित रखने का सारा दोष समीक्षा जगत् को जाता है? अथवा अपने उपन्यासकार के प्रति लापरवाही के कारण नागार्जुन स्वयं इसके लिए दोषी है? इन सवालों पर विचार करते हुए अक्सर ऐसा लगात है कि नागार्जुन के उपन्यासकार को अपेक्षित ख्याति न मिलने के लिए जितनी समीक्षा जगत दोषी है, स्वयं लेखक भी उससे कम दोषी नहीं है। कारण की स्वयं नागार्जुन यायावर वृति के कारण उपन्यास –लेखन के प्रति कभी भी गंभीर नहीं रहे। उपन्यासों के प्रति उनकी उदासीनता अथवा लापरवाही का सबसे बड़ा प्रमाण है, उनके उपन्यासों की शिल्पगत कमजोरियाँ जिन्हें लेखक अपनी थोड़ी सी लेखकीय गंभीरता और तन्मयता से दूर कर सकता था। सवाल यह है कि उपन्यास लेखन के प्रति लेखक की लापरवाही अथवा उदासीनता का मूल कारण क्या है? क्या उपन्यास लेखन उनका प्रकृत पथ नहीं है अथवा उनमें उपन्यास लेखन की क्षमता का अभाव है? पहले सवाल पर चर्चा आगे होगी, फिलहाल यह विचारणीय है कि क्या सचमुच उनमें क्षमता का अभाव है। नागार्जुन में क्षमता का अभाव है, या उन्होने उपन्यास किसी मजबूरी में लिखा, यह मान लेना निश्चित तौर से नागार्जुन के उपन्यासकार के साथ अन्याय करना होगा। 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा' और 'वरूण के बेटे' जैसे उपन्यासों को पढ़कर कोई बुद्धिजीवी उनकी कथा–लेखन की क्षमता पर प्रश्न चिन्ह लगा सकता है? यदि ऐसा होता तो नागार्जुन के उपन्यासकार की संभावना और क्षमता के कायल हिन्दी के समर्थ आलोचक डा0 राम विलास शर्मा उन्हें 'हिन्दी का यशस्वी उपन्यासकार' नहीं मानते। डा0 शर्मा ने नागार्जुन की औपन्यासिक क्षमता को पहचानते हुए उन्हें जहाँ उन्हें अपनी पुस्तक 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' समर्पित किया, वही उन्हे प्रेमचन्द्र की परंपरा से भी जोड़ा है। उन्होने लिखा है कि नागार्जुन, अमृत लाल नागर, राजेन्द्र यादव आदि की कृतियां उसी स्वस्थ मार्ग पर हिन्दी कथा साहित्य को बढ़ा रही हैं। जिसका निर्माण प्रेमचन्द्र ने किया था। ये सभी

लेखक समाज में फैली हुयी विभत्सता को उघाड़ कर पाठक को तिलमिला देते हैं, साथ ही अपने-अपने ढंग से मानव-जीवन मे आस्था भी उत्पन्न करते हैं।' नागार्जुन के महत्व का रेखांकन इस बात से होता है कि प्रेमचन्द्र की परंपरा से जिन लोगों को डा0 रामविलास शर्मा ने जोड़ा है, उनमें सर्वाधिक अग्रणी नाम नागार्जुन का है। नागार्जुन की औपन्यासिक क्षमता की पहचान और उनके महत्व का रेखांकन करने वाले आलोचकों में डा0 शिव कुमार मिश्र और मैनेजर पाण्डेय जैसे आलोचक भी हैं, जिन्होंने उन्हे प्रेमचन्द्र की परंपरा से जोड़ कर देखा है, और उन्हे किसानों, दलितों और स्त्रियों का समर्थक कहा है। कहने का तात्पर्य है कि नागार्जुन के यशस्वी उपन्यासकार की जो आरम्भिक पहचान डा0 रामविलास शर्मा ने की थी, वह बाद के दिनों में भी आलोचकों के बीच कायम रही। अभी कुछ दिनों पहले प्रकाशित 'उद्भावना' के नागार्जुन विशेषांक में डा0 कुँवर पाल सिंह ने भी इन्ही आलोचकों की भाँति इन्हे प्रेमचन्द्र की परंपरा से जोड़ते हुए उनके महत्व का रेखांकन इस प्रकार किया है – 'वे (नागार्जुन) हिन्दी के उन यथार्थवादी उपन्यासकारों में है जो भारतीय समाज का पर्त दर पर्त उद्घाटन करते हैं। उनकी चिन्ता प्रेमचन्द्र की तरह साधारण जन की मुक्ति है। उनका विचार है कि आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्धों के बिना सामाजिक परिवर्तन संभव नही है।.... उनका लेखन सामाजिक परिवर्तनों का एक सशक्त माध्यम है।.... उनका साहित्य यथार्थवादी चिन्तन की सशक्त परंपरा का विस्तार और विकास करता है।' उपर्युक्त आलोचको की राय जानकर और नागार्जुन के उपन्यासों को पढ़कर सहज ही स्वीकार किया जा सकता है कि नागार्जुन में क्षमता का अभाव नहीं था उनमें उपन्यास लेखन की क्षमता बहुत थी। सवाल यह है कि यदि नागार्जुन के अंदर उपन्यास लेखन की क्षमता थी तो क्यों नहीं उनके उपन्यास हिन्दी में गोदान, मैला आंचल आदि उपन्यासों की तरह महत्व पा सके? इसका जवाब हो सकता है कि शिल्प के स्तर पर कमजोर होने के कारण उनके उपन्यास हिन्दी में उतना महत्व नहीं पा सके जितना महत्व उन्हें मिलना चाहिए था। फिर सवाल यह है कि नागार्जुन के उपन्यास शिल्प की दृष्टि से कमजोर हैं तो क्या यह मान लिया जाए

कि उपन्यास लेखन उनका 'प्रकृति–पथ' नहीं है। जैसा कि विजय मोहन सिंह का मानना है–'संभवतः उपन्यासलेखन नागार्जुन का 'प्रकृति पथ' या विधा नही है। और यह भी की वे स्वयं उपन्यास – लेखन को बहुत गंभीरता से लेते हुए नहीं प्रतीत होते।' जहां तक उपन्यास लेखन को गंभीरता से लेने की बात है तो निश्चित तौर से वे उस विधा के प्रति अधिक गंभीर नहीं हैं, जिसका एक मात्र कारण है कि यह विधा उनकी यायावर वृति के सर्वथा प्रतिकूल थी। यदि कविता लिखना नागार्जुन की पहली पसंद है, तो उसका भी कारण यही है कि यह विधा उनकी यायावर वृति के अनुकूल है। क्यों गद्य (कथा साहित्य) को छोड़कर उन्हें पद्य लेखन करना पड़ा इस संबंध में नागार्जुन ने कहा है– 'पद्य टेक्निकल सुविधा है गद्य में जम कर, बैठकर लिखना होता है, जबकि कविता में ऐसा नही है।' नागार्जुन के कथन से स्पष्ट है कि उपन्यास लेखन में जम कर और बैठकर लिखने की जो अपेक्षा होती है वह उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं है। इसलिए उन्होने काव्य लेखन का रास्ता चुन लिया। इस कथन से इस सवाल का भी जवाब मिल जाता है कि क्यों उनके उपन्यास लेखन में तन्मयता और गंभीरता का अभाव है और क्यों उनमें जल्दी–जल्दी कह जाने की हड़बड़ी दिखती है। यही उनकी उपन्यासों की शिल्प गत सिमाओं का भी कारण रहा है।

सवाल अब भी सामने है कि क्या उपन्यास लिखना नागार्जुन का प्रकृति पथ नही था? यदि कविता लिखना ही नागार्जुन का प्रकृति पथ मान लिया जाए तो सवाल यह उठता है कि नागार्जुन ने उपन्यास लिखा ही क्यों? किसी मजबूरी में उन्होंने उपन्यास लिखा या उस संवेदना को रचनात्मक अभिव्यक्ति देने के लिए, जिसे उन्होने एक कथाकार की हैसियत से अपने समय और समाज से अर्जित किया था? इस सवाल का स्वयं नागार्जुन के पास कोई स्पष्ट जवाब नहीं है। किन कारणों से वे काव्य लेखन छोड़कर उपन्यास के क्षेत्र में आये इस संबंध में उनकी दो राय है। फिलहाल पहली राय की चर्चा होगी उनकी राय है कि आर्थिक आवश्यकताओं ने उन्हें गद्य (कथा–साहित्य) लिखने पर मजबूर कर दिया। वे कहते हैं–'लगा खाली कविता लिखने से काम नहीं

चलेगा दूध वाले का पेमेन्ट कविता से नहीं होता।' अन्यत्र, 'कवि और कथाकार के संदर्भ में तो यह सच है कि मेरा कवि पक्ष ही ज्यादा सबल रहा। मैने बहुत जल्दी यह डिसाइड कर लिया था की अगर चार पैसा कमाना है तो गद्य का सहारा लेना होगा।' यह सच है कि नागार्जुन के जीवन का अधिकांश हिस्सा आर्थिक मोर्चे पर संघर्ष करते हुए व्यतीत हुआ । वे अजीवन आर्थिक समस्याओं से जूझते रहे, और उनका लेखन भी एक सीमा तक आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के लिए हुआ। उन्होनें जो अनुवाद किया, बाल साहित्य लिखा, सम्पादन किया या कथा–साहित्य लिखा उसके पीछे अर्थोपार्जन भी एक उद्देश्य था। यह सच है कि आर्थिक जरूरतों का एक अंश पूरा करने के लिए नागार्जुन ने कथा साहित्य लिखा। लेकिन यह स्वीकार करना बहुत कठिन है कि मात्र आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्होंने संपूर्ण कथा साहित्य लिखा। नागार्जुन जैसे प्रगतिशील लेखक के संबंध में, जिसका सम्पूर्ण कथा साहित्य किसानों, मजदूरों, स्त्रियों और शोषित,– पीड़ितों की आवाजों को व्यक्त करता है, ऐसा मानना नागार्जुन के साथ अन्याय करना होगा। यदि मजबूरी में यह मान लिया जाए कि मात्र आर्थिक जरूरतों की वजह से उनका उपन्यास साहित्य लिखा गया तो सवाल यह पैदा होता है कि यदि नागार्जुन आर्थिक अभावों में नहीं होते तो क्या उनके उपन्यास भी नहीं लिखें गये होते? या लिख भी गये होते तो कविता के रूप में क्यों कि कविता करना उनका प्रकृत पथ है। यदि ऐसा होता तो 'रति नाथ की चाची', 'बलचनमा' और 'वरूण के बेटे' जैसे उपन्यासों की रचना नहीं हुई होती । फिर इस स्थिति में उस लेखकीय संवेदना का क्या होता? जिसे नागार्जुन ने एक उपन्यासकार के रूप में अपने समय और समाज से अर्जित किया था। इस संवेदना को न तो एक कवि अर्जित कर सकता था। और न ही इसे कविता में अभिव्यक्त किया जा सकता था। नागार्जुन का 'प्रकृत–पथ' उपन्यास लेखन था इसलिए उन्होने समाज के भीतर से ऐसी संवेदना अर्जित की थी। नागार्जुन एक संवेदनशील उपन्यासकार हैं, यही कारण है कि वे आस–पास की दुनिया की हलचलों से कभी भी बेखबर नही रहे। उन्होनें आस–पास के समाज और परिवेश के जीवन और

उसकी विसंगतियों को एक उपन्यासकार की हैसियत से देखा है और उन्हें अपने उपन्यासों में व्यक्त किया है। नागार्जुन की वे वर्तमान स्थितियां– जिनके बोध में कुछ लिखने के लिए उद्वेलित किया, बहुत हद तक उनके उपन्यास लेखन के जिम्मेदार हैं न कि आर्थिक जरूरत। राल्फ फाक्स ने उपन्यासकार की गहरी संवेदनशीलता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'क्या कोई उपन्यासकार इस दुनिया की समस्याओं से , जिसमें कि वह रहता है, बेखबर रह सकता है? क्या वह युद्ध की तैयारियों के शोर–शराबे की ओर से अपना कान बन्द कर सकता है? क्या वह अपने देश की स्थिति की ओर से अपनी आंखें मूंद सकता है? क्या वह उस समय अपना मुंह बन्द रख सकता है, जबकि चारों ओर विभीषिका मंडरा रही हो और व्यक्तिगत लालसा को अक्षुण्ण रखने के लिए वचनबद्ध राज्य के नाम पर जीवन को दो जून रोटियों से भी वंचित किया जा रहा हो? राल्फ फाक्स ने जिन सवालों को उठाकर उपन्यासकार की संवेदनशीलता का रेखांकन किया है, वे निश्चय ही उपन्यासकार को मथने वाले होते हैं। उपन्यासकार स्वाभाविक रूप से अपने समय और समाज के सवालों से टकराता है। वह इन सवालों से बच कर उपन्यासकार नहीं रहा सकता है।

उपर्युक्त बातों से निष्कर्ष निकालता है कि नागार्जुन का उपन्यासकार उनका 'प्रकृत पथ' था। उन्होनें उपन्यास समाज और परिवेश की वर्तमान विंसगतियों से उद्वेलित होकर, वर्तमान सवालों से टकराकर लिखा न कि आर्थिक जरूरतों को पूरा करने के उद्देश्य मात्र से । लेकिन ऐसा मान लेने से नागार्जुन के उस वक्तव्य का क्या होगा जिसमें उन्होंने स्वीकार किया है कि उनका गद्य लेखन (कथा साहित्य) आर्थिक जरूरतों की पूर्ति के उद्देश्य से हुआ है। यहां उल्लेखनीय है कि कई बार लेखकीय वक्त्व्य तात्कालिक परिस्थितियों की उपज होते हैं। इसलिए वे वास्तविक लेखकीय अभिप्राय को जानने के लिए बहुत विश्वसनीय और प्रामाणिक नहीं होते हैं। लेखकीय अभिप्राय को जाने के लिए लेखक के तात्कालिक वक्तव्यों पर विश्वास करने से बेहतर होगा कि उसकी रचनाओं पर भरोसा किया जाए। लेखकीय अभिप्राय को जानने का

सबसे विश्वसनीय और प्रमाणिक श्रोत लेखक की रचना होता है, जिनमें लेखक के समूचे विचार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से विद्यमान होते हैं। इस संबंध में लेखक की रचनाओं पर भरोसा करना इसलिए भी उपयुक्त होता है कि इनमें लेखक के वे विचार भी जाने-अनजाने व्यक्त हो जाते हैं जो उसके अवचेतन में होते हैं। शमशेर ने सही लिखा है-

'बात बोलेगी,
हम नहीं।
भेद खोलेगी
बात ही।

आशय यह है कि लेखक के मूल अभिप्राय को जानने के लिए उसकी बात ही अर्थात रचनाओं पर भरोसा करना सर्वथा उचित होगा। इस दृष्टि से नागार्जुन के अभिप्राय की जानकारी उनकी रचनाओं से प्राप्त की जा सकती है। नागार्जुन के उपन्यास जिस अभिप्राय में लिखे गये हैं, वे स्वयं उसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। नागार्जुन का पहला उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' है, जो उनके अपने घर कहानी को आधार बनाकर लिखा गया हैं तात्पर्य यह है कि नागार्जुन ने अपने समाज और घर के परिवेश में जो कुछ देखा था- एक उपन्यासकार की दृष्टि से, वह उन्हें उद्वेलित करने वाला था। उनहोंने इस उपन्यास में ब्राहमण समाज की जिस सांमती मानसिकता और रूढ़ियों की पोल खोली है, वह उनकी वर्तमान परिस्थितियों से असंतुष्ट और इसके प्रति मुखर प्रतिरोध का द्योतक है। जाहिर है कि एक उपन्यासकार अपनी वर्तमान परिस्थितियों से असन्तुष्ट होकर अपनी आखें नहीं बन्द कर लेता है, बल्कि वह उनका मुखर विरोध करता है और इसी प्रकिया में उसकी रचना भी उपजती है।

नागार्जुन के उपन्यासों में वर्तमान जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं के प्रति जो चिन्ता और समतापरक भविष्य की आकाक्षा व्यक्त हुई है, वह इसका प्रमाण है कि उन जैसे लेखकों का कथा-साहित्य मात्र आर्थिक जरूरतों की पूर्ति के लिए नहीं लिखा

जाता है। 'रतिनाथ की चाची' की भांति 'बलचनमा' के बारे में उन्होनें स्वीकार किया है कि इसकी कथा उनके गांव के एक निम्नवर्गीय भूमिहीन किसान के जीवन पर आधारित है। अन्य उपन्यासों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि इनके कथानक का आधार उनका देखा या भोगा हुआ यथार्थ है या फिर अपने मित्रों द्वारा सुनाया गया यथार्थ । उन्होनें यह भी स्वीकार किया है कि कोई सुनी हुई अथवा देखी हुई घटना उनके मस्तिष्क में तब तक अंकित रहती है, जब तक कि वह रचना के रूप में अभिव्यक्ति नहीं पा लेती। आशय यह है कि कथा–लेखन नागार्जुन के उपन्यासकार व्यक्तित्व की मजबूरी थी, न कि कोई आर्थिक मजबूरी। वैसे भी, यदि नागार्जुन के कथा–लेखन का उद्देश्य मात्र अर्थोपार्जन होता तो अपने लेखन और जीवन में सत्ता और प्रतिकियावादी ताकतों के वे इतने प्रबल विरोधी नहीं होते। क्योंकि सत्ता और प्रतिकियावादी लोगों से हाथ मिला कर वे मनचाहा अर्थोपार्जन कर सकते थे। लेकिन उनहोंने ऐसा नहीं किया, वे आजीवन सत्ता और प्रतिकियावादियों का विरोध करते रहे और इसके लिए उन्हें कीमत भी चुकानी पड़ी । वस्तुतः वे सबसे अधिक महत्व लेखकीय ईमानदारी को देते थे, इसीलिए उन्होनें कभी भी प्रतिकियावादी ताकतों से समझौता नहीं किया। वे आर्थिक गरीबी की शर्त पर भी आजीवन इन ताकतों से संघर्ष करते रहे हैं। जाहिर है कि अर्थोपार्जन उनके कथा–लेखन का मुख्य उद्देश्य नहीं था। उन्होनें कहा है कि गद्य'......विचारों को व्यक्त करने के लिए अपनाई गई विधा है। 'यह कथा लेखन के सम्बन्ध में नागार्जुन की दूसरी राय है, जो पहली से भिन्न और उचित भी है। नागार्जुन ने इसीलिए उपन्यास लेखन अथवा गद्य लेखन को अपनाया क्योंकि इस विद्या में अपने विचारों को, जीवन और जगत के व्यापक अनुभवों को सहजता से व्यक्त किया जा सकता है। ध्यातव्य है कि निराला ने गद्य को 'जीवन–संग्राम की भाषा' कहा था। उनके ऐसा कहने का आशय संभवतः यही था कि विधागत विशिष्ठता के कारण गद्य में संश्लिष्ट विचारों को जितनी सरलता और सहजता के साथ व्यक्त किया जा सकता है, उतनी सहजता सरलता से पद्य में नहीं। स्वयं नागार्जुन का उपन्यास साहित्य इसका प्रमाण है कि इसके भीतर लेखक

के संश्लिष्ट विचार और अनुभूतियां जिस सहजता से व्यक्त हुई हैं। वह पद्य में संभव नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि उपन्यास लेखन नागार्जुन का प्रकृत पथ है। उसे उन्होंने किसी मजबूरीवश, खास तौर से आर्थिक मजबूरीवश नहीं अपनाया है। यदि उपन्यास लिखना उनकी मजबूरी है तो इसके पीछे संश्लिष्ट विचारो और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की बेचैनी है, जिसे नागार्जुन ने बतौर उपन्यासकार महसूस किया था।

उपसंहार

हिन्दी में लोक भाषा और लोक साहित्य के महत्व और अध्ययन की और विद्वानों का ध्यान वर्तमान शताव्दी में आकर्षित हुए। हलांकि युरोप और अमरीका में उन्नीसवीं शताब्दी से ही इस पर कार्य हो रहा है और इस क्षेत्र में पश्चिमी देशों में बहुत महत्वपूर्ण कार्य हुआ हैं।

लोक जीवन से तात्पर्य है जन–जीवन यानी सामान्य जनता का जीवन। इनके उपर लिखा गया साहित्य लोक साहित्य है। लोक साहित्य की परम्परा कदाचित् उतनी ही पुरानी है जितनी पुरानी मनुष्य जाति।

अपने देश में हिन्दी में इस कार्य का क्रमबद्ध प्रारम्भ पं0 रामनरेश त्रिपाठी के ग्राम–गीतों के संकलन और प्रकाशन से हुआ। हिन्दी प्रदेश की एक भाषा, ब्रज भाषा, के लोक साहित्य का प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन डा0 सत्येन्द्र ने उपस्थित किया था। इसके बाद तो इस क्षेत्र के कार्य में काफी प्रगति हुई। अनेक विद्वानों ने इस विद्या पर अपनी कलम चलाई, जिनमें नागार्जुन निःसन्देह सर्वमान्य महत्वपूर्ण लेखक हैं।

साहित्य के प्रमुख विधा उपन्यास और काव्य में नागार्जुन का अपना अप्रतिम महत्व है। उपन्यास के बारे में कहा जाता है कि–

उपन्यास अपनी प्रकृति में सर्वाधिक युग–सापेक्ष विधा है। उसका स्वभाव ही ऐसा है कि ये युग की हलचलों से वह अपने का निरपेक्ष नहीं रख सकता। उपन्यास अपने उदय के अरंभिक काल से ही अपने समाज और परिवेश की सभी प्रमुख घटनाओं को चित्रित करने में पूरी तरह सफल रहा है। इस सन्दर्भ में हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियां निश्चित रूप से सराहनीय है। इसने जिस संवेदना के साथ अपने समाज और परिवेश की

सभी प्रमुख घटनाओं को चित्रित किया है, वह इसकी गहरी युग–सापेक्षता का प्रमाण है। हिन्दी उपन्यास का इतिहास लगभग सौ साल पुराना है और सुखद तथ्य यह है कि इस कालखण्ड की सभी प्रमुख घटनाओं को चित्रित करने में वह पूरी तरह सफल रहा है। महान् साहित्य, विशेषकर उपन्यास, अपने युगीन संदर्भों से ही नहीं, युग–युग के प्रमुख संदर्भों से भी गहरे रूप में प्रभावित होता है। इस दृष्टि से हिन्दी उपन्यास–साहित्य की महानता निर्विवाद है, क्योंकि उसने अपने युगीन संदर्भों को चित्रित करने के अलावा पीछे के उन प्रमुख संदर्भों को भी चित्रित किया है जिनकी प्रासंगिकता युग–विशेष की सीमाओं से परे है।

उपर्युक्त कथन की प्रामाणिकता की जांच हिन्दी उपन्यास के ऐतिहासिक विकास–क्रम के संदर्भ में की जा सकती है। आम तौर से लाला श्री निवास दास के 'परीक्षा गुरू' को हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। हिन्दी का यह पहला उपन्यास ही अपनी युगीन परिस्थितियों से कितना प्रभावित है, इसका बोध इसे पढ़कर ही हो जाता है। इसमें चित्रित नवजागरण कालीन प्रवृत्तियां तत्कालीन परिस्थितियों कि उपज है। हिन्दी के इस आंरभिक उपन्यास ने अपने समय की वास्तविकता को जिस संवेदना से चित्रित किया, उसका प्रवाह आगे भी बना रहा। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचन्द के आगमन ने इस प्रवाह को और अधिक विकास और विस्तार दिया। उनके अपन्यासों में चित्रित समाज और परिवेश तत्कालीन भारत की ऐतिहासिक परिस्थितियों कि वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करता है। उनके यहां साम्राज्यवाद, सामन्तवाद का अत्याचार, शोषण और उसमें पिसते हुये किसान–जीवन का जो आख्यान प्रस्तुत हुआ है, वह प्रेमचन्द्र के समय की वास्तविकता है। प्रेमचन्द के बाद के उपन्यासकारों के यहां भी गहरा युग–बोध मौजूद है। चाहे मनोवैज्ञानिक उपन्यास लेखकों की परम्परा हो, सामाजिक यर्थाथवादी उपन्यास लेखकों की अथवा ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों की, सभी के यहां अपने समय के प्रमुख सन्दर्भ मौजूद हैं – कही तीखे रूप में तो कही हलके रूप में। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास लेखन का परिदृश्य कई अर्थों में पहले से भिन्न

है। इस समय उपन्यास के क्षेत्र में मुस्लिम, महिला और दलित लेखकों की सक्रिय उपस्थिति के कारण जहां समाज और परिवेश के नये-नये संदर्भों को लेखन में महत्व मिला है, वहीं युग की सच्चाईयों को देखने की दृष्टि भी बदली है। उपन्यास साहित्य में महिला और दलित समाज पर पहले से ही लिखा जाता रहा है- भले ही, गैर महिला और गैर दलित लेखकों द्वारा। इस दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों में मुस्लिम समाज की उपस्थिति निश्चय ही नई, किन्तु महत्वपूर्ण घटना है। क्योंकि इससे पहले प्रेमचंद को छोड़कर किसी भी उपन्यासकार के यहां मुस्लिम समाज अपने सुख-दुख और आशाओं-आकांक्षाओं के साथ उपस्थित नहीं हुआ है। संपूर्ण उपन्यास साहित्य में मुस्लिम समाज की अनुपस्थिति एक दुखद घटना है। इसलिए, मुस्लिम लेखकों के आगमनके बाद हिन्दी उपन्यास में मुस्लिम समाज की जो उपस्थिति दर्ज हुई है, वह निश्चय ही सराहनीय है। उपर्युक्त विवेचन-विश्लेषण से निष्कर्ष निकलता है कि हिन्दी उपन्यास समय के जिस प्रवाह में गतिशील रहा है, वह उसके प्रमुख सन्दर्भों को भी चित्रित करता रहा है।

समय और परिवेश के प्रमुख सन्दर्भों को अपने उपन्यासों में चित्रित करने वालों में नागार्जुन महत्वपूर्ण हैं। उनके उपन्यासों में तत्कालीन भारत की प्रमुख स्थितियों और घटनाओं की यथार्थ तस्वीर प्रस्तुत हुई हैं। उनके उपन्यासों की प्रमुख विशेषता यह है कि वे युग की स्थूल घटनाओं की सिर्फ फेहरिस्त ही नहीं प्रस्तुत करते, बल्कि युगीन घटानाओं से जनता पर पड़ने वाले प्रभाव और उसकी मानसिक हलचलों को भी अभिव्यक्त करते हैं। नागार्जुन के उपन्यासों में अभिव्यक्त कालखण्ड आजादी के पूर्व से लेकर आजादी के बाद तक फैला हुआ है। आश्चर्यजनक लगता है कि इस लम्बे कालखण्ड का कोई प्रमुख संदर्भ नागार्जुन की पैनी नजर से बच नहीं पाया है। उनके उपन्यासों में इस काल की सभी आंतरिक और बाह्य हलचलें अपनी समग्रता में मौजूद हैं।

नागार्जुन के 'बलचनमा' और 'रतिनाथ की चाची' उपन्यासों में जहां आजादी से पूर्व के भारतीय समाज और परिवेश की अन्तः अंथवा वाह्य हलचलों को व्यक्त किया गया है, वही 'वरूण के वेटे' में आजादी के बाद की हलचलों को।

नागार्जुन के उपन्यासों का अपने समय की राजनीति से गहरा सरोकार है। 'बलचनमा' में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन (विशेषकर तीस के दशक और उसके बाद का) और उस दौर के विभिन्न राजनैतिक सन्दर्भों पर गंभीर विमर्श प्रस्तुत हुआ हैं। इस उपन्यास में भारतीय जनमानस और भारतीय राजनीति पर गांधी जी के व्यापक प्रभाव तथा स्वाधीनता की लड़ाई में गांधी जी और कांग्रेस की भूमिका का रेखांकन किया गया है। यहां उल्लेखनीय है की गांधी जी और गांधीवादिओं के प्रति नागार्जुन की दृष्टि आलोचनात्मक रही है। यही कारण है कि उनके यहां जो गांधीवादी (कांग्रेसी) चरित्र चित्रित हुये हैं, वे भ्रष्ट, बेइमान और दो मुहें चरित्र वाले हैं। या फिर, जो इमानदार और सद्चरित्र कांग्रेसी हैं उनकी परिणति कांग्रेस से पलायन में दिखाई गयी हैं। कांग्रेस के प्रति नागार्जुन की आलोचनात्मक दृष्टि का कारण उनका वामपंथी होना है। यह महज संयोग नहीं है कि 'बलचनमा' के राधाबाबू के समाजवादी हो जाने पर बलचनमा के मन में, प्रकारान्तर से लेखक के मन में राधा बाबू के प्रति 'सर्धा' उत्पन्न हो जाती है। इस उपन्यास में समाजवादियों के प्रति जो सहानुभूति व्यक्त की गयी है, या समाजवादी चरित्रों की जो ईमानदार कर्मठ और संघर्षशील छवि रची गयी है, उसके पीछे भी नागार्जुन की वामपंथी दृष्टि की महत्वपूर्ण भूमिका है। 'रतिनाथ की चाची' में यूगीन राजनीति और उससे जुड़े विभिन्न संदर्भों पर अपेक्षाकृत कम चर्चा हुयी है। इस उपन्यास में राजनीति का जो वैचारिक विमर्श प्रस्तुत हुआ है, उसका स्वर भी कुल मिला 'बलचनमा' की भांति गांधीवादी और कांग्रेस विरोधी है। गांधीवाद का विरोध करते हुए भी नागार्जुन यहां गांधीवाद से खासतौर से गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम से, प्रभावित लगते हैं। इस उपन्यास की नायिका गौरी (चाची) स्वावलंबी होने के लिए चरखा चलाती है, वह अपने निजी जीवन में भी एक हद तक गांधीवादी मूल्यों से प्रभावित लगती है।

आजादी के बाद की परिवर्तित भारतीय राजनीति और उससे जुड़े विभिन्न संदर्भों की यथार्थ तस्वीर 'वरूण के बेटे' उपन्यास में प्रस्तुत हुयी है। कांग्रेस और कांग्रेसियों का भ्रष्ट और अनैतिक चरित्र यहां भी दिखाया गया है। यहां तक आते-आते लेखक की प्रतिबद्धता समाजवादियों से साम्यवादियों की ओर परिवर्तित हो जाती है। इस उपन्यास के मोहन मांझी का साम्यवादी होना और इस पात्र के प्रति लेखक की गहरी सहानुभूति नागार्जुन की साम्यवाद में गहरी आस्था होने का परिणाम और प्रमाण दोनों है। इस उपन्यास में व्यक्त राजनीतिक विर्मश इसलिए भिन्न है कि 'बलचनमा' और 'रतिनाथ की चाची' में जहां राजनीति में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी नहीं दिखाई देती है, वहीं इसमें राजनीति में महिलाओं को सक्रिय भागीदारी करते हुए दिखाया गया है। दरअसल यह अन्तर एक युग का अन्तर है, जिसके कारण 'वरूण के बेटे' में राजनीति में महिलाओं की बढ़ती हुयी सक्रिय भागीदारी का रेखांकन किया गया है। इस उपन्यास की मधुरी आजादी के बाद की स्त्री है, जिसमें सामाजिक और राजनीति क्षेत्र में सक्रिय हिस्सेदारी करने की गहरी चेतना मौजूद है।

नागार्जुन के उपन्यासों में जहां गांधीवादी और कांग्रेसी चरित्र का गंभीर विर्मश प्रस्तुत हुआ है, वहीं यूगीन किसान आन्दोलन, विशेषकर बिहार के किसान आन्दोलन की भी विस्तार से चर्चा हुई है। यहां भी लेखक का दृष्टिकोण गान्धीवाद और कांग्रेस के प्रति बहुत तीक्ष्ण रहा है। नागार्जुन का किसान जीवन, किसान आन्दोलन विशेष कर बिहार के किसान आन्दोलन से गहरा सम्बन्ध रहा है। यह अनायाश नहीं है कि उनके सभी उपन्यासों में यहां तक कि 'रतिनाथ की चाची' में भी-जो ठेठ स्त्री- जीवन की बिडम्बना का आख्यान है- किसान आन्दोलन गहरे अर्थों मे विद्यमान है। उनके 'बलचनमा' उपन्यास में स्वामी सहजानंद के नेतृत्व में चलने वाले बिहार किसान आन्दोलन-जिसमें स्वयं नागार्जुन सक्रिय रूप से भागीदार थे- को व्यापक रचनात्मक अभिव्यक्ति दी गयी है। इसमें दिखलाया गया है कि किस तरह उस युग में किसान साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के अत्याचार एंव शोषण के चक्की में पिस रहे थे तथा

इससे मुक्ति के लिए संघर्ष भी कर रहे थे। यहां आकर किसान 'मजूर' बन जाता है। वह गोदान के होरी की तरह 'मजूर' बनने की प्रक्रिया में नहीं है, बल्कि 'बलचनमा' की तरह विधिवत 'बेगार' अर्थाथ 'मजदूर' बन चुका है। बेदखली और भंयकर लगान की उगाही के कारण यहां बलचनमा जैसे किसान अपनी भूमि से हाथ धोकर बेकारी करने पर मजबूर है। परन्तु 'बलचनमा' के किसान इस अर्थ में 'गोदान' के किसान से भिन्न है कि वे संघर्ष की चेतना से लैस हैं। उन्हें अपनी पराधीनता का बोध है। इस पराधीनता को वे अपनी नियति नहीं मान लेते, बल्कि इसके खिलाफ विद्रोह करते है– मुखर विद्रोह। बलचनमा के किसान अपने अधिकारों की लड़ाई लड़ते हैं। इस लड़ाई में जंहा समाजवादी नेता किसानों का साथ देते हैं, वहीं कांग्रेसी या तो तटस्थ रहते हैं या अन्दर ही अन्दर जमींदारों और उनके साथियों का समर्थन करते हैं। स्वामी सहजानंद सरस्वती का हवाला देकर नागार्जुन यह बतलाते हैं कि कांग्रेस पर जमींदारों का वर्चस्व है, इसलिए स्वाभाविक रूप से यह पार्टी जमींदारों की समर्थक और किसानों की विरोधी है। 'रतिनाथ की चाची' में नागार्जुन ने कांग्रेस के किसान विरोधी चरित्र का उद्‌घाटन किया है। इस उपन्यास में उन्होनें 1937 में कांग्रेसी मंत्रीमण्डल का गठन का ज़िक्र करते हुए बताया है कि इसका चरित्र भी जमींदार समर्थक और किसान विरोधी था। इसका कारण है। उन्होंने यह माना कि यह सरकार जमींदारी उन्मूलन करने में असफल रही है। यंहा विचारणीय तथ्य है कि कुछ वैधानिक और व्यवहारिक कठिनाईयों के कारण ज़मींदारी उन्मूलन का फैसला लेना कांग्रेसी मंत्रीमण्डल के अधिकार क्षेत्र से बाहर था। 'बलचनमा' और 'रतिनाथ की चाची' में जहां स्वाधिनता–पूर्व के किसान जीवन और किसान आन्दोलन का चित्रण हुआ है, वहीं 'वरूण के बेटे' में आजादी के बाद के किसान जीवन और किसान आन्दोलन का । जाहिर है कि इसमें चित्रित किसान आन्दोलन का स्वरूप भी प्रथम, दो उपन्यासों के किसान आन्दोलन से भिन्न है। यहां किसानों की लड़ाई जमीदारी –उन्मूलन कानून की कमियों का लाभ उठाकर आजादी के बाद भी जमींदार बने हुए थे। 'वरूण के बेटे' किसान आंदोलन कुछ खास लोगों तक सीमित न

होकर व्यापक जनाधार से जुड़ता है जिसमें महिलाएं और भूमिहीन मछुए भी सक्रिय हिस्सेदारी करते हैं। इस उपन्यास का मोहन मांझी किसानों और मेहनतकस मजदूरों की एकता, जाति पर आधारित संगठनों की निरर्थकता और वर्गीय आधार पर संगठनों के गठन का समर्थन करके आजादी के बाद के किसान आंदोलन को नया आयाम देता है। किसान आन्दोलन की तरह मजदूर–आन्दोलन, खास कर औद्योगिक मजदूर आन्दोलन की मौजूदगी, नागार्जुन के उपन्यासों में नगण्य है। इसका कारण है कि वे किसान–जीवन और किसान–आन्दोलन से जितना सक्रिय रूप से जुड़े रहे, उतना मजदूर जीवन और मजदूर आन्दोलन से नहीं। फिर भी, उनके उपन्यासों में बलचनमा जैसे बाल मजदूर और मछुओं जैसे श्रमिकों के जीवन से जुड़े विभिन्न सन्दर्भ मौजूद हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में युगीन सामाजिक परिस्थितियों की विस्तार से चर्चा हुई है। नागार्जुन ग्रामीण जीवन के उपन्यासकार हैं, इसलिए उनके उपन्यासों में मुख्य रूप से ग्रामीण जीवन की सामाजिक परिस्थितियां ही चित्रित हुई हैं। ग्रामीण समाज अपनी प्रकृति में अपेक्षाकृत अधिक जटिल और जड़ है, इसलिए इस समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया भी उतनी तीव्र नहीं होती, जितनी शहरी समाज में। नागार्जुन के उपन्यासों में जो सामाजिक परिस्थितियां चित्रित हुई हैं, वे बहुत अधिक परिवर्तनगामी नहीं है। उन पर युगीन समाज–सुधार और समाज–कल्याण आन्दोलनों का भी कोई विशेष प्रभाव नहीं है। लेकिन, नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण परिवेश भी उससे एक हद तक प्रभावित है, उसे नकारा नहीं जा सकता। आजादी के बाद भारतीय गांव का परंपरागत सामाजिक ढांचा तेजी से बदलता है। 'वरूण के बेटे' में नागार्जुन ने ग्रामीण समाज के बदलते हुए स्वरूप का रेखांकन किया है। इस उपन्यास का मोहन मांझी सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को लक्षित करते हुए कहता है कि अब जाति पांत की पुरानी दीवारें ढह रही हैं और निम्न जातियों की राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में भागीदारी बढ़ रही है। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि बदली हुई स्थितियों में किस प्रकार छोटी जातियों में उभार आ रहा है और वे अपनी अस्मिता का रेखांकन किस रूप में कर रही

है। यहां आकर स्त्री का स्वरूप भी बदल जाता है। 'रतिनाथ की चाची' की गौरी सामंती व्यवस्था और सामंती मूल्यो के शोषण में पिस कर दम तोड़ देती है। फिर भी इस शोषण के खिलाफ उनके मुंह से कोई विरोध अथवा विद्रोह का स्वर नहीं फूटता। जबकि, 'वरूण के बेटे' की मधुरी स्त्री–चेतना से युक्त है। वह शोषण की चक्की में पिसना नहीं जानती। वह गौरी की भांती पुरूष से सांस्कृतिक वर्चस्व को सहज रूप से स्वीकार कर लेने के बजाए इसके खिलाफ मुखर विद्रोह करती है। वह अपने 'बौड़म' पति को छोड़ देती है और पुरूष पर आश्रित हुए बिना स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व की परिकल्पना करती है। वस्तुतः आजादी से पूर्व के सामंती समाज में जहां स्त्री की पराधीनता का आख्यान 'रतिनाथ की चाची' में प्रस्तुत हुआ है, वहीं सामंती रूढ़ियों से मुक्ति के लिए संघर्ष करती हुई स्त्री का आख्यान 'वरूण के बेटे' में। स्त्री जीवन के अलावा जाति–भेद, लिंग–भेद और ऊँच–नीच से जुड़े विभिन्न सामाजिक सन्दर्भ भी नागार्जुन के इन उपन्यासों में चित्रित हुए हैं।

ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों के कारण भारतीय समाज में होने वाले परिवर्तनों को नागार्जुन के उपन्यासों ने चित्रित किया है। यह तथ्य है कि ब्रिटिश सरकार की गलत आर्थिक नीतियों के कारण किसान और मजदूर दिन–प्रति–दिन निर्धन होते जा रहे थे जबकि पूंजीपति और जमींदार पहले की अपेक्षा अधिक समृद्ध। जाहिर है कि पूंजीपति जमींदार और उनके प्रतिनिधि, किसानों मजदूरों के बेइंतहा शोषण के बल पर धनी हो रहे थे। 'बलचनमा' तथा 'रतिनाथ की चाची' में जमींदारों को अत्याचार और शोषण के बल पर सम्पन्न होते हुए दिखाया गया है। इन उपन्यासों में यह भी दिखाया गया है कि चौतरफा शोषण की चक्की में पिसकर एक किसान किस गरीबी और जहालत की स्थिति में पहुंच गया है। 'बलचनमा' के बलचनमा और उसके परिवार को भर पेट खाना भी नसीब नहीं होता है। वह स्वयं अपने मालिकों का 'जूठन' खाकर गुजारा करता है जबकि उसकी मां और दादी 'गुठलियों का गुदा' तक 'चूर–चूर कर' फांकती हैं। आजादी के पहले किसान जिस निर्धनता और जहालत की जिन्दगी को जीता है, कमोबेश

उसकी वही स्थिति बाद में भी बनी रहती है। स्पष्ट है कि आजादी के बाद, सारी स्थितियों में परिवर्तन के बावजूद एक गरीब किसान की आर्थिक स्थिति में कोई खास परिवर्तन लक्षित नहीं होता है। बलचनमा की भांति 'वरुण के बेटे' का खुरखुन भी गरीबी और जहालत भरी जिन्दगी जीता है। नागार्जुन ने आर्थिक दृष्टि से बढ़ती हुई विषमता के अलावा नवोदित मध्यवर्ग, उसके चरित्र और स्वाधीनता आन्दोलन में उसकी भूमिका का रेखांकन भी किया है।

लेखक की विचारधारा उसकी रचना–प्रक्रिया को प्रभावित करती है। यह कथ्य के चुनाव उसके प्रस्तुतीकरण और पात्रो के चरित्रांकन में उसकी मदद करती है। नागार्जुन कुछ अंतर्विरोधों के बावजूद वामपंथी विचारधारा से प्रतिबद्ध रचनाकार है। इस विचारधारा से उनकी प्रतिबद्धता का कारण है कि नागार्जुन जिस किसान, मजदूर, स्त्री और दलित शोषित वर्ग के हितों की बात करते हैं, वामंपथी विचारधारा भी उसका समर्थन करती है। इस विचारधारा से प्रतिबद्ध होने के कारण उनके उपन्यासों में किसानों, मजदूरों, स्त्रियों और पिछड़ों के प्रति सहानुभूति और शोषक शक्तियों के प्रति विरोध का प्रबल भाव विद्यमान है।

नागार्जुन के उपन्यास प्रेमचंद की समाजवादी यथार्थवादी परंपरा से जुड़ते हैं। शिल्प के स्तर पर नागार्जुन के उपन्यास बहुत सशक्त नहीं कहे जा सकते। उपन्यास–लेखन में जिस गंभीरता और तन्मयता की अपेक्षा होती है, उसका उनके यहां अभाव है। उपन्यास–लेखन में कला के उपयोग को लेकर वे बहुत सजग ही नहीं हैं। लेखन के प्रति उनमें लापरवाही की प्रवृत्ति विद्यमान है, जिसके कारण उनके चरित्रों का अपेक्षित विकास नहीं हो पाया है। प्रसंगों और घटनाओं में जो संगति अपेक्षित है, उनके यहां प्रायः इसका भी अभाव है। उनमें लेखकीय क्षमता का अभाव है, यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि जहां भी उहोंने गंभीर और तन्मय होकर लिखा है, वहां अपनी लेखकीय क्षमता का अद्भुत परिचय दिया है। विचारधारा के प्रति अधिक आग्रह के कारण भी उनके उपन्यास कहीं–कहीं कमजोर हुए हैं, यद्यपि लेखक में विचारधारा के उपयोग को

लेकर काफी संयम है। यहां उल्लेखनीय है कि कुछ शिल्पगत कमजोरियों के बावजूद उनके उपन्यास संवेदना के स्तर पर बेजोड़ है। किसी कृति की शिल्पगत शक्ति या सीमाएं उसके मूल्यांकन की एकमात्र कसौटी नहीं होती है। कृति की उत्कृष्टता या निकृष्टता की परख में उसकी संवेदना की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस दृष्टि से नागार्जुन के उपन्यास हिन्दी उपन्यास–साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यही स्थिति नागार्जुन के काव्य की भी है।

लोक जीवन पर बहुत से लेखकों ने कलम चलायी है, और उन सबका अपना–अपना महत्व भी है। परन्तु, मैंने अपने शोध–प्रबन्ध में जनकवि नागार्जुन का ही चयन किया जो विद्रोह, नारी मुक्ति, व्यंग्य और विद्रूपता, आंचलिकता और जन चेतना की बात करके इन्हीं के मध्य से सौन्दर्य की ओर संकेत करते हैं। उनकी धारणा है कि हमें अपने जड़ यानी–मूल से हमेशा जुड़े रहना चाहिए और शोषण का विरोध करना चाहिए क्योंकि, जो व्यक्ति शोषण को सहता है–प्रकारान्तर से वह भी इस कुकृत्य में सहयोग देता है। जनवादी कहते हैं कि कलाकार को व्यंग्य के माध्यम से विद्रूपता की ओर संकेत भर करना है, बाकी–काम शोषित स्वयं कर लेगें–अर्थात केवल मन को जगाकर शिक्षा देना है। यह कवि कृषकों तथा श्रमिकों के कष्टों को चित्रित करते हैं, तथा कष्टों से उबरने की प्रक्रिया में ही सौन्दर्य के दर्शन करते हैं। लोकजीवन के प्रत्येक कलाकार की अभिव्यक्ति में प्रवणता का स्वरूप उसकी ख्याति का हेतु बनता है। अपने चतुर्दिक व्याप्त परिवेश से वह प्रेरणा ग्रहण करता है। परिवेश के भिन्नता के कारण उसकी भावनाओं में भी विभिन्नता आती है। इसी भिन्नता के कारण उसकी काव्य भावनाओं में भी विविधता आती है। नागार्जुन का काव्य भी इसका अपवाद नहीं है। नागार्जुन के समस्त काव्य को हमने निम्न रूपों में देखने की चेष्टा की है।

नागार्जुन ने अपने काव्य में राजनीतिक कविताओं में सत्ताधारी, शोषण में लिप्त एवं अपने लाभ के लिए गरीबों का खून–चूसने वाले नेताओं को अपने व्यंग्य का निशाना बनाया है। चरमराती सामंती व्यवस्था के अवशेष–जमींदार, सामंत, बड़े–बड़े ताल्लुकेदार

एवं नबाब भी उनके व्यंग्य का निशाना बने हैं। नागार्जुन की ऐतिहासिक चेतना और सामाजिक यथार्थ को परखने की दृष्टि बहुत पैनी है। वे किसानों, मजदूरों का पक्ष तो लेते हैं किन्तु उनके जीवन के अन्तर्विरोधों को भी नजरंदाज नहीं करते। सामाजिक अन्तर्विरोधों को उघाड़ती उनकी कविताओं में मध्यवर्ग एवं बुद्धिजीवी वर्ग भी शामिल हैं। नागार्जुन ने भारतीय नेताओं एवं अन्तर्राष्ट्रीय नेताओं तथा अपने मित्रों को भी अपनी कविताओं में याद किया है। इसके अलावा प्रकृति पर नागार्जुन ने बहुत कविताएं लिखी है। प्रकृति में बादल एवं वर्षा बहुत प्रिय हैं क्योंकि बादल ही किसान के जीवन की आस है। पत्नी, पुत्र, मित्र अर्थात निजी सम्बन्धों पर भी लिखा है।

नागार्जुन की कविता में अनेक काव्य रूप हैं। उन्होंने कई छंदों, शैलियों में लिखा है। उनके शिल्प की सबसे बड़ी खूबी व्यंग्य है। उनकी काव्य भाषा इतनी सप्रेषणीय है कि रामविलास शर्मा का कथन है कि– 'उनकी भाषा वही भाषा है जो किसान–मजदूरों की समझ में आती है, अक्षरशः सार्थक है। 'इसलिए नागार्जुन सही अर्थों में जनकवि हैं। वस्तुतः जिस समय प्रगतिवादी साहित्य अपने स्वरूप की खोज कर रहा था उस समय देश में जन–जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में एक उथल–पुथल व्याप्त थी। साहित्यिक क्षेत्र से वैयक्तिक और अन्तंर्मुखी प्रवृत्तियां पलायन और निराशा को जन्म दे रही थी। सामाजिक विषमता का ताण्डव हो रहा था। इसी समय युग की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं को जानने वाले एक नवीन समुदाय वाले साहित्य का जन्म हुआ।

प्रगतिवाद कला की अवहेलना नहीं करता। वह कला और उच्च साहित्य निर्माण में रूढ़ियों को हटाकर सुविधा प्रदान करता है। श्री बाबूराम विष्णु पराड़कर ने कहा है 'कि राष्ट्रीय और प्रगतिशील साहित्य दो भिन्न–भिन्न वस्तुयें नहीं हैं। प्रगतिशील साहित्य का राष्ट्रीय होना अनिवार्य है।'

प्रगतिवादी चिन्तन नई तेजस्विता से सम्पूर्ण परिवेश को जगमगा देना चाहते हैं। इन्होंने भ्रष्ट राजनीति, दिशाहीन मनुष्य, कुत्सित व्यवस्था, सामाजिक विटूपता एवं विद्रोह को सशक्त वाणी प्रदान की है। इन्होंने चिन्तन को एक नई दिशा दी। कवि अब उन

अगतिशील विषयों पर दृष्टि केन्द्रित नहीं करता है जो केवल इन्द्रियेतिजक हो और मनुष्य के भीतर की मानवीयता के विकास में बाधक हों। समकालीन प्रगतिशील चिन्तकों ने भी इन्हीं का अनुसारण करते हुए समाज की विकृतियों पर चोट की।

इस प्रकार लोकवादी नागार्जुन का समस्त कला–विवेचन अथवा सौन्दर्य चिन्तन मार्क्सवादी अवधारणा से ओत–प्रोत है। सामाजिक जीवन की अमानवीयता की ओर अग्रसारित करने वाली जितनी भी स्थितियां हैं, नागार्जुन ने उन्हें वाणी प्रदान करने का प्रयास किया है। इसीलिए वह लोकवादी सौन्दर्य–चिन्तकों में अग्रपंक्ति के अधिकारी हैं। इस तथ्य को अपने शब्दों में अरुण कमल ने व्यक्त किया कि – 'एक–एक कतरे को एक–एक कविता को जोड़ने से जो नक्शा बनता है, वह इतना विस्तृत, इतना जन संकुल है कि किसी एक बिम्ब या सूत्र में उनके काव्य लोक को व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह हजार–हजार शब्दों वाली कविताएं हैं, हजार दिशाओं को इंगित करती, हजार वस्तुओं को अपनी मुट्ठियों में थामें। वास्तव में नागार्जुन की काव्य भूमि इतनी व्यापक है कि उसे खण्ड–खण्ड करके देख पाना सम्भव नहीं है। नागार्जुन का काव्य संसार 'मिथला के भीतरी भू–भाग से लेकर मुलुण्ड के अति सुदूर प्रदेश तक फैली हुई काव्य भूमि, बिहार के सामंती उत्पीड़न से लेकर अमरीकी साम्राज्यवाद तक की शोषण–श्रृंखला, भूमिहीन मजदूरों के दुर्दभ संघर्ष से लेकर जूलियन रीजनबर्ग की महान संघर्ष गाथा और नितान्त व्यक्तिगत जीवन प्रसंगों से प्राप्त सुख–दुख से लेकर बाकी सारे जगत के सुख–दुःख मोतियां नवले और मधुमती गाय तक की, यह चौहद्दी है नागार्जुन के काव्य–मदहोश की।'

'नागार्जुन की चुनी हुयी रचनाओं के तीसरे खण्ड में उनके निबंध, कहानियाँ, संस्मरण, भाषण, यात्रा वृतान्त, महत्वपूर्ण पत्र और साक्षात्कार संकलित है। इस खण्ड की ऐतिहासिकता इस बात में है कि नागार्जुन के विशाल लेखन का यह बड़ा भाग पहली बार संग्रह के रूप में सामने आ रहा है जो उसके रचनाकार व्यक्तित्व को सम्पूर्ण समझ के लिये नये दरवाजे खोलता है।'

नागार्जुन के निबन्धों की विषय वस्तु में विविधता है तो कहानियों में चरित्र की संवेदनात्मक बारीकियां। उनके स्मरण सम्बन्धित व्यक्ति के व्यक्तित्व को समग्रता में सामने लाने के साथ-साथ उसका मूल्यांकन भी करते हैं। भाषणों में प्रगतिशील विचार और सीधी संप्रेषणीयता है। यात्रा वृतान्तों में यात्री नागार्जुन द्वारा देश के रम्य और बीहड़ इलाकों के सफर की साहसिक स्मृतियां हैं। निजी पत्रों में दोस्तों के जीवन और उनकी मानसिक पारिवारिक समस्याओं को लेकर चिन्तायें हैं। एक हद तक उनका समाधान भी। अक्सर इन कविताओं में नागार्जुन की घुमक्कड़ी के अगले पड़ाव की सूचना भी है। साक्षात्कार में है उनके द्वारा कहीं गई बिना लाग लपेट के दो टूक बातें, जिनमें विभिन्न विषयों पर नागार्जुन के क्रन्तिकारी विचार दर्ज है। नागार्जुन के रचनाकार व्यक्तित्व की इस नई दुनियां में प्रवेश एक दिलचस्प अनुभव है। उनके सम्बन्ध में निबन्धकार निराला का मत इस प्रकार व्यक्त है।-

"An authentic work of Pr. Ramvilas Sharma published from Oxford University press, Landon. Printing is very fine. You see Mr. Nagarjun."

नागार्जुन समय की धार में बहने वाली कविताएं नहीं लिखते है। इसका प्रमाण यह है कि आज अर्द्धशती का अन्तराल भी उनकी प्रखरता को क्षीण नहीं कर सका है। इनमें जीवन के अनुभव संजोये गये हैं जिससे कविता आत्मा की पुकार बनकर फूट पड़ी है। इन कविताओं में लाचारी एवं बेचारगी नहीं वरन् संघर्ष के साथ-साथ आशाओं-आकांक्षाओं का स्वर है जो सर्वहारा के प्रति सहानुभूति का परिचायक है। कवि किसी भी व्यवस्था या विचारधारा के तहत करुणतम भ्रष्टाचार की परख कर ही लेता है। इसी से इनकी कवितायें गांधीवादी, सुभाषवादी, समाजवादी, साम्यवादी और जयप्रकाशवादी सबके साथ नाता जोड़ती हैं और इन सबसे अलग भी हैं। यदि इन्होंने कभी किसी की नीतियों का समर्थन किया है तो परिस्थितिनुकूल उनकी खुलकर आलोचना भी की है। जिस पथ में बुराई नजर आयी है उससे तुरन्त ही मुँह मोड़कर रास्ता बदल लिया है। किसी खिताब या पुरस्कार के प्रलोभन में पड़कर शासन का

प्रशस्ति गान नहीं किया है, न ही विदेश जाकर पालम या सहारा हवाई अड्डे पर मुस्कराते हुये उतरने का शौक उन्हें है। उन्हें बस मानवता ही तलाश है। कुल मिलाकर नागार्जुन की कविता अपनी सम्पूर्णता में अतीत के पचास वर्षों की भारतीय जीवन के उथल-पुथल का अमिट चित्र है।

अतः यह निर्विवाद सत्य है कि नागार्जुन की कविता में जन-जीवन तथा चेतना का स्वर सर्वोपरि है, वह अभावों से पीड़ित एवं शोषण से त्रस्त जन-जीवन की प्रतिनिधि रचना है। उसमें अन्याय एवं अत्याचार के विरुद्ध जन-जागरण का भाव भरा हुआ है। यही कारण है कि नागार्जुन का काल आधुनिक भारतीय जीवन की यथार्थ भूमि पर स्थिति है और वे जनवादी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं।

अतः नागार्जुन अपनी काव्य-यात्रा में जब तेजी से दौड़ते हैं तो कविताएं हल्की अवश्य हुई हैं किन्तु यह भी महत्वपूर्ण योगदान माना जायेगा क्योंकि भारत का पचास वर्षों का सच्चा इतिहास ये कविताएं हैं। अन्य कविताओं पर शंका की गुंजाइश नहीं। कविताओं के बाद हम पाते हैं कि संस्कृत के विद्वान होने से कालिदास, बंगला द्वारा टैगोर, सूर और तुलसी की कोमलता, सहृदयता, प्रकृति की मनोहारता, रस माधुर्य एवं सहजता का जो संसार निर्मित हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मूलतः नागार्जुन को हम उपन्यासकार और कवि के रूप में ही जानते हैं, लेकिन वह देश तथा समाज में व्याप्त अनेक आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और दैनिक समस्याओं की प्रत्येक बात से बारिकी से परिचित हैं। इसी कारण इन्होंने अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय विचारों से लेकर ग्रामांचलों की समस्याओं तक, सामंतवाद, पूँजीवाद, साम्राज्यवाद से लेकर समाजवाद, साम्यवाद और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन तक, वर्ग संघर्ष से लेकर सड़ी-गली जर्जर अर्थतन्त्र की विकराल समस्या तक, राजनैतिक भ्रष्टाचार, शोषण एवं उत्पीड़न से लेकर उससे मुक्ति दिलाने के मार्ग तक का चित्रण किया है।

नागार्जुन का गरीब परिवार में जन्म लेना और अभावों में जीवन व्यतीत करना उनकी सशक्त साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए वरदान सिद्ध हुआ।

नागार्जुन व्यक्ति नहीं समूचा जन–चरित्र है। वह सर्वहारा जनता के प्रतीक और हिन्दी साहित्य की जीवन्त वास्तविकता हैं। उन्होंने पदमर्दित, अपमानित और उपेक्षित मानव की आवाज को वाणी प्रदान की है। पर्दे में कैद मेरी पद–पद पर उपेक्षित और असहाय अबला नारी की वकालत उन्होंने सशक्तता से की है। वह अभावग्रस्त गरीबों तथा वेकसों के महत्व के प्रचारक है। वह जनता के लेखक हैं और जन समस्याएं उनकी प्रेरणा स्रोत है। उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से लाखों नयी पीढ़ी को संवेदनशील व्यक्तित्व प्रदान किया। वे जन सामान्य की चेतना को एक विकासमान प्रतिक्रिया के रूप में देखते हैं।

ऐसे थे बाबा नागार्जुन जिनका जन्म जून 1911 में हुआ था और देहावसान नवम्बर 1998 में।

ग्रन्थानुक्रमणिका

सहायक ग्रन्थ सूची

1. हिन्दी उपन्यास स्वरूप और विकास–डा0 गणपति चन्द गुप्त
2. साहित्यिक निबन्ध– डा0 गणपति चन्द्र गुप्त
3. प्रगति वाद और हिन्दी साहित्य– डा0 गणपति चन्द गुप्त
4. प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड– रांगेय राघव
5. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियां –डा0 नामवर सिंह
6. प्रगतिशील साहित्य और समस्यायें– डा0 राम विलास शर्मा
7. हिन्दी साहित्य की समालोचना का विकास–डा0 वेंकट शर्मा
8. रति नाथ की चाची
9. बलचनमा
10. नई पौध
11. वरुण के बेटे
12. कुम्भी पाक
13. उग्र तारा
14. हीरक जयन्ती
15. इमरालियां
16. युगधारा
17. हजार–हजार बाहों वाली
18. सतरंगे पंखों वाली
19. पुरानी जुतियों का कोरस
20. खिचड़ी विप्लव देखा हमनें
21. रत्नगर्भ
22. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास शिल्प विधि–डा0 आदर्श सक्सेना
23. नागार्जुन जीवन और साहित्य–डा0 प्रकाश चन्द्र भट्ट

24. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास–डा0 सुरेश सिन्हा

25. हिन्दी उपन्यास का समाज शास्त्रीय विवेचन–डा0 चण्डी प्रसाद जोशी

26. हिन्दी उपन्यास– डा0 सुषमा धवन

27. हिन्दी उपन्यास–डा0 घनश्याम मधुप

28. आधुनिकता के सन्दर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास–डा0 अतुल अरोड़ा

29. हिन्दी उपन्यास एक अन्त यात्रा– डा0 राम दर्शन सिंह

30. आलोचना अंकन का उपन्यास विशेषांक– डा0 राम खिलावन पाण्डे

31. आधुनिक उपन्यास उद्भव और विकास–डा0 बेचन

32. आधुनिक उपन्यास में वस्तु विन्यास– डा0 सरोजनी त्रिपाठी

33. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना– डा0 कुँवर पाल सिंह

34. हिन्दी के मार्क्सवादी उपन्यास की नायिकायें– डा0 एच.जी.सांलुवे

35. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास–डा0 उमेश शास्त्री

36. स्वांतत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों में वैचारिकता–डा0 आशा मेहता

37. आधुनिक हिन्दी समीक्षा की प्रवृत्तियां– डा0 विद्या चौहान

38. हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास और आधुनिक चेतना–मंजुतेंवर

39. हिन्दी के बहु चर्चित उपन्यास– डा0 अमर जयसवाल

40. लोक साहित्य की भूमिका, डा0 कृष्ण देव उपाध्याय

पत्र-पत्रिकाएं

1. आलोचना के कुछ अंक

    आलोचना, जुलाई-सितम्बर 1972

    अप्रैल-जून 1970

2. आज कल के कुछ अंक

    जून 1996 (नागार्जुन विशेषांक)

    जनवरी 1999 (नागार्जुन विशेषांक)

    फरवरी 1998

3. उद्भावना (नागार्जुन विशेषांक) सं0 अजय कुमार अंक 51, 52
4. कल के लिए अंक (नागार्जुन विशेषांक) सं0 जयनारायण अक्टूबर-दिसम्बर 1995

    कल के लिए, भाग दो (नागार्जुन विशेषांक) जनवरी-मार्च 1996

5. वागर्थ, सं0 प्रभाकर श्रोत्रिय, जुलाई 1996
6. संपर्क (नागार्जुन), सं0 सुरेश चन्द्र त्यागी, मार्च 1984
7. साहित्य वार्षिकी (इंडिया टुडे), सं0 प्रभु चावला, 1996
8. हंस के कुछ अंक

    उपन्यास विशेषांक, जनवरी 1999

    दिसम्बर 1998

    मई 1999

9. वर्तमान साहित्य
10. दस्तावेज
11. समीक्षा
12. सुप्रभात
13. ज्ञानोदय

14. समकालीन भारतीय साहित्य

15. आलोचना

16. हिन्दी साहित्य कोष प्रथम एवं द्वितीय भाग

17. संस्कृत कोष : वी. एस. आप्टे